प्रकाशकका निवेदन

कुछ समय पूर्व हमने गांधीजीके संतति-नियमन सम्बन्धी विचारोंको बहुत ही संक्षेपमें प्रस्तुत करनेवाली 'संतति-नियमन : सही मार्ग और गलत मार्ग' नामक पुस्तिका प्रकाशित की थी। अब इस बड़े संग्रहमें गुजरातीकी मूल पुस्तिका 'नीतिनाशन मार्गे — नीतिनाशके मार्ग पर —' के समस्त लेख तथा इस विषयसे सम्बन्धित अन्य सारे उपलब्ध लेख एकत्र करके इसे संपूर्ण बना दिया गया है।

गांधीजी भारत जैसे बड़ी आबादीवाले गरीब देशके लिए संतति-नियमनको आवश्यक तो समझते थे, परन्तु इसका एकमात्र अचूक उपाय वे आत्म-संयम अथवा विवाहित जीवनमें भी ब्रह्मचर्यके पालनको मानते थे। उनका कहना था कि आत्म-संयम द्वारा सिद्ध किया जानेवाला संतति-नियमन विवाहित दंपतीके जीवनमें संतानकी संख्याको मर्यादित करके उन्हें आर्थिक कठिनाईसे ही नहीं बचायेगा, परन्तु दोनोंकी शारीरिक, नैतिक और आध्यात्मिक शक्तिको भी बढ़ायेगा; और इस प्रकार समाज, राष्ट्र और सारी मानव-जातिकी प्रगतिमें सहायक सिद्ध होगा।

इसके विपरीत संतति-नियमनके कृत्रिम साधनोंका उपयोग करके संतानकी संख्या पर अंकुश रखनेका गांधीजी कड़ा विरोध करते थे। वे ऐसा मानते थे कि इन साधनोंका उपयोग करनेसे विवाहित स्त्री-पुरुष विषय-भोगके गुलाम बन जायंगे। इसका भयंकर परिणाम दोनोंकी क्षीण वीर्यता और पौरुष-हीनतामें आयेगा। इससे विवाहके सारे पवित्र बन्धन शिथिल होकर अन्तमें टूट जायंगे तथा समाजमें स्वच्छन्दता और स्वेच्छाचारका बोलबाला हो जायगा। इससे भारतीय समाज और राष्ट्रका शारीरिक और नैतिक अधःपतन होगा, जो अन्तमें संपूर्ण मानव-जातिकी आत्महत्याका कारण बन जायगा।

गांधीजीको एक भय और था। वे कहते थे कि इन कृत्रिम साधनोंके समर्थक तो विवाहितोंमें ही इनका प्रचार करना चाहते हैं। परन्तु ये घातकी साधन केवल विवाहित स्त्री-पुरुषों तक ही मर्यादित नहीं रहेंगे धीरे धीरे अविवाहित युवक-युवती भी इनके प्रलोभनमें फंसेंगे जिसके फलस्वरूप उनमें भी व्यभिचारकी बुराई फैलेगी और सारा समाज निःसत्व और निष्प्राण हो जायगा।

आज भारतमें परिवार नियोजन (फैमिली प्लानिंग) की दृष्टिसे कृत्रिम साधनोंके उपयोगका या गर्भाधानको रोकनेके अन्य कृत्रिम उपायोंका जो प्रचार किया जाता है उसका वही भयंकर परिणाम आयगा जो गांधीजीने अपने इन लेखोंमें स्पष्ट शब्दोंमें बताया है। हमें लगता है कि इन हानिकारक साधनोंका प्रचार करनेके बजाय इस ध्येयको सिद्ध करनेके लिए देशके स्त्री-पुरुषोंको इस पुस्तकमें गांधीजी द्वारा प्रस्तुत किया हुआ संयम और ब्रह्मचर्यका ही हितकारी मार्ग बताना चाहिये। इस मार्गको अपनानेसे ही स्वतंत्र भारतमें शरीर, मन और आत्माकी शक्तिसे सम्पन्न बलवान और समर्थ संतान उत्पन्न होगी जो राष्ट्रकी प्राणोंसे भी प्रिय स्वतंत्रताकी रक्षा करने और उसे सुदृढ़ बनानेका भगीरथ कार्य कर सकेगी।

आशा है यह संग्रह ब्रह्मचर्य आत्म-संयम विवाहित जीवनकी पवित्रता विषय-भोगकी मर्यादा तथा संतति-नियमनके कृत्रिम साधनोंसे होनेवाली भयंकर हानि आदि विषयों पर गांधीजीके विचारसरणीको भलीभांति समझने और उसके अनुसार अपने जीवनको बनानेमें पाठकोंकी सहायता करेगा।

१५-८-६२

अनुक्रमणिका

दूसरा भाग महादेव देसाईके लेख

पाठकोंसे

मेरे लेखोंका मेहनतसे अध्ययन करनेवालों और उनमें दिलचस्पी लेनेवालोंसे मैं यह कहना चाहता हूं कि मुझे हमेशा एक ही रूपमें दिखाई देनेकी कोई परवाह नहीं है। सत्यकी अपनी खोजमें मैंने बहुतसे विचारोंको छोड़ा है और अनेक नई बातें मैं सीखा भी हूं। उमरमें भले मैं बूढ़ा हो गया हूं लेकिन मुझे ऐसा नहीं लगता कि मेरा आन्तरिक विकास होना बन्द हो गया है या देह छूटनेके बाद मेरा विकास बन्द हो जायगा। मुझे एक ही बातकी चिन्ता है, और वह है प्रतिक्षण सत्य-नारायणकी वाणीका अनुसरण करनेकी मेरी तत्परता। इसलिए जब किसी पाठकको मेरे दो लेखोंमें विरोध जैसा लगे, तब अगर उसे मेरी समझदारीमें विश्वास हो तो वह एक ही विषय पर लिखे दो लेखोंमें से मेरे बादके लेखको प्रमाणभूत माने।

हरिजनबन्धु, ३०-४-३३ — गांधीजी

सयम और संतति-नियमन

१
‘नीतिनाशके मार्ग पर’

१ विषय

मुझे मित्रोंकी ओरसे भारतीय अखबारोंके ऐसे उद्धरण मिलते रहते हैं जिनमें प्रजोत्पत्तिको रोकनेके कृत्रिम साधनों द्वारा सन्तति-नियमन करनेका समर्थन किया गया होता है। नवयुवकोंके पत्र भी मुझे अधिकाधिक संख्यामें प्राप्त होते रहते हैं जिनमें उनके व्यक्तिगत जीवनसे सम्बन्ध रखनेवाले प्रश्नोंकी चर्चा होती है। ये पत्रलेखक जो प्रश्न मुझसे पूछते हैं उनमें से कुछ गिनतीके ही प्रश्नोंकी चर्चा मैं इन पत्रोंके[1] कालमोंमें कर सकता हूं। अमरीकी मित्र भी इसी विषयका साहित्य मेरे पास भेजते रहते हैं और उनमें से कुछ तो इस कारणसे मुझ पर नाराज हैं कि मैंने प्रजोत्पत्तिको रोकनेके कृत्रिम साधनोंके उपयोगका विरोध किया है। उन्हें इस बातका दुःख है कि अनेक बातोंमें अग्रगण्य सुधारक होने पर भी सन्तति-नियमनके सम्बन्धमें मेरे विचार त्रेतायुगके किसी मनुष्यके जैसे हैं। और मैं यह भी देखता हूं कि कृत्रिम साधनोंके उपयोगका समर्थन करनेवालोंमें देश-विदेशके अनेक अनुभवी तथा विचारशील स्त्री-पुरुष भी हैं।

इसलिए मुझे लगा कि गर्भ-निरोधके कृत्रिम साधनोंके पक्षमें कुछ विशेष निर्णयात्मक तर्क होना चाहिये और इस कारणसे इस विषय पर अभी तक मैंने जो कुछ लिखा है उससे अधिक मुझे लिखना चाहिये। इस विषय पर मैं सोच रहा था और इस प्रश्नसे सम्बन्धित साहित्य पढ़नेका इरादा मैं कर ही रहा था कि इतनेमें ‘टुवर्ड्स मॉरल बैंकरप्सी’ नामक अंग्रेजी पुस्तक मेरे हाथमें आई। यह पुस्तक इसी विषयसे सम्बन्ध रखती है और मेरे मतसे इसमें इस विषयकी संपूर्ण शास्त्रीय चर्चा की गई है। मूल पुस्तक डा॰ मोन्स्योर पॉल ब्यूरोने फ्रेन्च भाषामें लिखी है और उसका

१ यंग इंडिया, नवजीवन और हिन्दी नवजीवन साप्ताहिक।

ग्रन्थ नाम नीति-भ्रष्टता का अर्थ देनेवाला है। उसका अंग्रेजी अनुवाद कॉन्स्टेबल एण्ड कंपनीने कराया है। और उसकी प्रस्तावना श्री मेरी स्कार्लिव्ज सी बी ई एम डी एम एस ने लिखी है। पुस्तकमें कुल १५ प्रकरण और ५३८ पृष्ठ हैं। यह पुस्तक पढ़नेके बाद मुझे लगा कि उसके ठेसकके विचारोंका सार मैं अपने पाठकोंके समक्ष रखूं, उससे पहले न्यायके खातिर मुझे सन्तति-नियमनके कृत्रिम साधनोंका समर्थन करनेवाले प्रमाण-ग्रन्थ पढ़ लेने चाहिये। इसलिए मैंने भारत सेवक समाज से इस प्रसंगसे सम्बन्धित साहित्य प्राप्त किया। काका कालेलकरने भी जो इस विषयका अभ्यास कर रहे हैं इससे सम्बन्ध रखनेवाली हैवलॉक एलिसकी एक पुस्तक मुझे दी है। तथा एक मित्रने 'प्रॉक्टिशनर' मासिकका सन्तति-नियमन पर प्रकट हुआ विशेषांक मेरे पास भेज दिया है। उसमें इस विषय पर प्रसिद्ध डॉक्टरोंके महत्त्वपूर्ण मत दिये गये हैं।

यह सारा साहित्य एकत्र करनेमें मेरा हेतु यह था कि मेरे जैसा डॉक्टरी ज्ञानसे रहित मनुष्य मॉन्स्यौर ब्यूरोके निर्णयोंका यथाशक्ति परीक्षण कर सके तो ठीक हो। बहुत बार जब वैज्ञानिक लोग किसी प्रश्नकी चर्चा करते हैं उस समय भी उसके दो पक्ष होते हैं। और दोनों पक्षोंके समर्थनमें बहुत-कुछ कहा जा सकता है। इसलिए मैं यह मानता था कि गर्भ-निरोध करनेवाले कृत्रिम साधनोंके हिमायतियोंकी दृष्टिको जान लेनेके बाद ही मुझे उपरोक्त पुस्तकका परिचय पाठकोंको कराना चाहिये। अब यह सारा साहित्य पढ़नेके बाद मैं यह निश्चित मत बना सका हूं कि हिन्दुस्तानके लिए तो ऐसे कृत्रिम साधनोंकी बिलकुल जरूरत नहीं है। हिन्दुस्तानमें इन साधनोंके उपयोगका समर्थन करनेवाले लोग या तो हिन्दुस्तानकी स्थितिको जानते नहीं अथवा जानते हुए भी उसकी उपेक्षा करते हैं। परन्तु प्रजोत्पत्ति रोकनेके कृत्रिम साधन पश्चिमी देशोंमें भी हानिकारक सिद्ध हुए हैं ऐसा यदि प्रमाणित किया जा सके तो फिर हिन्दुस्तानकी विशेष स्थितिकी जांच करना आवश्यक ही नहीं रहता।

इसलिए अब हम देखें कि मॉं ब्यूरो इस विषयमें क्या कहते हैं। उनका अध्ययन फ्रान्सकी परिस्थितियों तक ही सीमित है। लेकिन

फ्रान्सका बहुत बड़ा महत्त्व है। फ्रान्स तो जगतका सबसे आगे बढ़ा हुआ देश माना जायगा। और यदि ऊपरके साधन फ्रान्समें असफल सिद्ध हुए हों तो अन्य किसी भी देशमें उनका सफल होना संभव नहीं है।

असफल सिद्ध होना के अर्थके विषयमें भी मतभेदकी संभावना है। मैंने जिस अर्थमें इन शब्दोंका प्रयोग किया है उसे यहां बता दूं। वह अर्थ यह है यदि कृत्रिम साधनोंके उपयोगके फलस्वरूप नीति — सदाचारके बन्धन शिथिल हुए हों समाजमें व्यभिचार बढ़ा हो और यह बताया जा सके कि केवल स्वास्थ्यके लिए तथा आर्थिक दृष्टिसे परिवारकी मर्यादाको संकुचित रखनेके लिए ही स्त्री-पुरुषों द्वारा इन साधनोंका उपयोग होनेके बदले मुख्यतः विषय-तृप्तिके लिए इनका उपयोग हुआ है, तो समझना चाहिये कि ये साधन असफल सिद्ध हुए हैं। यह मध्यम पक्ष है। नैतिक दृष्टिसे अंतिम सिरे पर जानेवाला पक्ष तो हर काल और हर स्थितिमें इन साधनोंका निषेध करता है। क्योंकि उसकी दलील यह है कि जैसे शरीरको टिकानेके सिवा अन्य किसी भी प्रयोजनसे भोजन करनेकी आवश्यकता नहीं है वैसे ही स्त्री या पुरुषके लिए प्रजोत्पत्तिके प्रयोजनके सिवा अन्य किसी भी प्रयोजनसे विषयेन्द्रियको तृप्त करनेकी आवश्यकता नहीं है। एक तीसरा पक्ष भी है। वह मानता है कि नीति जैसी कोई चीज इस जगतमें है ही नहीं अथवा यदि हो भी तो वह विषयोंके संयममें नहीं परन्तु विषयोंकी तृप्तिमें समाई हुई है। इस सम्बन्धमें मनुष्यको केवल इतनी ही सावधानी रखनी चाहिये कि यह तृप्ति ऐसी सीमा तक न पहुंच जाय कि शरीरको हानि पहुंचे और इस तृप्तिका उपभोग करना उसके लिए असंभव हो जाय। मैं मानता हूं कि मों ब्यूरोने इस तीसरे पक्षके लोगोंके लिए अपनी पुस्तक नहीं लिखी है। क्योंकि वे अपनी पुस्तकके अंतमें टॉम मैनका यह वचन देते हैं भविष्य संयमी और सदाचारी राष्ट्रोंके ही हाथमें है।

२ अविवाहित स्त्री-पुरुषोंमें भ्रष्टाचार

अपनी पुस्तकके पहले भागमें मों ब्यूरोने जो तथ्य एकत्र किये हैं वे अत्यन्त निराशाजनक हैं। उन्हें पढ़नेसे बड़ा दुःख होता है। उनसे पता

चलता है कि फ्रान्समें मानवकी नीचसे नीच वृत्तियोंको तृप्त करनेके लिए कैसे बड़े बड़े संगठन खड़े किये गये हैं। प्रजोत्पत्तिको रोकनेके कृत्रिम साधनोंकी हिमायत करनेवालोंका एक दावा यह है कि यदि ऐसे साधनोंका उपयोग होने लगे तो उससे कृत्रिम गर्भपात बन्द हो जायंगे। परन्तु यह दावा भी टिक नहीं सकता। मों ब्यूरो कहते हैं पिछले २५ वर्षोंमें इन साधनोंका उपयोग फ्रान्समें बढ़ा है। इस अरसेमें पापपूर्ण गर्भपातोंकी संख्या बिलकुल नहीं घटी। वे मानते हैं कि इस अरसेमें ऐसे गर्भपातोंकी संख्या बढ़ी है। यह संख्या वे प्रतिवर्ष पौने तीनसे लगा तीन लाखकी बताते हैं। इतना ही नहीं वे यह भी कहते हैं कि पहले ऐसे गर्भपातोंसे समाजके लोगोंको जो आघात लगता था वह अब नहीं लगता।

मों ब्यूरो कहते हैं कि गर्भपातके पापमें से बालहत्या कुल-व्यभिचार तथा सृष्टिक्रमके विपरीत पापोंका जन्म होता है। अविवाहित माताओंको दी जानेवाली समस्त सुविधाओंके होते हुए भी तथा गर्भ निरोधके कृत्रिम साधनों और गर्भपातोंमें होनेवाली वृद्धिके बावजूद बालहत्या घटनेके बजाय बढ़ी ही है। तथाकथित कुलीन लोगोंमें यह पाप आज पहलेके जितनी घृणा पैदा नहीं करता और ज्यूरी ऐसे अप राधोंके अभियुक्तोंको निर्दोष ही करार देते हैं।

फ्रान्समें बीभत्स साहित्य कितना बढ़ गया है यह बतानेके लिए मों ब्यूरोने एक खास प्रकरण अपनी पुस्तकमें लिखा है। बीभत्स साहित्य की व्याख्या उन्होंने इस प्रकार की है साहित्य नाटक और चित्र मनुष्योंके मानसिक आनन्द और सुखके लिए जो सामग्री प्रदान करते हैं उस सामग्रीका विषयोत्तेजक तथा बीभत्स हेतुसे दुरुपयोग करनेवाला साहित्य। और इस साहित्यकी खपत कितनी अधिक है उसका वर्णन वे इस प्रकार करते हैं इसमें से हरएक वस्तुकी सर्वत्र मांग है। इस साहित्यके अग्रणी लोग जिस बुद्धि और व्यापार-कुशलतासे इस साहित्यका प्रचार करते हैं और इसमें जो भारी पूंजी लगाई गई है उससे इसके प्रसारका अनुमान किया जा सकता है। इस साहित्यका प्रभाव इतना गहरा और इतना अपूर्व होता है कि मनुष्यका संपूर्ण मानस ही विकृत हो जाता है और उसकी कल्पनामें एक नई विषम-सृष्टि जन्म ले

लेती है।" इसके बाद मॉं ब्यूरो मॉं कड्सेनकी पुस्तकका यह करुणाजनक उद्धरण देते है

यह बीभत्स साहित्य असंख्य मनुष्यों पर प्रबल सत्ता चलाता है और इस साहित्यका दिन-दूना रात-चौगुना बढ़ता प्रसार यह बताता है कि असंख्य लोग अपने मनमें विषय-सृष्टिकी रचना करके पागलखानेके बाहर होते हुए भी पागलों जैसे ही भटकते फिरते हैं। आजके जमानेमें समाचारपत्रों तथा पुस्तकोंके दुष्प्रयोगसे मनुष्योंके मन इतने व्यस्त बन गये हैं कि हर व्यक्ति अपने वर्तमान कर्तव्यको भूलकर अपनी अपनी स्वप्नसृष्टिमें लीन होकर घूमता रहता है।

और यह भयंकर परिणाम किसकी उपज है? यह केवल एक ही मूल भ्रमका परिणाम है। वह भ्रम है केवल भोगके लिए ही काम वासनाको तृप्त किये बिना मनुष्यका काम चल नहीं सकता बल्कि इसके बिना पुरुष अथवा स्त्रीका सम्पूर्ण विकास असम्भव है। और, ऐसा मूल एक बार मनुष्यके मनमें घुसा और एक बार जिसे वह पाप मानता था उसे पुण्य मानने लगा कि फिर तो विषय-विकारको उत्तेजित करने तथा अपनी विषय भोगकी शक्तिको बढ़ानेके लिए वह जो भी उपाय सूझे उसे काममें लेने लगता है।

मॉं ब्यूरो आगे चलकर उदाहरणोंके साथ यह बताते है कि आज समाचारपत्र मासिक पुस्तिकायें उपन्यास चित्र तथा नाटक-सिनेमा मनुष्यकी नीच प्रवृत्तियोंको अधिकाधिक मात्रामें बढ़ा रहे हैं।

३ विवाहित स्त्री-पुरुषोंमें भ्रष्टाचार

अभी तक तो अविवाहित स्त्री-पुरुषोंकी बात हुई। अब मॉं ब्यूरो यह बताते हैं कि विवाहितोंमें यह भ्रष्टाचार कितना पैठ गया है। वे कहते हैं धनिक वर्ग मध्यम वर्ग तथा किसानोंमें मिथ्याभिमान और काममें ही अधिकतर विवाह होते हैं। इसके सिवा कोई व्यक्ति लाभप्रद नौकरी प्राप्त करनेके लिए, कोई दो जायदादोंको मिला देनेके लिए, कोई पहलेके अनुचित सम्बन्धको उचित बनानेके लिए कोई विवाहके पहले रहे हुए गर्भके बालकको जायज बनवानेके लिए, कोई बुढ़ापेमें या बीमारीमें

सेवा-चाकरी करनेवाला साथी मिले इस विचारसे अथवा कभी कभी कोई सेनामें भरती होते समय अमुक टुकड़ीमें ही भरती होनेकी अनुमति प्राप्त करनेके लिए विवाह करते हैं। कभी कभी कोई व्यक्ति इस हेतुसे भी विवाह करता है कि व्यभिचारी जीवनसे वह ऊब जाता है और अब आगे थोड़ा नियमित विषयी जीवन बिताना चाहता है।"

मों ब्यूरो आंकड़ों और उदाहरणोंसे यह सिद्ध करते हैं कि ये सब विवाह व्यभिचारको घटानेके बजाय उसे बढ़ाते हैं और यह अधोगति उन तथाकथित वैज्ञानिक अथवा कृत्रिम साधनोंकी वजहसे बहुत ज्यादा बढ़ जाती है, जिनकी खोज विषय भोगको बन्द करनेके बजाय विषय भोगमें रत रहते हुए भी उसके परिणामोंको रोकनेके लिए की गई है। पिछले २ वर्षोंमें व्यभिचारसे हुई अतिशय वृद्धि तथा तलाककी संख्यामें हुई दुगुनी वृद्धिसे सम्बन्धित पुस्तकके दुःखद हिस्सेको मैं यहां छोड़ देता हूं। और पुरुष तथा स्त्रीके समान अधिकारके सिद्धान्तके कारण स्त्रियोंमें भी निरंकुश विषय-भोगकी जो बाढ़ आई है उसका यहां केवल उल्लेख करके ही मैं संतोष मानूंगा। गर्भाधानको रोकनेके तथा गर्भपात करानेके साधन आज इतने सम्पूर्ण हो गये हैं कि स्त्री और पुरुष दोनों नीतिके बन्धनसे पूर्णतया मुक्त होकर समाजमें घूमते हैं। ऐसी दशामें विवाहका भी मजाक उड़ाया जाय तो कोई आश्चर्यकी बात नहीं। एक लोकप्रिय लेखककी पुस्तकसे मों ब्यूरो द्वारा किया हुआ यह उद्धरण देखिये मेरे मतानुसार विवाह एक अतिशय जंगली प्रथा है। इस बारेमें मुझे कोई शंका नहीं कि यदि मानव-जाति न्याय और बुद्धियुक्त जीवनकी दिशामें थोड़ी प्रगति करे, तो विवाहकी यह प्रथा जल्दी ही मिट जायगी। परन्तु पुरुष इतने जड़ बन गये हैं और स्त्रियां इतनी डरपोक हैं कि उन्हें वर्तमान कानूनोंसे अधिक उन्नत कानूनोंकी मांग करनेकी बात सूझती ही नहीं।

इन कृत्रिम साधनों तथा इनके प्रयोगोंके परिणामोंका तथा जिन सिद्धान्तोंके अनुसार इन साधनों और इनके प्रयोगोंका बचाव किया जाता है उनके परिणामोंका लेखकने सूक्ष्म निरीक्षण किया है। वे कहते हैं भ्रष्टाचार और व्यभिचारकी यह प्रवृत्ति हमें किसी नये ही भविष्यकी

ओर खींच कर ले जा रही है। वह भविष्य क्या है? उस भविष्यमें प्रकाश और प्रगति सौन्दर्य और अध्यात्म-शक्तिका विकास है या अधोगति और अन्धकार, नीचता और नित्य अतृप्त रहनेवाली पाशविकता है? पहलेके किन्हीं कड़वे कानूनोंके खिलाफ विद्रोह किया जाय तो उसके हितकारी परिणामोंके लिए भावी प्रजा सदा विद्रोह करनेवाले अपने पूर्वजोंका आभार मानती है। परन्तु यह भ्रष्टाचार तो ऐसा विद्रोह है जिससे मनुष्यके भीतर छिपे हुए पाशविक विकार फिरसे जाग्रत होते हैं और वह पशुताके विरुद्ध रचे गये आवश्यक नियन्त्रणोंको तोड़ना चाहता है। यह विद्रोह कहीं समाजकी सुरक्षितता तथा जीवनका नाश करनेवाला दुष्ट विद्रोह तो न हो? मों ब्यूरो प्रबल प्रमाण देकर यह बताते हैं कि यह विद्रोह दूसरे प्रकारका हानिकर विद्रोह है जो जीवनका सर्वनाश करने पर तुला हुआ है।

विवाहित स्त्री-पुरुष आत्म-संयमका पालन करके यथाशक्ति सन्तानको मर्यादित रखनेका प्रयत्न करें यह एक बात है और वे विषय भोगकी कामनाको तृप्त करके विषय भोगके परिणामोंको रोकनेके लिए कृत्रिम साधनों द्वारा सन्तति-नियमन करें यह दूसरी बात है। पहली स्थितिमें दोनों पक्षोंको हर प्रकारसे लाभ ही लाभ है जब कि दूसरी स्थितिमें हानिके सिवा अन्य कोई परिणाम ही नहीं आता। मों ब्यूरोने आंकड़े और कोष्ठक देकर यह सिद्ध कर दिया है कि विषय भोग भोगते हुए भी विषय-भोगके स्वाभाविक परिणामोंको रोकनेवाले साधनोंके उपयोगसे केवल पैरिसमें ही नहीं परन्तु समस्त फ्रान्समें मृत्युकी अपेक्षा जन्मकी संख्या अतिशय घट गयी है। फ्रान्सके ८७ प्रान्तोंमें से ९८ प्रान्तोंमें जन्मकी संख्या मृत्युकी संख्यासे कम है। लोट नामक प्रान्तमें १ जन्मोंके पीछे १५९ मृत्युएं दर्ज की गई थीं। १९ प्रान्त ऐसे हैं जहां मृत्युकी संख्यासे जन्मकी संख्या अधिक है। फिर भी जन्म और मृत्यु दोनोंके बीचका अन्तर तो अधिकतर प्रान्तोंमें बहुत मामूली ही है। केवल १ प्रान्तोंमें यह अन्तर किसी अंशमें उल्लेखनीय कहा जायगा। मों ब्यूरो बताते हैं कि आबादीका दिन-प्रतिदिन होनेवाला यह नाश — जिसे वे आत्महत्या कहते हैं — अभी तक जारी ही है। इसके बाद वे प्रत्येक प्रान्तकी स्थितिकी

विस्तृत जाँच करते हैं और १९१४ में नार्मण्डीके बारेमें लिखा हुआ मों बीजका यह उद्धरण देते हैं

नार्मण्डी प्रान्तमें पिछले पचास वर्षोंमें तीन लाखकी आबादी कम हो गई है। प्रत्येक बीस वर्षमें एक जिले जितनी आबादी घट जाती है। इस प्रान्तमें पाँच जिले हैं। ऊपरके हिसाबसे सौ वर्षमें नार्मण्डी प्रान्तके हरे-भरे मैदानोंमें एक भी फ्रेंच देखनेमें नहीं आयेगा। मैं फ्रेंच कहता हूँ क्योंकि उनके स्थान पर कोई दूसरे तो आ ही जायेंगे। न आयें तो वह दुःखद बात होगी। हमारी खानोंमें जर्मन मजदूर काम कर रहे हैं। और फ्रान्सके किनारे पर कुछ ही चीनी मजदूरोंका पहला दल उतरा है।

इस उद्धरणकी आलोचना करते हुए मों ब्यूरो कहते हैं "दूसरे कितने ही प्रान्तोंकी भी यही दशा है।

आबादीमें दिनों-दिन होनेवाली इस घटतीके कारण प्रजाकी लड़नेकी शक्ति भी घट जाती है, इसमें शंकाके लिए कोई स्थान नहीं है। मों ब्यूरो तो यह मानते हैं कि फ्रान्ससे विदेशोंमें जानेवाले लोगोंकी संख्यामें जो कमी हो गई है उसका भी यही कारण है। वे उदाहरणोंके साथ यह बताते हैं कि फ्रान्सकी राष्ट्रीय वृद्धि व्यापारकी वृद्धि तथा भाषा और संस्कृतिकी वृद्धि भी इसी कारणसे रुक गई है। अंतमें वे पूछते हैं

तब क्या प्राचीन संयमकी भावनाका परित्याग करनेवाली फ्रेंच प्रजाने सुख समृद्धि स्वास्थ्य और संस्कृतिके क्षेत्रमें प्रगति की है?"

इसका उत्तर वे इस प्रकार देते हैं स्वास्थ्यकी वृद्धिके बारेमें तो दो शब्द ही काफी होंगे। सब विरोधोंका हम शांत चित्तसे व्यवस्थित उत्तर देंगे। लेकिन विषय भोग पर लगा हुआ नियमन टूटा कि मनुष्यका शरीर मजबूत होने लगेगा और उसका स्वास्थ्य सुधरने लगेगा — इस कल्पनाको तो उत्तर देने जितना महत्त्वपूर्ण मानना कठिन है। आज चारों ओरसे यह आवाज उठ रही है कि प्रजाकी स्त्री-पुरुषोंकी शक्ति घट गई है। (१९१४ का) युद्ध आरम्भ हुआ उसके पहले सैनिक अधिकारियोंको समय समय पर सेनामें भरती होनेवाले लोगोंकी शारीरिक योग्यताका मापदंड नीचे उतारना पड़ा था। इस बातको सब कोई स्वीकार करते हैं कि

समाजके राष्ट्रकी तुलनामें बहुत नीचा है ऐसा क्या हम नहीं जानते? फ्रान्सको अपनी लड़ाई हुई पूंजीसे २५ अरब फ्रेंककी आय होती है जब कि जर्मनीको ५ अरबकी। फ्रान्सकी जमीनका कुल १८७९ से १९१४ तकमें ४ अरब फ्रैंक जितना उतर गया है — अर्थात् उसकी कीमत आज ९२ अरबके बजाय ५२ अरब हो गई है। खेती करनेवाले आदमियोंकी कमीके कारण हमारे यहां प्रान्तके प्रान्त वीरान पड़े हैं और कुछ प्रान्त तो ऐसे हैं जहां बूढ़ोंको छोड़कर दूसरे कोई दिखाई ही नहीं देते। भ्रष्टाचार तथा प्रयत्नपूर्वक बढ़ाया जानेवाला व्यसन प्रजाकी सामान्य शक्तिको घटानेके सिवा दूसरा कुछ कर ही क्या सकता है? नतीजा यह है कि समाजमें सर्वत्र बूढ़े ही बूढ़े दिखाई पड़ते हैं। फ्रान्समें १ की आबादीमें १७ बालक और नौजवान हैं जब कि जर्मनीमें २२ और इंग्लैंडमें २१ हैं। इसलिए बूढ़े लोगोंकी संख्या जितनी होनी चाहिये उससे अधिक है और अनीति तथा स्वच्छंदतामें उत्पन्न किये गये व्यसनके कारण असमयमें ही गाल पिचका देनेवाले और असमय बहुत पहले बूढ़े बन जानेवाले नौजवान नीचे गिरी हुई प्रजाकी दुर्दशाको और ज्यादा बढ़ाते हैं।

४ संयम और ब्रह्मचर्य

अनेक प्रकारके भ्रष्टाचारसे व्यक्ति परिवार और समाजको अपार हानि होती है यह बताकर लेखक मानसशास्त्रकी दृष्टिसे एक महत्त्वपूर्ण बात कहते हैं। मनुष्य भले ही ऐसा माने कि उसका अमुक कार्य स्वतंत्र है समाजका उससे कोई सम्बन्ध नहीं परन्तु कुदरतका नियम ही ऐसा है कि अतिशय गुप्तसे गुप्त और व्यक्तिगतसे व्यक्तिगत कार्यकी प्रतिध्वनि भी दूर दूर तक पहुंचती है। अपने कृत्यको पाप मानते हुए भी जो ऐसा आग्रह रखता है कि उसके पापसे समाजका कोई सम्बन्ध नहीं है वह पापकृत्यमें इतना ज्यादा डूब जाता है कि अपने कृत्यको पाप मानना भी बन्द कर देता है और बादमें उस पापका प्रचार करता है। पाप कभी छिपा नहीं रहता। परन्तु अंदरकी लहरोंकी तरह पाप सारे समाजमें अपनी लहरें फैलाता है। इसलिए तथाकथित गुप्त पापाचार भी समाजको अपार हानि पहुंचानेवाला सिद्ध होता है।

तो जर्मनीकी इतनी औद्योगिक प्रगति कभी न हुई होती। जर्मनीकी उद्योग-शालायें ठीक प्रकारकी हैं। औद्योगिक तालीम देनेवाली ५ शालायें हैं जिनमें ७ विद्यार्थी पढ़ते हैं। इससे भी ज्यादा शालायें बुनाई वगैरह धन्धोंकी हैं जिनमें ये अलग ग्रामशालाएं ? न करार विद्यार्थी हैं। ऊंची शिक्षा देनेवाले विद्यालय हैं जिनमें १५ विद्यार्थी पढ़ते हैं और ये विद्यालय यूनिवर्सिटियोंकी तरह डॉक्टर — पंडित — की ग्रेज्युएट उपाधि देते हैं। १६५ व्यापारिक शालाओंमें ११ से अधिक विद्यार्थी शिक्षा प्राप्त करते हैं। दूसरी अलग शालाओंमें कृषि-शिक्षण दिया जाता है जिनमें अधिक विद्यार्थी पढ़ते हैं। इस प्रकार धन उत्पन्न करनेवाले अलग उद्योग सीख रहे हैं। ४ लाख जनसंख्यावाले मुल्कमें हमारे यहांकी उद्योग-शालाओंमें पढ़नेवाले १५ विद्यार्थी किस गिनतीमें हैं? और हमारे किसानोंकी आबादीमें से ? लाख व्यक्ति कम हैं जो विद्यालयमें शिक्षा ले सकते हैं। तब हमारे देशमें कृषि उद्यमका शिक्षण देनेवाली शालाओंमें केवल १२२५ विद्यार्थी ही क्यों हैं?

जर्मनीकी असाधारण प्रगति केवल आबादीकी संख्या अधिक होनेके कारण ही नहीं हुई है इतना तो मों ब्यूरो स्वीकार करते हैं। परन्तु उनका यह कहना भी सही है कि अन्य सब परिस्थितियां अनुकूल हों तो इसकी अधिक संख्या राष्ट्रीय प्रगतिकी एक आवश्यक शर्त बन जाती है। बेशक वे यह सिद्ध करना चाहते हैं कि जनसंख्याकी वृद्धि राष्ट्रकी समृद्धि तथा नैतिक प्रगतिकी वृद्धिमें बाधक नहीं होती। हिन्दुस्तानमें हमारी स्थिति जनसंख्याके विषयमें फ्रांसके जैसी नहीं है फिर भी इतना तो कहना चाहिये कि जर्मनीकी तरह हमारे यहां जनकी संख्या जो अधिक है वह राष्ट्रीय प्रगतिमें सहायक नहीं है। लेकिन मों ब्यूरो द्वारा दिये हुए उदाहरणों और अनुमानोंकी दृष्टिसे हिन्दुस्तानकी स्थितिका हमें आगे एक प्रकरणमें विचार करना है इसलिए इसकी चर्चा हम यहां नहीं करेंगे। आगे चलकर मों ब्यूरो फ्रांस और जर्मनीकी स्थितिकी तुलना इस प्रकार करते हैं "यूरोपके देशोंमें राष्ट्रीय समृद्धिकी दृष्टिसे फ्रांसका नम्बर चौथा आता है और यह भी तीसरे

रिबिंग कहते हैं मैं २५, ३ या इससे भी ऊपरकी उमरके बहुतसे ऐसे युवकोंको जानता हूं जिन्होंने विवाह होने तक ब्रह्मचर्यका पालन किया है। ऐसे मनुष्य अनेक हैं लेकिन वे इस बातकी घोषणा नहीं करते। अनेक विद्यार्थियोंने तो मेरे सामने यह शिकायत की है कि विषयेच्छाको वशमें करना आसान है इस बात पर मुझे जितना बल देना चाहिये उतना मैंने नहीं दिया है।

डॉ॰ एक्टन कहते हैं कि विवाहसे पहले ब्रह्मचर्यका पालन संभव है और आवश्यक भी है। इग्लैण्डके डॉ॰ पेगेट कहते हैं ब्रह्मचर्यसे जैसे आत्माको हानि नहीं पहुंचती वैसे ही शरीरको भी नहीं पहुंचती। संयमके समान सदाचारका दूसरा कोई नियम नहीं है।

दूसरे एक डॉक्टरका मत है ब्रह्मचर्यसे किसी भी प्रकारकी हानि होती है, यह विचार जितना ज्यादा भ्रमपूर्ण है! इस भ्रमको तोड़नेके लिए जितना प्रयत्न किया जाय उतना थोड़ा है। क्योंकि कुछ माता-पिताओंके मनमें भी यह भ्रम पाया जाता है। वास्तवमें ब्रह्मचर्य तो नौजवानोंके शरीर मन और आत्माका मजबूत कवच है।

सर एण्ड्र क्लार्क कहते हैं संयमसे मनुष्यकी शक्ति बढ़ती है उसके ज्ञानचक्षु तेज होते हैं। स्वच्छंदाचार मनको कमजोर बनाता है प्रमादको बढ़ाता है अध:पतनका मार्ग खोल देता है और एक पीढ़ीसे दूसरी पीढ़ीमें रोगकी विरासतको फैलाता है।

प्रेमका शरीरशास्त्र नामक एक पुस्तकमें एक डॉक्टर लिखते हैं ब्रह्मचर्यसे किसी प्रकारका रोग होनेका एक भी उदाहरण तो कोई मुझे बताये!

बर्लिनके मानसरोग-शास्त्रके अध्यापक डॉ॰ ड्यूबोय आदिके साथ लिखते हैं यह मालूम हुआ है कि मानसिक रोगसे पीड़ित अनेक लोग विषयी जीवन बितानेवाले ही होते हैं।

मोसे फॉनियर कहते हैं ब्रह्मचर्यसे स्वास्थ्यको हानि होती है, ऐसा कहनेवालेका अज्ञान होना चाहिये। एक डॉक्टरके नाते मैं भी यह कहता हूं कि इस बातमें थोड़ी भी सचाई नहीं है। इसके सिवा २१ वर्षकी उमरमें पूर्ण विषय-भोगकी शक्ति मनुष्यमें आती ही नहीं विषयकी इच्छा भी उसमें जाग्रत नहीं होनी चाहिये। यदि कृत्रिम उत्तेजन न

तब इसका उपाय क्या है? लेखक स्पष्ट कहते हैं कि कानूनन इस बुराईको रोका नहीं जा सकता। आत्म-संयम ही एकमात्र इसका उपाय है ऐसा कहकर वे अविवाहितोंके लिए संपूर्ण ब्रह्मचर्यके विषयमें लोकमत तैयार करनेकी परम आवश्यकता, जो लोग अपनी विषयेच्छाको दबा नहीं सकते उनके लिए विवाह करनेकी आवश्यकता तथा विवाह करके अत्यन्त संयमसे विवाहित जीवन बितानेकी आवश्यकताका विस्तृत विवेचन करते हैं।

परन्तु कुछ लोग कहते हैं ब्रह्मचर्य स्त्री-पुरुषके स्वास्थ्यको हानि पहुंचाता है और उनके व्यक्तिगत स्वातंत्र्य पर आक्रमण करता है।" लेखक इस दलीलकी धज्जियां उड़ाकर कहते हैं विषयेच्छा आहार और निद्रा जैसी वस्तु नहीं है जिसके बिना मनुष्यका काम ही न चल सके। मनुष्य खाना न खाये तो बीमार पड़ जाय नींद न ले तो भी बीमार पड़ जाय टट्टीको रोके तो अनेक बीमारियोंका शिकार हो जाय लेकिन विषयेच्छाको वह आसानीसे रोक सकता है इस इच्छाको रोकनेकी शक्ति ही ईश्वरने उसे दी है। आज जो कहा जाता है कि विषयेच्छा स्वाभाविक हो गई है उसका कारण तो आजकी अनेक उत्तेजक वस्तुएं हैं जिनकी वजहसे यह इच्छा युवकों और युवतियोंमें बालिग होनेसे पहले ही कृत्रिम रूपमें जाग्रत हो जाती है। लेकिन लेखक अपना यह विचार प्रकट करके ही नहीं बैठ गये। उन्होंने बड़े बड़े डॉक्टरोंके प्रबल प्रमाण देकर यह सिद्ध किया है कि आत्म-निग्रहसे स्वास्थ्यको हानि नहीं पहुंचती इसके विपरीत आत्म-निग्रह ही स्वास्थ्यका एकमात्र अमोघ साधन है।

लन्दनके रॉयल कॉलेजके एक प्रोफेसर सर जामोलस जिनका यह मत है कि श्रेष्ठ पुरुषोंके जीवनसे यही बात हमें सीखनेको मिलती है कि विषयेच्छा जैसी दुर्दम इच्छा भी संकल्प-बलसे वशमें की जा सकती है। जब संकल्प-बलसे उसे रोका जाता है, तब उसके परिणाम अच्छे ही आते हैं परन्तु ब्रह्मचर्यका अर्थ है मनका ब्रह्मचर्य विचारका ब्रह्मचर्य। यह बड़े महत्वकी बात है।

५ व्यक्ति-स्वातन्त्र्यकी दलील

ब्रह्मचर्यसे शरीरको लाभ होता है यह बताकर लेखक अब उससे होनेवाले नैतिक और बौद्धिक लाभोंकी चर्चा करते हैं। एक बड़े विद्वानके शब्दोंमें वे कहते हैं ब्रह्मचर्यका तात्कालिक लाभ नौजवान लोग अधिक देख सकेंगे। उससे उनकी स्मृति स्थिर और संग्राहक बनती है, तथा बुद्धि तेजस्वी और फलवती बनती है। इससे नौजवानोंकी संकल्प-शक्ति बलवान बनती है और उनके चरित्रमें ऐसी शक्ति आ जाती है जिसकी स्वेच्छाचारीको स्वप्नमें भी कल्पना नहीं हो सकती। उनकी दृष्टिमें ही ऐसा परिवर्तन आ जाता है कि उन्हें अपने आसपासकी हर वस्तुमें सच्चिदानन्द स्वरूपकी शोभा दिखाई देती है। लेखक स्वयं कहते हैं कहां तो ब्रह्मचारी युवकका आनन्द उल्लास और प्रसन्नतायुक्त आत्मश्रद्धा और कहां विषयका दास बने हुए युवककी अशांति और उन्माद? कहां ब्रह्मचारीका सुदृढ़ और नीरोग शरीर और कहां स्वेच्छाचारीका सड़ा हुआ रोगोंका घर बना हुआ शरीर?

इसके बाद लेखक स्वतंत्रता की दलील पर विचार करते हैं। आदमी अपने शरीरके साथ चाहे जैसा व्यवहार करे, इस पर नियंत्रण किसलिए होना चाहिये? लेखक इस प्रश्नका उत्तर देते हुए कहते हैं कि विषय-भोगकी स्वतंत्रता पर नियंत्रण समाजशास्त्र तथा मानसशास्त्र दोनोंकी दृष्टिसे आवश्यक है।

समाजशास्त्रकी दृष्टिको वे इस प्रकार प्रस्तुत करते हैं समाज जीवन ही एक ऐसी अखंड — सजीव — वस्तु है जिसमें स्वतंत्र और व्यक्तिगत कही जा सकनेवाली एक भी प्रवृत्ति नहीं है। हम कोई भी कार्य क्यों न करें, उसकी प्रतिध्वनि अनजानी और अकल्पित दिशाओंमें फैलती है। मनुष्यके मनुष्यत्वमें ही उसके सामाजिक होनेका गुण समाया हुआ है। ऐसा एक भी क्षेत्र नहीं है — फिर वह धर्म हो राज्य हो समाज हो या अर्थ हो — जिसमें व्यक्तिके कार्यका समष्टिके साथ सम्बन्ध न हो। और यह सम्बन्ध ऐसा अनिवार्य है कि समाजशास्त्री बेचारा यह सोचकर बड़ी परेशानीमें पड़ जाता है कि व्यक्तिकी स्वतंत्रताका प्रतिपादन

मिलता हो तो असमयमें विषयेच्छा उत्पन्न होना जरूरी या उल्टी तालीमका परिणाम है।

इतने प्रमाण देनेके बाद लेखक १ २ में ब्रुसेल्समें हुई जगतके बड़े बड़े डॉक्टरों तथा महान रोग-चिकित्सकोंकी कांग्रेसमें पास हुआ एक प्रस्ताव उद्धृत करते हैं नौजवानोंको यह सीखना चाहिये कि ब्रह्मचर्य तथा संयम हानिकारक नहीं है इतना ही नहीं वैद्यक और आरोग्यकी दृष्टिसे ये दोनों अत्यन्त आवश्यक हैं।

लेखक संपूर्ण विषयका उपसंहार इस प्रकार करते हैं इस प्रकार सारी बात पूरी तरह सुननेके बाद समाजशास्त्रियों और नीतिशास्त्रियोंने पुकार पुकार कर यह निर्णय घोषित किया है, विषयेच्छा आहार और निद्रा जैसी वस्तु नहीं है जिसकी अमुक मात्रामें तृप्ति होनी ही चाहिये। कुछ असाधारण उदाहरणोंको छोड़ दें तो कहा जा सकता है कि बड़ी कठिनाई या दुःखके बिना स्त्री-पुरुष दोनोंके लिए ब्रह्मचर्यका पालन आसान है। सामान्य गठनवाले मनुष्यको ब्रह्मचर्य और आत्म-संयमसे किसी भी रोगके होनेका डर नहीं है और अधिकतर रोगोंकी उत्पत्ति स्वच्छन्दतासे ही होती है। आवश्यकतासे अधिक पुष्टिका मार्ग कुदरतने स्वाभाविक वीर्य-स्खलन और रजोदर्शनके द्वारा भी खोल ही रखा है।

संसारमें ब्रह्मचारियोंको देखें तो वे दूसरोंकी अपेक्षा चरित्रमें कम बलवान संकल्प-बलमें कम समर्थ और शरीर-बलमें जरा भी घटिया नहीं मिलेंगे। विवाहके बाद विवाहित जीवनकी जिम्मेदारी भी वे दूसरोंसे कम मात्रामें अदा नहीं करते। इस प्रकार जिस वृत्तिको आसानीसे रोका जा सकता है उसकी तृप्ति न तो आवश्यक है और न स्वाभाविक है। बालिग उमरके नौजवान तो अपनी शक्तिका जितना संग्रह करेंगे उतना ही उन्हें लाभ होगा। इस उमरमें उनके भीतर रोगको रोकनेकी शक्ति कम होती है। मृत्युकी संख्या भी इसी उमरमें अधिक होती है। इस विकास-कालमें कुदरतको भी नौजवानोंके शरीर और मनको बढ़ानेमें अधिक श्रम करना पड़ता है। ऐसे कठिन समयमें हर प्रकारकी अतिशयता हानिकारक है परन्तु विषयेच्छाकी असमय उत्पन्न होनेवाली उत्तेजना तो विशेष रूपसे हानिकारक है।

५ व्यक्ति-स्वातन्त्र्यकी दलील

ब्रह्मचर्यसे शरीरको लाभ होता है, यह बताकर लेखक अब उससे होनेवाले नैतिक और बौद्धिक लाभोंकी चर्चा करते हैं। एक बड़े विद्वानके शब्दोंमें वे कहते हैं ब्रह्मचर्यका तात्कालिक लाभ नौजवान लोग अधिक देख सकेंगे। उससे उनकी स्मृति स्थिर और संग्राहक बनती है तथा बुद्धि तेजस्वी और फलवती बनती है। इससे नौजवानोंकी संकल्प-शक्ति बलवान बनती है और उनके चरित्रमें ऐसी शक्ति आ जाती है जिसकी स्वेच्छाचारीको स्वप्नमें भी कल्पना नहीं हो सकती। उनकी दृष्टिमें ही ऐसा परिवर्तन आ जाता है कि उन्हें अपने आसपासकी हर वस्तुमें सच्चिदानन्द स्वरूपकी लीला दिखाई देती है। लेखक स्वयं कहते हैं कहां तो ब्रह्मचारी युवकका आनन्द उल्लास और प्रसन्नतायुक्त आत्मश्रद्धा और कहां विषयका दास बने हुए युवककी अशांति और उन्माद? कहां ब्रह्मचारीका सुदृढ़ और नीरोग शरीर और कहां स्वेच्छाचारीका सड़ा हुआ रोगोंका घर बना हुआ शरीर?

इसके बाद लेखक स्वतंत्रता की दलील पर विचार करते हैं। आदमी अपने शरीरके साथ चाहे जैसा व्यवहार करे, इस पर नियंत्रण किसलिए होना चाहिये? लेखक इस प्रश्नका उत्तर देते हुए कहते हैं कि विषय भोगकी स्वतंत्रता पर नियंत्रण समाजशास्त्र तथा मानसशास्त्र दोनोंकी दृष्टिसे आवश्यक है।

समाजशास्त्रकी दृष्टिको वे इस प्रकार प्रस्तुत करते हैं "समाज जीवन ही एक ऐसी अखंड — सजीव — वस्तु है जिसमें स्वतंत्र और व्यक्तिगत कही जा सकनेवाली एक भी प्रवृत्ति नहीं है। हम कोई भी कार्य क्यों न करें, उसकी प्रतिध्वनि अनजानी और अकल्पित दिशाओंमें फैलती है। मनुष्यके मनुष्यत्वमें ही उसके सामाजिक होनेका गुण समाया हुआ है। ऐसा एक भी क्षेत्र नहीं है — फिर वह धर्म हो राज्य हो समाज हो या अर्थ हो — जिसमें व्यक्तिके कार्यका समष्टिके साथ सम्बन्ध न हो। और यह सम्बन्ध ऐसा अनिवार्य है कि समाजशास्त्री बेचारा यह सोचकर बड़ी परेशानीमें पड़ जाता है कि व्यक्तिकी स्वतंत्रताका प्रतिपादन

करनेके कारण उसे संकुचित विचारवाला होनेकी बदनामी तो न उठानी पड़े? *यदि मनुष्यको अमुक परिस्थितियोंमें रास्ते पर थूकनेकी स्वतंत्रता* नहीं हो सकती तो अपने वीर्यका किसी भी जगह उपयोग करनेकी स्वतंत्रता भला उसे कैसे हो सकती है? यह कार्य जितना महत्त्वपूर्ण है उतना ही अधिक समष्टि पर उसका असर पड़ता है। कोई युवक और युवती भले ही यह मानें कि किसी कमरेके अन्दर घुसकर वे जो कार्य करते हैं उसका जगतके साथ कोई सम्बन्ध नहीं है परन्तु ऐसा मानना शुद्ध मूर्खता है। मानवताका सबल तत्त्व एक देशसे दूसरे देशको तथा एक प्रजासे दूसरी प्रजाको इस प्रकार बांध देता है कि कोई कार्य कितना ही गुप्त क्यों न हो वह मजबूतसे मजबूत दीवालोंको तोड़कर तथा विधानसे विशाल सीमाओंको लांघकर बाहर निकल ही जाता है। गर्भाधानको रोकनेका और विषय-भोगके लिए ही अपने वीर्यका उपयोग करनेके अपने अधिकारका दावा करनेवाले नौजवान इच्छासे या अनिच्छासे समाजमें अव्यवस्था और छिन्नभिन्नताके बीज बोते हैं। समाजकी सारी रचना ही इस बातको ध्यानमें रखकर हुई है कि मनुष्य अपने कामकी जिम्मेवारीसे छूट न जाय। ऐसा करनेवाला मनुष्य अपनी जिम्मेवारीसे बाहर निकल कर समाजकी व्यवस्थाको छिन्न-भिन्न कर देता है और समाजका चोर बनता है।

लेखक मानसशास्त्रकी दृष्टि इस प्रकार प्रस्तुत करते हैं "स्वतंत्रता ऊपरसे तो सुख देनेवाली लगती है, परन्तु वास्तवमें वह एक बड़ा बोझ है। और उसके बड़ा बोझ होनेमें ही उसकी विशेषता है। वह मनुष्यको बन्धनमें बांधती है और कर्तव्यका पालन उसके लिए अनिवार्य बनाती है। व्यक्तिकी इच्छा स्वतंत्र बननेकी होती है उसमें अपनापन प्रकट करनेका उत्साह उत्पन्न होता है। यह सब ऊपरसे तो आसान दिखाई देता है। लेकिन जब वह इस दिशामें प्रयत्न करने लगता है तब उसे पता चलता है कि यह काम कितना अटपटा और कष्टमय है। यह सच है कि हमारा नैतिक जीवन एक और अखंड है। परंतु हमारे भीतर तो परस्पर-विरोधी अनेक इच्छायें अनेक विचार पड़े हुए हैं। *ऐसी स्थितिमें यह अखंडिता किस कामकी?* हे भाई, तुम सब

यह कहो कि तुम्हें अपना व्यक्तित्व प्रकट करना है परंतु मैं पूछता हूं कि तुम्हें अपनी दैवी सम्पत्ति प्रकट करनी है या आसुरी सम्पत्ति? लेकिन शायद तुम उत्तर दोगे कि तुम्हें दोनों से एक भी सम्पत्ति प्रकट नहीं करनी है, तुम्हें तो अपनी अलग सम्पत्ति प्रकट करनी है। ठीक है तो एक बातका तुम ध्यान रखना। इस अलौकिकता इस संभाविताको प्रकट करनेके लिए तुम्हें कोई चुनाव तो करना ही पड़ेगा। यह संभाविता भी आसानीसे प्राप्त नहीं होती। शरीरको तुम जितना मारोगे उतना ही तुम्हारी आत्माका विकास होगा। ईसा मसीहने कहा था मेहूंके दानेका जमीनमें जब तक नाश नहीं होगा तब तक उसमें से अंकुर नहीं फूटेगा।

इस संबंधमें मों व्यूरो एक लेखकका यह उद्धरण देते हैं "तुम्हें पुरुषार्थ बताना है! पुरुषार्थका अधिकार सिद्ध करना है! लेकिन वह अधिकार नहीं किन्तु कर्तव्य है। स्वतंत्रताका अर्थ अपनी इच्छानुसार आचरण करनेकी छूट हो तो उसमें गर्व करनेकी कोई बात ही नहीं है। वह तो विकारोंकी गुलामी हामी। सच्ची स्वतंत्रता यदि तुम्हें चाहिये यदि तुम्हें सच्चे जितात्मा बनना हो तो विकारोंके साथ तुम्हें अनन्त युद्ध करना चाहिये। इसके सिवा सच्चे शिक्षाकारों और धर्मोपदेशकोंने क्या कहा है वह भी देखें ब्रह्मचर्य स्वास्थ्यकी जड़ है। असंयमका अर्थ है अनेक शत्रुओंको निमंत्रण देना। ब्रह्मचर्यका पहली बार भंग करनेवाला युवक भले ही यह समझे कि मैं थोड़ी देरका आनन्द भोग लेना हूं परन्तु वास्तवमें वह भयंकर शक्तिके साथ खिलवाड़ करता है। इस भयंकर शक्तिका एक बार स्वाद करनेके बाद बार बार उसका स्वाद करनेकी इच्छा होती है और मनुष्य जितात्मा न रह कर कामका दास बन जाता है। इस प्रकार एक बार अनजानमें ब्रह्मचर्यका भंग करनेके फल-स्वरूप अनेक बड़े गिरते और जीवन नष्ट हो गये हैं।

शरीरशास्त्रके एक महान अध्यापक कहते हैं उनकी विषये स्त्रीकी मनोनिवृत्ति तृप्ति व्यभिचार तो है ही लेकिन वह शरीरके लिए भी बड़ी हानिकारक है। एक बार हम उनके बसमें हुए कि वह हम

पर सवारी गांठ लेती है। और जैसे जैसे एकके बाद दूसरी तृप्ति होती जाती है वैसे वैसे उसकी आदत हमारे भीतर घर करती जाती है।

इन सब उदाहरणोंके अंतमें मों ब्यूरो सारी दलीलका नीचेके उद्धरणसे उपसंहार करते हैं "विषयेच्छा ऐसी वस्तु है जो बुद्धि और संकल्प-शक्ति दोनोंके अंकुशमें रह सकती है। विषयेच्छा केवल विषयकी इच्छा ही है परन्तु वह विषयकी आवश्यकता नहीं है। उसकी तृप्तिके बिना हम जी ही नहीं सकते ऐसी बात नहीं है। वह आवश्यकता तो है ही नहीं। फिर भी अनेक लोग मानते हैं कि वह जीवनकी आवश्यकता है। और ऐसा मानकर वे विषय-भोगको आवश्यक मानते हैं। इस रूपमें कुदरतके कानूनके अधीन होनेकी बात नहीं है। यह तो शुद्ध स्वेच्छासे ही होनेवाला कृत्य है — जिसके पीछे मनुष्यका संकल्प रहता है, विचार रहता है बुद्धि रहती है और उसका जितना संयम करना हो उतना स्वेच्छासे किया जा सकता है।

६ आजीवन ब्रह्मचर्य

अभी तक लेखकने ब्रह्मचर्य और संयमकी महिमा बताई। अब वे एक प्रकरणमें इस बातकी चर्चा करते हैं कि अविवाहित कालका ब्रह्मचर्य ही नहीं परन्तु आजीवन ब्रह्मचर्य कितना संभव है और कितना महत्त्व पूर्ण है। देखिये उनका यह विधान

आजीवन ब्रह्मचर्य विषयकी दासतासे मुक्ति दिलानेवाला है। ऐसा ब्रह्मचर्य पालनेवाले वीरोंमें अनेक युवक-युवती ऐसे निकलेंगे जो किसी जीवन-कार्यका निश्चय करके उसका वरण करते हैं और दूसरा विवाह करनेसे इनकार करते हैं। किसीने माता-पिताकी सेवाका अपना कर्तव्य माना है तो किसीने अपने माता-पितासे विहीन भाई-बहनोंके माता-पिताका स्थान लेनेका निश्चय किया है। कोई कला और विज्ञानके लिए अपना जीवन अर्पण करके बैठा है तो कोई पीड़ितों और रोगियोंकी सेवा अथवा शिक्षण-कार्यके लिए अपना जीवन अर्पण करके बैठा है। इस निश्चयके पालनमें किसीको अपने विकारोंके साथ कठोर युद्ध करना पड़ा है तो किसीका मार्ग भगवानने ही साफ बना दिया है। जो भी

हों। ऐसे सब काम अपने अपने मनके साथ या ईश्वरके समक्ष प्रतिज्ञा कर लेते हैं कि जिस ध्येयका वरण उन्होंने किया है वही अंतिम है दूसरे स्त्री या पुरुषसे विवाह करना व्यभिचार है। माइकेल एन्जेलोसे जब किसीने विवाह करनेकी बात कही तब वे बोले चित्रकला मेरी ऐसी सहचरी है कि वह किसी सपत्नीको सहन ही नहीं कर सकती।

उपर्युक्त इस मतका मैं विविध क्षेत्रोंमें काम करनेवाले अपने यूरोपियन मित्रोंके अनुभवके आधार पर समर्थन कर सकता हूं — मैंने ऐसे आजीवन ब्रह्मचर्य पालनेवाले अनेक मित्र देखे हैं। केवल हिन्दुस्तान ही एक ऐसा देश है जहां हम बालकके जन्मसे ही उसके विवाहकी बातें करने लगते हैं। यहां माता-पिताको अपने बच्चोंको विवाहित देखने और पैसे-टकेसे संपन्न देखनेके सिवा दूसरा कोई विचार या मनोरथ नहीं होता। इनमें से पहली बातसे मनुष्यका मन और शरीर असमयमें ही क्षीण हो जाते हैं और दूसरी बातसे आलस्यको उत्तेजन मिलता है और मनुष्य दूसरोंकी मेहनत पर जीनेवाला परोपजीवी प्राणी बन जाता है। हम कहते हैं कि ब्रह्मचर्य और निर्धनताका व्रत लेना अति कठिन है इन्हें हम असाधारण व्रत मानते हैं और कहते हैं कि केवल महात्मा और योगीजन ही ये व्रत सिद्ध कर सकते हैं। और अन्तमें हम यह कहकर सन्तोष मान लेते हैं कि महात्मा और योगी तो संसारमें विरले ही होते हैं। परन्तु हमें इस बातका भान नहीं होता कि महात्मा पन और योग ऐसे समाजमें कभी नहीं पाये जाते जिसका नैतिक दिवाला निकल गया है। कहानीके उस खरगोश और कछुएकी शर्तकी तरह दुराचार और सदाचारमें शर्त लगी हुई है। दुराचार खरगोशकी तरह बड़ी लंबी छलांगें मारता है सदाचार कछुएकी तरह धीरे धीरे परन्तु मजबूत और स्थिर गतिसे चलता है। इस न्यायसे पश्चिमका व्यभिचार हमारे देशमें बिजलीकी गतिसे आ पहुंचता है आकर वह अपनी चमकीली मोहिनीसे हमें चकाचौंध कर देता है और सत्यका भान भुला देता है। पश्चिमकी इस मोहिनीसे मोहित होकर हमें ब्रह्मचर्यका व्रत लेनेमें मानो लज्जा आती है और निर्धनताको तो पाप माननेकी हद तक हम पहुंच जाते हैं। परन्तु पश्चिम असलमें वैसा है ही नहीं जैसा कि हिन्दुस्तानमें

हमें उसका दर्शन होता है। जिस प्रकार दक्षिण अफ्रीकाके गोरे वहां बसे हुए हिन्दुस्तानियोंको देखकर सारे हिन्दुस्तानियोंके बारेमें अपना मत बनाते हैं उसी प्रकार पश्चिमसे जो मनुष्य और माल यहां प्रतिदिन आता रहता है उसके आधार पर यदि हम पश्चिमका अनुमान लगायेंगे तो उसके साथ अन्याय करेंगे। जो मनुष्य पश्चिमके भ्रामक बाह्य रूपके पार जाकर गहराईमें उतर कर देखेगा उसे पता चलेगा कि पश्चिममें नैतिकता तथा धार्मिकता मन्द परन्तु अटूट स्रोत बहता रहता है। यूरोपके आपकी तरह चमकदार रेगिस्तानमें जहां तहां हरेभरे स्थान और जलाशय दिखाई देते हैं वहां पीनेकी इच्छा रखनेवालेको अत्यन्त स्वच्छ जीवनदायक — अमृत — पीनेको मिलता है। वहां सैकड़ों स्त्रियां और पुरुष किसी तरहका शोरगुल मचाये बिना नम्रतापूर्वक केवल किसी स्वजनकी अथवा अपने देशकी सेवाके खातिर आजन्म ब्रह्मचर्यकी और निर्धनताकी प्रतिज्ञा लेते हैं। बहुत बार हम धर्मके विषयमें कुछ ऐसा प्रकाश करने लगते हैं, मानो धर्मका व्यवहारके साथ कोई सम्बन्ध ही न हो और उसका पालन मानो हिमालयके जंगलमें और किसी अगम्य गुफामें बैठनेवाले योगी पुरुषके लिए ही आवश्यक हो। जिस धर्मका व्यवहारके साथ कोई सम्बन्ध नहीं जिस धर्मका व्यवहार पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता वह धर्म ही नहीं है। जिन युवकों और युवतियोंके लिए यंग इंडिया तथा नवजीवन प्रति सप्ताह लिखा जाता है वे यह समझ लें कि अगर उन्हें अपने आसपासका वातावरण शुद्ध बनाना हो और अपनी कमजोरियां दूर करनी हों तो ब्रह्मचर्यका पालन करना उनका कर्तव्य है और इस व्रतके पालनको वे जितना कठिन मानते हैं उतना कठिन वह नहीं है।

परन्तु अब फिर हम लेखककी बात सुनें "अगर अधिकांश लोगोंके लिए हम विवाहका जीवनकी स्वाभाविक स्थिति मान लें तो भी यह नहीं कहा जा सकता कि सभी लोग विवाह कर सकते हैं या सबको विवाह करना ही चाहिये। ऊपर हम देख चुके हैं कि कुछ लोग भिन्न भिन्न ध्येयको सामने रखकर ब्रह्मचर्यका पालन करते हैं। उनके सिवा कुछ ऐसे लोग होते हैं जिन्हें मजबूरीसे ब्रह्मचर्य पालना पड़ता है (१) धन्धेके कारण या गरीबीके कारण अनिवार्य रूपसे विवाहको स्थगित रखनेवाले लोग

(२) अपने योग्य वर अथवा वधू न पानेवाले लोग और (३) एस अंग दोष अथवा रोगवाले लोग जिसके सन्तानमें उतरनेका भय हो। उत्तम कार्यके लिए अथवा ध्येयके लिए ब्रह्मचर्यका पालन करनेवाले सशक्त और साधन सम्पन्न स्त्री-पुरुषोंके ब्रह्मचर्य-पालनसे एसे लोगोंमें उत्साह और आशाका संचार होता जिन्हें मजबूरीसे ब्रह्मचर्यका पालन करना पड़ता है। व्रती स्त्री-पुरुष तो ब्रह्मचारी-जीवनको अपूर्ण नहीं बल्कि पूर्ण जीवन कम आनन्दका नहीं परन्तु परमानन्दका जीवन मानते हैं। उनके जीवन अविवाहित तथा विवाहित दोनों स्त्री-पुरुषोंके लिए प्रकाश-स्तम्भका काम करते हैं।

फॉरेस्टर नामक शिक्षाशास्त्रीका मत उद्धृत करके लेखक कहते हैं "ब्रह्मचर्य-व्रत अनेक विकारों तथा पशुवृत्तियों पर भारी अंकुशका काम करता है। विवाहित जीवन भी एक कवचके समान है। इसमें स्त्री और पुरुष एक-दूसरेको विषय-तृप्तिका साधन माननेके बदले स्वतंत्र तथा मुक्त आत्मा मानना सीखते हैं। ब्रह्मचर्यका मजाक उड़ानेवाले यह बात नहीं समझते कि उनका मजाक समाजको व्यभिचार और अनेक-पत्नीत्वकी दिशामें ले जानेवाला है। यदि हम इस बातको स्वीकार कर लें कि विषयकी इच्छाको सदा तृप्त करते ही रहना चाहिये तो यह प्रश्न हो सकता है कि विवाहित स्त्री-पुरुषको भी किसलिए शील और सदाचारका पालन करना चाहिये? अनेक विवाहित युगलोंमें कोई एक व्यक्ति एसा अशक्त होता है जिसके फलस्वरूप भी दोनों साथियोंके लिए ब्रह्मचर्यका पालन आवश्यक हो जाता है। ब्रह्मचर्यकी महिमाको जितना अधिक हम स्वीकार करेंगे उतना ही अधिक हम एकपत्नी-व्रतके आदर्शको ऊंचा उठायेंगे।

७ विवाहका पवित्र संस्कार

आजीवन ब्रह्मचर्यके प्रकरणके बाद पुस्तकमें विवाहकी आवश्यकता तथा अविच्छिन्नता सम्बन्धित प्रकरण आते हैं। आजीवन ब्रह्मचर्य श्रेष्ठ वस्तु है ऐसा आग्रह रखते हुए भी लेखक यों पूरी यह बात स्वीकार करते हैं कि जन-समूहके लिए यह संभव नहीं है इसलिए विवाहका बन्धन स्वीकार करना ही उनका धर्म हो जाता है। अगर विवाहके हेतु और

मर्यादाको अच्छी तरह समझ लिया जाय तो कोई मर्यादावानको रोकनेके कृत्रिम साधनोंकी हिमायत न करे। आज जो भ्रष्टाचार फैला हुआ है उसका कारण तो गलत नैतिक नियम है। कुछ अप्रगल्भ लेखक विवाहके बन्धनका मजाक उड़ाते हैं। उनके विषयमें मैं अधूरी मदद ... बाकी पीढ़ियोंके सौभाग्यसे जो नैतिकशास्त्र क-ख-ग भी नहीं जानते, एवं इन अधूरे नीतिशास्त्रियोंके मतकी कोई कीमत नहीं है, क्योंकि मानसशास्त्रियों तथा समाजशास्त्रियोंका ऐसा मत नहीं है। हास्य-विनोदके द्वारा भ्रष्ट्याचारको बढ़ानेवाले लेखकोंके मत और विचारशील शास्त्रियोंके मतके बीच जमीन-आसमानका अन्तर है।"

निरंकुश और स्वच्छन्द प्रेमकी दलीलको मैं अधूरी नहीं मानते। विवाह स्त्री-पुरुषका आजीवन सहचार और धर्म-सम्बन्ध है। विवाह कोई कानूनी करार नहीं, वह तो एक पवित्र संस्कार है। इस संस्कारसे मनुष्य पशु न रहकर सच्चा मनुष्य बनता है और सिर ऊंचा रखकर चलना सीखता है। विवाह हो जानेसे स्त्री-पुरुषको एक-दूसरेके साथ मनचाहा बरताव करनेकी स्वतंत्रता मिल जाती है, ऐसा मानना गलत है। इसी तरह यह मानना भी गलत है कि विवाह करनेसे स्त्री-पुरुषको एक-दूसरेके साथ चाहे जिस प्रकारसे विषय-भोग भोगनेकी स्वतंत्रता मिल जाती है। संयम अगर विवाहित जीवनमें प्रवेश न करे, तो विवाहित जीवनका हेतु ही नष्ट हो जाता है। सेण्ट फ्रान्सिस ऑफ सैल्स कहते हैं — जब दवा मिलेमें हमेशा खतरा तो रहता ही है। ऐसी दवा अधिक मात्रामें ली जाय तो भी हानि पहुंचती है, अच्छी तरह तैयार न की गई हो तो भी उससे हानि होती है। इसी प्रकार विवाह भी व्यभिचारको रोकनेकी दवा है। यह दवा अच्छी है परन्तु उग्र है। इसलिए विवेकसे उसका उपयोग न किया जाय तो वह बड़ी खतरनाक सिद्ध हो सकती है।

इसके पश्चात् लेखक विवाहकी अखण्डिताके प्रश्न पर आते हैं। वे एकपत्नी-व्रत और एकपति-व्रतका आग्रह रखनेवाले हैं। वे कहते हैं मनुष्यकी इच्छा हो तो वह विवाह करे, न हो तो न करे, यह बात ठीक नहीं है, और विवाहित स्त्री-पुरुष जब चाहें तब सम्बन्ध तोड़कर तलाक दे सकते हैं यह तो उससे भी ज्यादा बुरी बात है। उनकी स्वतंत्रता

विषय-सम्बन्धकी अनेक रीतियोंकी योग्यता और अयोग्यताका निर्णय इस प्रकार हो सकता है हमारे समाज-जीवनको अधिक सुदृढ़ और बलवान बनानेके लिए कौनसी रीति सुयोग्य है? कौनसी रीतिको अपनानेसे मनुष्यके जीवनके अलग अलग समयमें जिम्मेदारीका अतिशय भान बढ़ेगा आत्मत्याग बढ़ेगा तथा स्वार्थवृत्ति और स्वेच्छाचार घटेगा? इस दृष्टिसे हम इस प्रश्नका विचार करेंगे तो एकपत्नीत्व और एकपतित्वका नियम ही सबसे अधिक हितकारी मालूम होगा — तब यह समझमें आयेगा कि यही नियम उसके भीतर रही संयमकी शिक्षाके कारण सम्यतामें आगे बढ़े हुए समाजोंकी स्थायी विरासत है और इस नियमकी प्रगतिके साथ विवाह-सम्बन्धमें शिथिलता आनेके बजाय दृढ़ता आयेगी। समाज-जीवनकी अधिक तैयारीका केन्द्र — अर्थात् जिम्मेदारी सहानुभूति संयम परस्पर सहिष्णुता तथा परस्पर शिक्षणकी तालीमका केन्द्र — परिवार है और परिवार इसका केन्द्र है क्योंकि परिवार सदा टिकता है और अखंड है और परिवार सदा टिकता है इसीलिए पारिवारिक जीवन अधिक गाढ़ अधिक स्थिर और मनुष्य मनुष्यके बीचके सम्बन्धोंके लिए अधिक मान्य बनता है। ऐसा कहनेमें अतिशयोक्ति नहीं होगी कि एक और अखंड विवाह मानव समाज-जीवनकी नाड़ी है अथवा उसका हृदय है।

केवल ऑगस्ट कॉन्टका मत देते हैं हमारे मत इतने अस्थिर हैं कि समाजको (विवाहका) यह प्रश्न हाथमें लेकर हमें इहलोक और परलोक दोनोंसे भ्रष्ट होनेसे बचाना चाहिये। विवाहका हेतु विषयकी तृप्ति कभी हो ही नहीं सकता।

डॉ. टुल्म कहते हैं प्रेमकी भावना इतनी क्रूर और अत्याचारी है कि उसके अधीन हुए बिना चल ही नहीं सकता — इस भ्रमके कारण संपूर्ण विवाहित जीवन दुःखमय बन जाता है। मनुष्यके विशिष्ट स्वभाव तथा उसके विकासका झुकाव तो इच्छाओं और विकारोंसे स्वतंत्र बननेकी ओर होना चाहिये। बालक स्थूल जरूरतों पर संयम रखना सीखे युवक-युवती अपने विकारों पर अंकुश रखना सीखें — यही संस्कारी और सम्यतान्वित समाजका लक्षण है। यह केवल मौखिक शिक्षाकी बात नहीं है। यह व्यवहार-सिद्ध वस्तु है। हमारा स्वभाव आत्माके वश रहनेका

ही हो सकता है इन्द्रियों अथवा विकारोंके वश होनेका नहीं। हम जिसे स्वाभाविक मान लेते हैं वह तो केवल हमारी निर्बलता है। जो मनुष्य सचमुच बलवान है वह तो अवसर आने पर अपनी शक्तियोंका सदुपयोग ही करेगा।

८ उपसंहार

अब यह लेखमाला समाप्त करनेका समय आ गया है। एक जमानेमें माल्थसने यह घोषणा करके अपने समयके लोगोंको चौंका दिया था कि दुनियाकी आबादी बढ़ गई है और यदि मानव-जातिका नाश न होने देना हो तो सन्तति-नियमन होना चाहिये। मॉं ब्यूरो माल्थसके इस सिद्धान्तकी समीक्षा करते हैं परन्तु हमारा उससे कोई सम्बन्ध नहीं है। हमारे लिए इतना जानना आवश्यक है कि माल्थसका आग्रह आत्म-संयम द्वारा सन्तति नियमन करनेका था। लेकिन उसके आधुनिक शिष्य संयमका आग्रह नहीं करते परन्तु विषय भोगके परिणामको रोकनेके लिए रासायनिक और यांत्रिक साधनोंके उपयोगका आग्रह करते हैं। मॉं ब्यूरो आत्म-संयम द्वारा सन्तति-नियमन करनेके बड़े हिमायती हैं हम देख चुके हैं कि वे रासायनिक और यांत्रिक साधनोंके उपयोगका कड़ा विरोध करके उनके त्यागका ही आग्रह करते हैं। इसके बाद उन्होंने मजदूर-वर्गकी स्थितिका विचार किया है उनमें जन्मकी संख्या कितनी है इसकी जांच की है और अन्तमें व्यक्तिकी स्वतंत्रताके नाम पर तथा मानव-दयाके नाम पर समाजमें जो भयंकर भ्रष्टाचार चल रहा है उसे रोकनेके उपायोंकी चर्चा करके अपनी पुस्तक समाप्त की है। वे सुझाते हैं कि लोकमतको रास्ता दिखाने तथा नियमनमें रखनेके लिए व्यवस्थित प्रयत्न किया जाना चाहिये। वे यह भी कहते हैं कि सरकार बीचमें पड़कर इस सम्बन्धमें कानून बनाये तो ठीक हो। परन्तु अन्तमें वे यह कहते हैं कि मनुष्यमें धर्मका भान जाग्रत हो तो ही हम सम्प्रत्यय स्थायी परिणाम आ सकता है। नैतिक अध:पतन सामान्य उपायोंसे रोकने पर भी रुक नहीं सकता अनीतिको नीति माना जाय नीतिको निर्बलता अथवा अन्धविश्वास भ्रम और अनीतिका नाम देकर उसकी निन्दा की जाय तब तो यह अध:पतन कभी रुक ही

जा सकता। इसके सिवा गर्भाधानको रोकनेके कृत्रिम साधनोंके प्रचारक समर्थक संयम और ब्रह्मचर्यको अनावश्यक और हानिकारक भी मानते हैं। इसी स्थितिमें कठिन धर्मको ही अन्यथा केवल निरंकुश भोगाचार पर परिणामकारी नियन्त्रण रखा जा सकता है। धर्मका सबसे बड़ा काम — व्यक्ति — व्यक्ति और समाज दोनोंके जीवनमें [illegible] बड़ा परिवर्तन कर देना है। इस मान्यताका अर्थ है लेकिन उपर्युक्त परिवर्तन पुनर्जन्म और मोक्ष जैसी वस्तुओंमें सजग श्रद्धा आज जिस भारतकी निश्चय प्रयास कर रहा है उस जागृत युग चेतनाके लिए ऐसी ही किसी परिवर्तनकारी शक्तिकी आवश्यकता है।

अब इस देशमें भी पूरी तरह उसकी पुनरावृत्ति किया में। फ्रांस और हिन्दुस्तानकी स्थिति एकसी नहीं है। हमारे देशका प्रश्न बिलकुल अलग है। हमारे यहां संतति-नियमनके इन साधनोंका उपयोग सार्वत्रिक नहीं है। शिक्षित वर्गोंमें भी उनका प्रचार मुश्किलसे ही हो पाया है। इसलिए भारतमें ऐसी एक भी परिस्थिति नहीं है जिसके आधार पर यहां इनके उपयोगका बचाव किया जा सके। क्या हमारे देशमें मध्यम-वर्गके लोग अतिशय बालकोंसे भर उठे हैं? कोई इक्का-दुक्का उदाहरण लेकर आप यह सिद्ध कर ही नहीं सकते कि मध्यम-वर्गमें बालकोंकी उत्पत्ति अतिशय बढ़ गई है। भारतमें तो विधवाओं और बालवधुओंके लिए संतति-नियमनके इन कृत्रिम साधनोंके उपयोगकी हिमायत की जाती है। इसका अर्थ यह हुआ कि इन साधनोंके हिमायती विधवाओंके सम्बन्धमें नाजायज प्रजोत्पत्तिको रोकना चाहते हैं, गुप्त व्यभिचारको नहीं रोकना चाहते। और बालवधुओंके बारेमें उन्हें यह डर है कि वे कोमल वयमें सगर्भा हो जायगी, परन्तु उन पर पतियोंका बलात्कार होनेका उन्हें कोई डर नहीं है। इसके बाद कमजोर और निर्बल नौजवानोंका नम्बर आता है जिन्हें अपनी पत्नियों या दूसरोंकी पत्नियोंके साथ स्वेच्छाचार तो जारी रखना है परन्तु जिसे वे पाप समझते हैं उस पापके परिणामोंसे बचना है। मैं साहसके साथ यह कहूंगा कि सम्भोगकी इच्छा रखते हुए भी सन्तान उत्पन्न करनेके भारसे बच निकलना चाहनेवाले संपूर्ण हृष्ट-पुष्ट स्त्री-पुरुष भारतकी जनसंख्याके इस महासागरमें बूंदोंके जितने ही हैं। इन मुट्ठीभर लोगोंको

अथवा उनाहरण लेकर एक ऐसी दूषित चीजका बचाव और हिमायत नहीं करनी चाहिये जिसका असर भारतमें प्रचार हो जाय तो देशके नौजवानोंका सर्वनाश हुए बिना न रहेगा।

अत्यन्त कृत्रिम शिक्षाकी वजहसे देशके नौजवानोंकी शारीरिक और मानसिक शक्तिका नाश हो गया है। हममें से बहुतेरे लोग बाल-विवाहकी उपज हैं। स्वास्थ्य और स्वच्छताके नियमोंकी अवगणना करनेके कारण हमारे शरीर क्षीण और कमजोर हो गये हैं। हमारा दूषित और अपूर्ण आहार और उसमें मिलाये जानेवाले शक्तिनाशक मसालोंसे हमारी पाचन शक्ति बिलकुल नष्ट हो गई है। आज हमें सन्तति-नियमनके कृत्रिम साधनोंके उपयोगकी और पाशविक वृत्तिकी निरंकुश तृप्तिकी तालीमकी जरूरत नहीं है बल्कि पाशविक वृत्तिको मर्यादित करने तथा अमुक मनुष्योंको सम्पूर्ण ब्रह्मचर्य पालनेकी तालीम देनेकी जरूरत है। उपदेश और प्रत्यक्ष उदाहरण द्वारा आज हमें यह सिखानेकी जरूरत है कि यदि हमें अपने तन और मनको निर्बल न रखना हो तो सम्पूर्ण ब्रह्मचर्यका पालन सर्वथा सम्भव है और अत्यन्त आवश्यक है। आज पुकार-पुकार कर प्रजासे यह कहनेकी जरूरत है कि यदि हमें बौनोंकी प्रजा न रहना हो तो प्रतिदिन वीर्यका नाश करनेके बदले उसका संग्रह करना चाहिये और उसमें वृद्धि करनी चाहिये। हमारी जवान विधवा बहनोंसे हमें कहना चाहिये कि तुम गुप्त पापाचार करनेके बदले हिम्मतसे आगे आकर फिरसे विवाह करनेकी माग करो। नौजवान विधुरोंको पुनर्लग्न करनेका जितना अधिकार है उतना ही तुम्हें भी अधिकार है। लोक मतको हमें इस हद तक शिक्षित बना देना चाहिये कि बाल-विवाह सर्वथा असम्भव हो जायें। आज सर्वत्र जो अव्यवस्थितता कठिन और सतत काम करनेकी अरुचि कड़ी मेहनत करनेकी शारीरिक अशक्ति बड़े उत्साहसे आरम्भ किये हुए साहसपूर्ण कार्योंका बीचमें ही अन्त और मौलिकताका सर्वथा अभाव दिखाई देता है वह सब अतिशय विषय भोगका ही परिणाम है। मैं आशा करता हूं कि नौजवान स्त्री-पुरुष यह मानकर अपने मनको नहीं फुसलायेंगे कि सन्तानोत्पत्तिके अभावमें केवल विषय-भोगसे कोई हानि नहीं होती कोई कमजोरी नहीं आती। सच

बात तो यह है कि सन्तति-नियमनके कृत्रिम साधनोंके साथ होनेवाली विषय-भोगकी क्रिया सन्तानोत्पत्तिकी जिम्मेदारीके भानके साथ होनेवाली ऐसी क्रियासे कहीं अधिक हमारी शक्तिका ह्रास करती है।

मन एव मनुष्याणां कारणं बन्धमोक्षयोः।

अगर हम अपने मनको इस तरह समझाने लगेंगे कि विषय-तृप्ति आवश्यक वस्तु है, उससे कोई हानि नहीं होती और वह पाप नहीं है, तो हम जरूर विषयेन्द्रियकी कामनाको ढीली कर देंगे और फिर उस पर नियन्त्रण रखनेमें असमर्थ हो रहेंगे। इसके विपरीत यदि हम अपने मनको इस तरह मनाना सीखें कि ऐसी विषय-तृप्ति हानिकारक है, पापमय है, अनावश्यक है और अंकुशमें रखी जा सकती है, तो हम समझ जायेंगे कि आत्म-संयम बिलकुल साध्य वस्तु है। नवीन सत्यके और तथाकथित मानव-स्वातन्त्र्यके महान उन्मत्त परिणाम हमारे देशमें स्वच्छन्दताकी जो मदिरा भेज रहा है, उससे हमें सौ कोस दूर रहना चाहिये। इसके विपरीत यदि हम अपने पूर्वजोंकी प्राचीन ज्ञानकी पूंजी बिलकुल खो बैठे हों, तो पश्चिमके ज्ञानी मनुष्योंकी अनुभव-वाणी द्वारा हमें कभी-कभी जो लाभदायक और सुखप्रद सलाह मिलती है उसे यदि हम सुनें तो हमारा भला होगा।

चार्ल्स एस्यूअने ‘ओपन कोर्ट’ नामक मासिकमें छपा हुआ मि. हेरका ‘प्रजनन और उत्पादन’ शीर्षक लेख जो अनेक महत्त्वपूर्ण बातोंसे भरा हुआ है, मेरे पास भेजा है। वह अत्यन्त तर्कयुक्त शास्त्रीय निबन्ध है। उसमें लेखक कहते हैं कि सारे शरीर दो प्रकारकी क्रिया करते हैं — शरीरको शक्तिशाली बनानेके लिए आन्तरिक शक्तिका उत्पादन तथा वंशवृद्धिके लिए बाहरी प्रजनन। आन्तरिक शक्तिका उत्पादन व्यक्तिके लिए अत्यन्त आवश्यक है और एक प्रधान कार्य है, बाहरी प्रजनन सूक्ष्म पिंडोंकी वृद्धिके कारण होता है और वह गौण कार्य है। अतः जीवनका नियम यह है कि पहले आन्तरिक शक्ति उत्पन्न करनेके लिए सूक्ष्म पिंडोंको पुष्ट किया जाय और बादमें प्रजोत्पत्तिके लिए। शरीर कमजोर हो तब तो आन्तरिक शक्ति उत्पन्न करके उसे पुष्ट करना ही प्रथम कर्तव्य हो जाता है और प्रजननको बिलकुल बन्द रखना पड़ता है।

इस सूक्ष्म कथन पर यह समझमें आ जाता है कि हम ब्रह्मचर्य और तपस्याके आदर्श तक कैसे पहुंचे। आन्तरिक शक्तिका उत्पादन तो कभी बन्द हो ही नहीं सकता और बन्द रहे तो मनुष्यकी मृत्यु हो जाय। इस तरह विचार करनेसे यह भी समझमें आ जाता है कि मृत्यु सामान्यतः कैसे होती है। प्रजोत्पत्तिकी क्रियाका जीवन-शास्त्रकी भाषामें वर्णन करके लेखक कहते हैं सभ्य लोगोंमें विषय-भोग प्रजोत्पत्तिके लिए जितना आवश्यक है उससे कहीं अधिक मात्रामें चलता है और आन्तरिक शक्तिके उत्पादनको हानि पहुंचा कर चलता है। इसका परिणाम रोग मृत्यु और दूसरी अनेक बुराइयोंमें आता है।

जो लोग हिन्दू दर्शनका क-ख-ग भी जानते हैं उन्हें मि. ब्यूरोके निबन्धका नीचेका पैरा समझनेमें कठिनाई नहीं होगी

प्रजननकी क्रिया यांत्रिक नहीं है यह यांत्रिक हो ही नहीं सकती। सूक्ष्म जीवसृष्टिमें पिण्ड-विभाजनसे जैसी उत्पत्ति होती है वैसी ही सजीव क्रिया यह है। अर्थात् उसमें बुद्धि और संकल्प निहित है। एक जीवमें से दूसरा जीव उत्पन्न हो और अलग हो यह क्रिया केवल यांत्रिक रीतिसे ही होती है ऐसा मानना कल्पनाके बाहर है। हां यह बात सच है कि यह मूल क्रिया इतने अज्ञात रूपमें होती है कि ऊपरसे तो ऐसा ही लगता है कि उसके पीछे मनुष्य अथवा पशुकी कोई संकल्प-शक्ति नहीं रहती। परन्तु थोड़ा विचार करनेसे मालूम होगा कि जिस प्रकार पूर्ण विकसित मानवकी संकल्प शक्तिसे ही उसकी बाह्य क्रियायें और सारे कार्य बुद्धिके मार्गदर्शनके अनुसार चलते हैं — बुद्धिका यह कार्य ही है — उसी प्रकार शरीर-रचनाकी भीतरी क्रियायें भी अमुक परिस्थितियोंकी सीमामें रहकर बुद्धिसे प्रेरित संकल्प शक्तिके द्वारा ही चलती हैं। मानसशास्त्री इसे अज्ञात शक्ति कहते हैं। परन्तु यह हमारे शरीरका एक अंग ही है। यद्यपि हमारे सामान्य दैनिक विचारोंके साथ उसका कोई सम्बन्ध नहीं है फिर भी यह अत्यन्त जागृत और अपना कार्य करनेमें अत्यन्त सावधान रहती है — यहां तक कि ज्ञान शक्तियां बहुत बार सुषुप्तिकी अवस्थामें पहुंच जाती हैं जब कि यह अज्ञात शक्ति एक क्षणके लिए भी अपना कार्य बन्द नहीं करती।

इस प्रकार क्रियाशक्तिको अर्थात् हमारी अधिक स्थायी शक्तिको निरंकुश विषय-सेवनसे कितना भयंकर नुकसान होता है, इसकी हम सहज ही कल्पना कर सकते हैं। प्रजोत्पत्तिका परिणाम मृत्युमें आता है। विषय भोगके मूलमें ही मरणोन्मुख गति रहती है — पुरुषके लिए भोगकी क्रियामें और स्त्रीके लिए सन्तानोत्पत्तिकी क्रियामें। इसलिए लेखक कहते हैं संयमी अथवा सम्पूर्ण ब्रह्मचर्य पालनेवाला मनुष्य वीर्यवान प्राणवान और नीरोग रहता है। सूक्ष्म पिण्डोंका प्रथम काम आन्तरिक शक्ति उत्पन्न करना है। यह कार्य बन्द कराकर उनका व्यय केवल प्रजोत्पत्ति अथवा विषय भोगमें किया जाय तो शरीरके अवयवोंमें शक्तिका आना बन्द हो जायगा और इसके फलस्वरूप अन्तमें धीरे-धीरे उसका नाश हो जायगा।

इन सब शारीरिक तथ्यों पर ही विषय-संयमके नियमोंकी नींव रखी गई है। लेखक रासायनिक अथवा यांत्रिक साधनों द्वारा सन्तति-नियमनके विरुद्ध हैं यह आसानीसे कल्पना की जा सकती है। वे कहते हैं इन साधनोंके फलस्वरूप आत्म-संयम पालनेके व्यावहारिक कारण भी खतम हो जाते हैं और विवाहित जीवनमें बुढ़ापेकी अशक्ति आने तक या विषय-भोगकी इच्छाका अंत होने तक विषय-सेवन जारी रहता है। विवाहित जीवनके बाहर भी उसका दुष्ट असर पहुंचे बिना नहीं रहता — इससे अनियमित तथा निरंकुश और निष्फल व्यभिचारका द्वार खुल जाता है — और ऐसा व्यभिचार आधुनिक उद्योगों समाजशास्त्र और राजनीतिकी दृष्टिसे अतिशय भयंकर है। इतना ही कहना काफी होगा कि सन्तति-नियमनके कृत्रिम साधन विवाहित दशामें अतिशय संभोगको और अविवाहित दशामें व्यभिचारको सरल बना देते हैं। और यदि मेरी शरीरशास्त्रकी ऊपरकी दलीलें सच हों तो इन साधनोंसे व्यक्ति और समाज दोनोंको अपार हानि पहुंचे बिना नहीं रहेगी।

मौं ब्यूरो जिस वाक्यसे अपनी पुस्तकका उपसंहार करते हैं उसे प्रत्येक भारतीय युवक और युवतीको अपने हृदयमें अंकित कर लेना चाहिये

भविष्य पवित्र और संयमी राष्ट्रोंके हाथमें ही रहता है।

नवजीवन ११–७–२६ से २९–८–२६

२

सतति नियमन

बड़ी झिझक और अनिच्छाके साथ मैं इस विषयमें कुछ लिखनेके लिए प्रवृत्त हुआ हूं। जबसे मैं दक्षिण अफ्रीकासे भारतवर्षमें लौटा हूं तभीसे पत्रलेखक कृत्रिम साधनोंके द्वारा सन्ततिकी संख्या मर्यादित करनेके प्रश्न पर मुझे लिखते रहे हैं। मैं खानगी तौर पर ही अब तक उनको जवाब देता रहा हूं। खुले रूपमें कभी मैंने इस विषयकी चर्चा नहीं की। आजसे कोई पैंतीस साल पहले जब मैं इंग्लैण्डमें पढ़ता था तब इस विषयकी ओर पहली बार मेरा ध्यान गया था। उस समय वहां एक संयमवादी और एक डॉक्टरके बीच बड़ा वाद-विवाद चल रहा था। संयमवादी कुदरती साधनोंके सिवा किन्हीं दूसरे साधनोंको माननेके लिए तैयार न था और डॉक्टर कृत्रिम साधनोंका समर्थक था। उसी समयसे मैं कुछ समय तक कृत्रिम साधनोंकी ओर झुक कर फिर उनका पक्का विरोधी हो गया। अब मैं देखता हूं कि कुछ हिन्दुस्तानी पत्रोंमें कृत्रिम साधनोंके उपयोगका वर्णन बड़े बेधड़क ढंगसे और खुले तौर पर किया गया है जिसे देखकर सुरुचिको बड़ा आघात पहुंचता है। और मैं देखता हूं कि एक लेखकने तो मेरा भी नाम बेधड़क सन्तति-नियमनके लिए कृत्रिम साधनोंका उपयोग करनेके समर्थकोंमें लिख मारा है। मुझे एक भी ऐसा मौका याद नहीं पड़ता जब मैंने कृत्रिम साधनोंके उपयोगके पक्षमें कोई बात कही या लिखी हो। मैं देखता हूं कि दो और प्रसिद्ध पुरुषोंके नाम इनके समर्थकोंमें दिये गये हैं। परन्तु उनसे पूछे बिना मुझे उनके नाम प्रकट करनेमें संकोच होता है।

सन्ततिके जन्मको मर्यादित करनेकी आवश्यकताके बारेमें तो दो मत हो ही नहीं सकते। परन्तु इसका एकमात्र उपाय है आत्म-संयम या ब्रह्मचर्य जो कि युगोंसे हमें प्राप्त है। यह रामबाण और सर्वोपरि उपाय है और जो उसका सेवन करते हैं उन्हें उससे लाभ ही लाभ होता है।

डॉक्टर लोगोंका मानव-जाति पर बड़ा उपकार होगा यदि वे सन्तति नियमनके लिए कृत्रिम साधनोंकी खोज करनेकी जगह आत्म-संयमके साधन निर्माण करें। स्त्री-पुरुषके मिलापका हेतु आनन्द भोग नहीं बल्कि सन्तानोत्पत्ति है। और जब सन्तानोत्पत्तिकी इच्छा नहीं हो तब संभोग करना बिलकुल अपराध है।

कृत्रिम साधनोंकी सलाह देना दुराचारको प्रोत्साहन देना है। उससे पुरुष और स्त्री उच्छृंखल हो जाते हैं। और इन कृत्रिम साधनोंको जो प्रतिष्ठा दी जा रही है, उससे तो उस संयमके ह्रासकी गति बढ़े बिना न रहेगी जो कि लोकमतके कारण मनुष्य पर रहता है। कृत्रिम साधनोंके अवलंबनका कुफल होगा नपुंसकता और क्षीणवीर्यता। यह दवा रोगसे भी ज्यादा बुरी साबित हुए बिना न रहेगी।

अपने कर्मोंके फलको भोगनेसे दूर भागना दोष है, अनीतिपूर्ण है। जो आदमी जरूरतसे ज्यादा खा लेता है, उसके लिए यह अच्छा है कि उसके पेटमें दर्द हो और उसे उपवास करना पड़े। जबानको अंकुशमें न रख कर अनाप-शनाप खा लेना और फिर पाचक दवाइयां लाकर उसके नतीजेसे बचना बुरा है। पशुकी तरह विषय भोगमें डूबे रहकर फिर अपने इस कृत्यके कुदरती फलसे बचना और भी बुरा है। प्रकृति बड़ी कठोर शासक है। वह अपने कानूनके भंगका पूरा बदला चुकाती है। केवल नैतिक संयमके द्वारा ही हमें नैतिक फल मिल सकता है। संयमके दूसरे सारे साधन अपने हेतुके ही विनाशक सिद्ध होंगे। कृत्रिम साधनोंके समर्थनके मूलमें यह युक्ति या धारणा रहती है कि भोग-विलास जीवनकी एक आवश्यक चीज है। यह बड़ेसे बड़ा भ्रम है। अतएव जो लोग सन्तति नियमनके लिए उत्सुक हैं उन्हें चाहिये कि वे प्राचीन लोगोंके बताये हुए उचित उपायोंकी ही खोज करें, और इस बातका पता लगानेकी कोशिश करें कि उन्हें पुनर्जीवन किस तरह दिया जाय।

उनके सामने बुनियादी कामका पहाड़ पड़ा हुआ है। बाल-विवाह जनसंख्याकी वृद्धिका एक बड़ा सबल कारण है। हमारी वर्तमान जीवन पद्धति भी अमर्यादित प्रजोत्पत्तिके दोषका बड़ा कारण है। यदि इन और ऐसे दूसरे कारणोंकी छानबीन करके उनको दूर करनेका उपाय

किया जाय तो नैतिक दृष्टिसे समाज बहुत ऊंचा उठ जायगा। यदि हमारे इन जल्दबाज और अति-उत्साही लोगोंने उनकी ओर ध्यान न दिया और यदि कृत्रिम साधनोंका ही दौरदौरा चारों ओर हो गया तो सिवा नैतिक अध-पतनके दूसरा कोई नतीजा न निकलेगा।

जो समाज पहले ही विविध कारणोंसे नि:सत्व हो गया है, वह इन कृत्रिम साधनोंके प्रयोगसे और भी अधिक नि:सत्व हो जायगा। इसलिए वे लोग जो कि बिना सोच-विचार कृत्रिम साधनोंके उपयोगका प्रचार करते हैं नये सिरेसे इस विषयका अध्ययन-मनन करें, अपने हानिकर कार्योंसे बाज आवें और क्या विवाहित और क्या अविवाहित दोनोंमें ब्रह्मचर्यकी निष्ठा जाग्रत करें। सन्तति-नियमनका यही उच्च और सच्चा मार्ग है।

हिन्दी नवजीवन १२-३-२५

३

संयम या स्वच्छन्दता?

सन्तति-नियमनके बारेमें लिखे मेरे लेखको पढ़कर कृत्रिम साधनोंके हिमायती लोगोंने मेरे साथ बड़े उत्साहसे पत्र-व्यवहार शुरू कर दिया है। यही मेरी आशा भी थी। नमूनेके लिए यहां मैं ऐसे तीन पत्र देता हूं। चौथे पत्रमें मुख्यत: धार्मिक चर्चा है, इसलिए उसे मैं छोड़ देता हूं। उन तीन पत्रोंमें से एक पत्र यह है

> सन्तति-नियमन सम्बन्धी आपके लेखने मुझे फिरसे विचारमें डाल दिया है। मैं चाहता हूं कि इस विषय पर आप अधिक प्रकाश डालें। मैं मानता हूं कि ब्रह्मचर्य ही इस नियमनका सबसे उत्तम उपाय है। परन्तु यहां प्रश्न क्या आत्म-संयमकी अपेक्षा सन्तानकी संख्याको मर्यादित करनेका ही अधिक नहीं है? और यदि ऐसा ही हो तो क्या आत्म-संयम सन्तान-मर्यादाका सुगम मार्ग है? प्रत्येक युगमें कुछ महान व्यक्ति जन्म लेते ही हैं, जो

आत्म-संयमका उत्तम उदाहरण लोगोंके सामने रख जाते हैं। परन्तु वे तो सन्यासी ठहरे। वे सन्तान-मर्यादा अथवा सन्तति-नियमनके प्रश्नको शायद समझते भी न हों। उनका ब्रह्मचर्य केवल ब्रह्मचर्यके खातिर ही होता है। उससे असंख्य लोगोंका अत्यन्त महत्व रखनेवाला सामाजिक आर्थिक तथा राजनीतिक प्रश्न कैसे हल हो सकता है? हरएक गृहस्थको यह प्रश्न अपने प्रयत्नसे हल करना होगा। आज यह प्रश्न सबके सामने मुंह बाये खड़ा है कि हम कितने बालकोंकी शिक्षाकी तथा उनकी अन्य शारीरिक और नैतिक देखभालकी जिम्मेदारी उठानेकी शक्ति रखते हैं? आप तो मनुष्य-स्वभावसे परिचित हैं। सन्तानकी आवश्यकता न रहनेके बाद अधिकतर स्त्री-पुरुष क्या सफलतासे अपनी विषय वासनाको दबा सकेंगे? विषय-सेवनको आप चाहे जितना नियमित करें, फिर भी जनसंख्याका प्रश्न तो हल हो ही नहीं सकता।

"मैं स्वीकार करता हूं कि स्त्री-पुरुषके संयोगका हेतु सुख नहीं परन्तु प्रजोत्पत्ति है। परन्तु आपको यह स्वीकार करना पड़ेगा कि सुखभोग ही उसका प्रधान प्रेरक कारण है। ऐसे लोग कितने होंगे जिनका प्रधान हेतु सुखोपभोग हो और प्रजोत्पत्ति उसका परिणाम मात्र हो? तथा ऐसे लोग कितने होंगे जिनका प्रधान हेतु प्रजोत्पत्ति हो और जो उसके साथ सुखका भी अनुभव करते हों?

आप कहते हैं जब सन्तानोत्पत्तिकी इच्छा नहीं हो तब समागम करना बिलकुल अपराध है। आपके जैसे सन्यासीको ऐसा कहना शोभा देता। परन्तु आपने कहा है कि जो मनुष्य अपनी जरूरतसे अधिक परिग्रह रखता है वह चोर है। फिर भी चोर को आप बरदाश्त कर लेते हैं। तो प्रजोत्पत्तिकी इच्छा मिट जानेके बाद भी काम-वासनाको तृप्त करनेवाले अपराधी मनुष्योंको आप क्यों न बरदाश्त करें?

आप कहते हैं कि कृत्रिम साधनोंसे स्त्री और पुरुष उच्छृंखल और अंधे बन जाते हैं। परन्तु क्या सामाजिक मान्यताओंका नियमन —लोकमतका दबाव विषय भोगके अतिरेककी कमी पटा करा

है? समाजकी इन मान्यताओंके साथ दूसरी भयंकर मान्यताओंको भी हम न भूलें। क्या ऐसे वहम हमारे समाजमें नहीं हैं कि परिवार जितना बड़ा हो उतना ही मनुष्य भाग्यशाली और प्रतापी होता है? इनके सिवा कृत्रिम साधनोंके अवलम्बनका कुफल होगा नपुंसकता और क्षीणवीर्यता। इस कथनके लिए प्रबल प्रमाण क्या है? मैं मानता हूं कि आज भी मनुष्यकी बुद्धि इस सम्बन्धमें कोई निर्दोष उपाय खोज सकती है।

"आप कहते हैं कि अपने हृदयके कुदरती परिणामोंसे बचनेकी इच्छामें अनीति है। लेकिन क्या आप यह जानते हैं कि इन कृत्रिम साधनोंका बिलकुल ज्ञान न रखनेवाले कितने ही स्त्री-पुरुष अपने कृत्यके परिणामसे बचनेके लिए नीम हकीमोंका या अन्य उपायोंका आसरा लेते हैं? कुदरत अपने कानूनके भंगका पूरा बदला चुकाती है ऐसा आप कहते हैं। परन्तु कृत्रिम साधनोंके उपयोगको कुदरतके कानूनका भंग हम क्यों मानें? कृत्रिम दांतों आंखों या शरीरके दूसरे कृत्रिम अंगोंको कोई अस्वाभाविक नहीं कहता है?

बम्बईमें अच्छे लोगोंने इन साधनोंकी हिमायत की है। ऐसा उन्होंने विषय-सेवनका सुख भोगनेके लिए नहीं परन्तु लोगोंको आत्म-संयमका पाठ सिखानेके लिए किया है। साथ ही यह भी याद रखना चाहिये कि आज तक हम स्त्रीके हितकी अतिशय अवगणना ही करते रहे हैं।

मैं यह नहीं चाहता कि आप सन्तति-नियमनका प्रचार करने लगें। ऐसी आशा भी मैं नहीं रखता। आप तो सत्य और ब्रह्मचर्यके मार्ग पर चलनेका प्रयत्न करनेवाले मनुष्योंके मार्गदर्शकके रूपमें ही शोभते हैं। आप इसमें शामिल न हो सकें न हों फिर भी आपको आवश्यकताओंका विचार करके आपको इस प्रचार-कार्यको उचित मौका जरूर देते रहना चाहिये।

सबसे पहले मैं एक बात स्पष्ट कर दूं कि मैंने यह लेख सन्यासियोंके लिए अथवा संन्यासीके पद पर बैठकर नहीं लिखा है। सन्यासी शब्दके सामान्य अर्थके अनुसार संन्यासी-पद पर मेरा अधिकार नहीं है। मामूली

बाधाओंको छोड़कर पच्चीस वर्षके अपने व्यक्तिगत अनुभवके आधार पर तथा किसी सिद्धान्त पर पहुंचनेके लिए जितना समय चाहिये उतने समय तक मेरे साथ इस प्रयोगमें शरीक होनेवाले साथियोंके अनुभवके आधार पर मैंने ये बातें कही हैं। इस प्रयोगमें युवक और वृद्ध स्त्री और पुरुष सभी शरीक हुए थे। यह दावा किया जा सकता है कि इस प्रयोगमें कुछ अंश तक वैज्ञानिक निश्चितता थी। इसमें कोई संदेह नहीं कि यह प्रयोग केवल नीति–सदाचारकी दृष्टिसे ही किया गया था। परन्तु उसकी उत्पत्ति सन्तति-नियमनकी इच्छासे ही हुई थी। स्वयं मेरी स्थिति तो मुख्यतः यही थी। इस प्रयोगके कुदरती तौर पर ही ऐसे बड़े नैतिक परिणाम आये जिनकी पहले-पहल कल्पना नहीं की गई थी। मैं यह कहनेका साहस करता हूं कि उचित उपचारोंकी सहायतासे बड़ी कठिनाईके बिना आत्म-संयम रखा जा सकता है। मैं अकेला ही यह बात नहीं कहता परन्तु जर्मन और अन्य कुदरती उपचार करनेवाले निष्णात भी ऐसा ही कहते हैं। ये लोग ऐसा मानते हैं कि पानी या मिट्टीके उपचारसे शरीरका संशोधन होता है तथा अन्न और मुख्यतः फलके आहारसे स्नायु-मंडल शांत होता है विषय-वासना सहज ही वशमें होती है तथा शरीरकी गठन मजबूत बनती है। राजयोगी कहते हैं कि नियमित प्राणायाम करनेसे भी यही परिणाम आता है। पश्चिमी और हमारे प्राचीन उपचार संन्यासियोंके लिए नहीं बल्कि वस्तुतः गृहस्थोंके लिए ही हैं। कोई अगर यह कहे कि देशकी आबादीमें अनावश्यक वृद्धि न होने देनेके लिए सन्तति-नियमन आवश्यक है तो मैं उसका विरोध करूंगा। यह बात कभी किसीने सिद्ध नहीं की है। मैं मानता हूं कि यदि जमीनका उचित बंटवारा हो देशकी खेतीमें सुधार हो और उससे सम्बन्धित दूसरे उद्योग चलें तो आज देशमें जितनी जनसंख्या है उससे दुगुनी जनसंख्याका निर्वाह हो सकता है। मैं केवल देशकी वर्तमान राजनीतिक स्थितिके कारणसे ही सन्तति-नियमनके हिमायतियोंमें शरीक हुआ हूं।

मेरा यह सुझाव है कि सन्तानकी जरूरत न हो तो विषय-सेवन बन्द होना चाहिये। आत्म-संयमके उपायोंको लोकप्रिय और कार्यसाधक बनाया जा सकता है। सुशिक्षित वर्गने कभी इन उपायोंको अपनाया

नहीं। संयुक्त परिवारकी प्रथाके कारण इस वर्ग पर अभी तक कोई दबाव नहीं आया है। और जिन लोगों पर दबाव आया है उन्होंने इस प्रश्नमें समायी हुई नीति — नैतिकताका कभी विचार ही नहीं किया। ब्रह्मचर्यके बारेमें कभी कभी कहीं भाषण हुए होंगे उसके सिवा सन्तति-नियमनके लिए आत्म-संयमके पक्षमें कभी नियमित रूपसे आन्दोलन नहीं हुआ। इसके विपरीत अभी तक समाजमें यह वहम फैला हुआ है कि बड़ा परिवार होना शुभ लक्षण है और इसलिए वांछनीय है। किसी एक परिस्थितिमें जैसे प्रजोत्पत्ति धर्म होती है उसी तरह दूसरी परिस्थितियोंमें सन्तति नियमन धर्म होता है। सामान्यतः ऐसा उपदेश धर्मगुरु करते नहीं। मुझे भय है कि सन्तति-नियमनके हिमायती यह मान कर चलते हैं कि विषय-भोग जीवनके लिए आवश्यक है। स्त्री-जातिके बारेमें जो चिन्ता बताई जाती है वह अतिशय करुणाजनक है। कृत्रिम उपायसे सन्तति-नियमनका समर्थन करते हुए स्त्री-जातिका पक्ष लेनेका ढोंग करनेमें मेरे मनमें स्त्री-जातिका अपमान है। बात यह है कि पुरुषने अपनी विषय-लम्पटताके कारण स्त्रीकी अवमानना की है। और कृत्रिम साधनोंके हिमायती चाहे जितना शुभ हेतु रखते हों फिर भी इन साधनोंकी वजहसे स्त्रियोंकी अधिक दुर्दशा होगी। मैं जानता हूं कि इस जमानेकी कुछ ऐसी स्त्रियां हैं जो कृत्रिम साधनोंका समर्थन करती हैं। लेकिन इस सम्बन्धमें मुझे कोई शंका नहीं है कि अधिकांश स्त्रियां तो इन साधनोंको अपने गौरवको लांछित करनेवाले ही समझेंगी। पुरुष यदि स्त्रीका हित चाहनेवाला हो तो वह आत्म संयमका पालन करेगा। स्त्री स्वयं निर्दोष है। वास्तवमें पुरुष ही आक्रामक है वही सच्चा अपराधी और स्त्रीको ललचानेवाला है।

मैं कृत्रिम उपायोंके समर्थकोंसे निवेदन करता हूं कि वे इनके परिणामोंका विचार करें। इन उपायोंका व्यापक प्रचार हो तो विवाहका बन्धन टूट जायगा और समाजमें स्वच्छन्दता तथा स्वेच्छाचारका बोलबाला हो जायगा। अगर मनुष्य विषय भोगका सेवन केवल विषय भोगके खातिर ही करे, तो घरसे लम्बे समय तक दूर रहने पर, लम्बे युद्धमें लगा होने पर, विधुर हो जाने पर, पत्नीके बीमार होने तथा कृत्रिम उपायोंके उपयोगसे भी उसके स्वास्थ्यको हानि पहुंचनेका भय होने पर वह क्या करेगा?

अब दूसरा पत्र लीजिये

"सन्तति-नियमनके कृत्रिम उपाय हानिकारक हैं, ऐसा कहकर जो चीज आपको अच्छी लगती है उसे आप स्वीकार करके चलते हैं। १९२२ में लंदनमें जो सन्तति-नियमन परिषद हुई थी उसमें डॉक्टरोंकी एक समितिने यह घोषित किया था कि कृत्रिम साधन हानिकारक हैं ऐसा माननेके लिए कोई प्रमाण उपलब्ध नहीं है। इतना ही नहीं मानसशास्त्रकी दृष्टिसे तथा कानून और नीतिकी दृष्टिसे भी कृत्रिम साधनोंका उपयोग गर्भपातसे बिलकुल भिन्न माना जाना चाहिये।

आप कहते हैं कि कृत्रिम साधनोंके उपयोगसे निर्वीर्यता आदि दोष उत्पन्न होते हैं। इसका अर्थ क्या यह नहीं होता कि हमें इन साधनोंको अधिक वैज्ञानिक बनानेका प्रयत्न करना चाहिये? आप कहते हैं कि स्त्री-पुरुष-संयोगका हेतु मुख्य नहीं परन्तु प्रजोत्पत्ति है। ऐसा किसने निश्चित किया है? क्या ईश्वरने? तब फिर उसने स्त्री और पुरुषमें काम-वासना क्यों उत्पन्न की? आप यदि कृत्रिम साधनोंको हानिकारक सिद्ध न कर सकें तो फिर आपकी दूसरी दलीलोंमें कोई दम नहीं रह जाता। मैंने आज तक जो कुछ देखा है उसके आधार पर तथा मेरे अपने प्रयोगके आधार पर मैं हिम्मतके साथ यह कह सकता हूं कि उचित रीतियां अपनाई जायं तो उनसे कोई हानि नहीं होती। किसी भी कृत्यकी नीति या अनीतिका निर्णय उसके परिणामसे ही होना चाहिये, बुद्धिके द्वारा पहलेसे ही अनुमान लगाकर नहीं।

ये पत्रलेखक अपनी बात पर अडिग हैं। मैंने यह बताया है कि विवाहको यदि हम पवित्र बन्धन मानें और उसे पवित्र बनाये रखना चाहें तो विषय-सेवनको नहीं परन्तु आत्म-संयमको ही सिद्धान्त मानना चाहिये। मसा जो बात अच्छी लगती है उसे मैं स्वीकार करके नहीं चलता। क्योंकि मैं कहता हूं कि कृत्रिम साधन चाहे जितने अच्छे हों तो भी वे हानिकारक हैं। वे अपने-आपमें शायद हानिकारक न हों, परन्तु बार बार उनका उपयोग करनेसे काम-वासना प्रबल होती है, इसलिए

वे हानिकारक हो जाते हैं। जो लोग यह मानते हैं कि विषय-सेवन उचित ही नहीं है बल्कि वांछनीय भी है, वे कभी भी उससे तृप्त नहीं होंगे और अन्तमें अपना सारा मनोबल खो बैठेंगे। मैं मानता हूं कि विषय-सेवनसे उस आवश्यक और अमूल्य शक्तिका नाश होता है, जो मनुष्यके शरीर, मन और आत्माको बल प्रदान करती है। आत्माका अभी मैंने उल्लेख किया है, फिर भी इस चर्चामें उसे मैंने जान-बूझकर दूर रखा है, क्योंकि जिन पत्रलेखकोंको आत्माकी कोई कल्पना ही नहीं है, उनकी दलीलोंका केवल उत्तर देनेके लिए ही यह चर्चा है। अतिशय विवाहोंवाले तथा क्षीणप्राण भारतको कृत्रिम साधनोंके साथ विषय-सेवन सिखानेकी जरूरत नहीं है, परन्तु संपूर्ण संयम सिखानेकी जरूरत है। तभी देशकी नष्ट हुई शक्ति वापिस आयेगी। सन्तति-नियमनके हिमायतियोंके अखबारोंमें अनीतिको बढ़ानेवाली दवाओंके जो विज्ञापन निकलते हैं उनसे सावधान हो जाना चाहिये। इस विषयकी चर्चा करनेमें मुझे संकोच होता है। इसमें झूठी शरमकी बात नहीं है। लेकिन मैं निश्चित रूपसे जानता हूं कि हमारे देशके क्षीणप्राण नौजवान विषय-सेवनके पक्षमें दी जानेवाली अस्पष्ट दलीलोंके सहज ही शिकार हो सकते हैं, इसीलिए मुझे संकोच होता है।

इन पत्रलेखकने डॉक्टरोंका जो प्रमाणपत्र प्रस्तुत किया है उसके विरुद्ध मुझे कुछ कहनेको नहीं रह जाता। वह यहां बिलकुल अप्रस्तुत है। उचित कृत्रिम साधन शरीरको हानि पहुंचाते हैं या वन्ध्यत्व उत्पन्न करते हैं, इस विषयमें मैं हां या ना कुछ नहीं कहता। अपनी स्त्रियोंके साथ विषय-सेवन करके बरबाद हुए सैकड़ों नौजवानोंको मैं जानता हूं और होशियारसे होशियार डॉक्टरोंकी समिति भी इस बातसे इनकार नहीं कर सकती।

इन पत्रलेखकने नकली दांतोंका उदाहरण दिया है, लेकिन वह प्रस्तुत नहीं है। नकली दांत कृत्रिम और अस्वाभाविक हैं। परन्तु वे एक आवश्यक कार्य पूरा करते हैं। ये कृत्रिम साधन तो उन दवाओंके जैसे हैं जिसे भूख मिटानेके लिए नहीं किन्तु स्वादके लिए भोजन करनेकी इच्छा रखनेवाला मनुष्य खाता है। विलासके लिए विषय-सेवन करना पाप है, उसी प्रकार स्वादके लिए खाना भी पाप है।

तीसरे पत्रमें दी गई बातें जानने जैसी हैं

आप जानते ही होंगे कि अमरीकी सरकार इन कृत्रिम साधनोंके प्रचारका विरोध करती है परन्तु आप यह भी जानते होंगे कि जापानी सरकारने इनके प्रचारकी पूरी स्वतंत्रता दी है। दोनोंके कारण स्पष्ट और जाने हुए हैं। अमेरिकाके इस रुखमें बहुत तारीफ करने जैसी कोई बात नहीं है। लेकिन जापानके रुखमें क्या कुछ निन्दा करने जैसा है? जापानकी सरकारने स्थितिकी वस्तुस्थितिको समझ लिया है इतना श्रेय क्या उसे नहीं दिया जाना चाहिये? उसे प्रजोत्पत्ति कम करनी ही पड़ेगी। साथ ही मनुष्य-स्वभावका भी खयाल रखना होगा। आप तो यही कहेंगे कि उस यूरोपकी सन्तति-नियमनकी पद्धतिका सहारा नहीं लेना चाहिये। आपका मार्ग आदर्श हो सकता है, परन्तु क्या वह व्यावहारिक भी है? इस विषयमें तो सामूहिक आन्दोलन होना चाहिये। हिन्दुस्तानकी दिनों दिन बढ़नेवाली जनसंख्याको घटानेके लिए सामूहिक आन्दोलन चलानेके सिवा अन्य कोई मार्ग ही नहीं है।

मैं अमेरिका और जापानके बारेमें कुछ नहीं जानता। जापान सन्तति नियमनका समर्थन किसलिए करता है यह मैं नहीं जानता। पत्रलेखककी बात सच हो और कृत्रिम साधनोंके जरिये सन्तति-नियमनकी बात जापानमें सामान्य हो गई हो तो मैं यह कहनेका साहस करता हूं कि वह जापानकी सुन्दर प्रजाकी अधोगतिकी सूचक है।

मेरी बात बिलकुल गलत हो सकती है मेरे सिद्धान्तोंका आधार गलत हो सकता है परन्तु कृत्रिम साधनोंके हिमायतियोंको धीरज रखना चाहिये। वाजकलके उदाहरणोंके सिवा उनके पास दूसरे कोई प्रमाण नहीं है। जो पद्धति स्पष्ट रूपसे मनुष्यकी नैतिक दृष्टिको तपती नहीं उसके बारेमें निश्चित रूपसे कोई भविष्य-वाणी करना अभी बहुत जल्दी होगा। नतीजोंके साथ खिलवाड़ करना आसान है। परन्तु ऐसे खिलवाड़के हानि कारक परिणामोंको टालना कठिन है।

नवजीवन १२-४-२५

४

गुह्य प्रकरण *

जिन्होंने 'आरोग्य विषे सामान्य ज्ञान' के अभी तकके प्रकरण ध्यानसे पढ़े हैं उनसे मेरी प्रार्थना है कि वे इस प्रकरणको विशेष सावधानीसे पढ़ें और इस पर गहरा विचार करें। दूसरे प्रकरण और लिखे जायेंगे और मैं मानता हूं कि पाठकोंके लिए वे उपयोगी सिद्ध होंगे। परन्तु इस विषय पर दूसरा एक भी प्रकरण इतना महत्त्वपूर्ण नहीं होगा। मैं पहले कह चुका हूं कि इन प्रकरणोंमें ऐसी एक भी बात मैंने नहीं लिखी है, जिसका आधार मेरा व्यक्तिगत अनुभव न हो अथवा जिसे मैं दृढ़तासे मानता न होऊं।

आरोग्यकी अनेक कुंजियां हैं। और ये सब कुंजियां बड़ी महत्त्वपूर्ण हैं। परन्तु आरोग्यकी मुख्य कुंजी तो ब्रह्मचर्य है। शुद्ध हवा, शुद्ध जल, शुद्ध आहार वगैरासे हम स्वास्थ्य प्राप्त कर सकते हैं। परन्तु जितना स्वास्थ्य प्राप्त करें उतना सब खर्च कर डालें तो हमारे पास पूंजी क्या बचेगी? जितना पैसा हम कमायें उतना सब उड़ा डालें तो हम कंगाल और गरीब बन जायेंगे। इस बातमें किसीको शंका रखनी ही नहीं चाहिये कि स्त्री और पुरुष दोनोंको अपने स्वास्थ्यरूपी धनकी रक्षा करनेके लिए ब्रह्मचर्य-पालनकी पूरी जरूरत है। जिसने अपने वीर्यकी रक्षा की है वही वीर्यवान — बलवान — कहा जा सकता और माना जा सकता है।

यह प्रश्न किया जायगा कि ब्रह्मचर्य क्या है? पुरुष स्त्रीका भोग न करे और स्त्री पुरुषका भोग न करे, यह ब्रह्मचर्य है। भोग न करना इसका अर्थ इतना ही नहीं है कि विषय-सेवनकी इच्छासे एक-दूसरेका

* आरोग्य विषे सामान्य ज्ञान (गुज.) भाग १ प्रकरण ९। यह पुस्तक सुधार कर गांधीजीने फिरसे लिखी थी, जिसका हिन्दी अनुवाद 'आरोग्यकी कुंजी' नामसे प्रकट हुआ है। प्रकाशक: नवजीवन ट्रस्ट, अहमदाबाद – १४।

स्पर्श न किया जाय परन्तु विषय-सेवनका विचार भी मनमें न आया जाय। इस विषयमें स्वप्न भी नहीं आना चाहिये। पुरुष स्त्रीको देखकर पागल न बने न स्त्री पुरुषको देखकर पागल बने। कुदरतने जो गुप्त शक्ति हमें प्रदान की है उसे बचाकर हमारे शरीरमें उसका संग्रह करना चाहिये और अपना स्वास्थ्य सुधारनेमें उसका उपयोग करना चाहिये। और यह स्वास्थ्य केवल शरीरका ही नहीं परन्तु मन और बुद्धिका तथा स्मरण-शक्तिका भी समझना चाहिये।

अब हमारे आसपास जो कौतुक चल रहा है उसे हम देखें। छोटे बड़े पुरुष और स्त्रियां प्राय इस मोहमें डूबे हुए रहते हैं। काम-वासना उभड़ती है तब हम बिलकुल पागल हो जाते हैं। हमारी बुद्धि ठिकाने नहीं रहती। हमारी आंखों पर परदा गिर जाता है। हम कामांध बन जाते हैं। कामके वश हुई स्त्रियों पुरुषों तथा लड़के-लड़कियोंको मैंने बिलकुल बावरे बनते देखा है। मेरा अपना अनुभव इससे भिन्न नहीं है। जब जब मैं कामके वश हुआ हूं तब तब अपना भान भूला हूं। काम-वासना है ही ऐसी। इस प्रकार एक रत्तीभर रतिसुखके लिए हम पलभरमें एक मनसे भी अधिक बल खो बैठते हैं। जब हमारा मद उतरता है तब हम बिलकुल पंगु बन जाते हैं। दूसरे दिन सुबह हमारा शरीर भारी रहता है हमें सच्चा चैन नहीं मिलता हमारा शरीर शिथिल हो जाता है और हमारा मन भी ठिकाने नहीं रहता।

इन सबको ठिकाने लानेके लिए हम कढ़ा हुआ दूध पीते हैं भस्म खाते हैं तरह तरहके पाक खाते हैं और वैद्योंके पास जाकर शक्तिकी दवाएं मांगते हैं! हम इसी खोजमें लगे रहते हैं कि कैसा आहार करनेसे हमारी कामवृत्ति बढ़ेगी। इसी प्रकार जैसे जैसे दिन और वर्ष बीतते जाते हैं वैसे वैसे हम शरीर और बुद्धिसे हीन बनते जाते हैं तथा बुढ़ापेमें हमारी बुद्धि नष्ट हो जाती है।

वास्तवमें ऐसा होना ही नहीं चाहिये। बुढ़ापेमें बुद्धि मंद होनेके बदले तेज होनी चाहिये। हमारी स्थिति ऐसी रहनी चाहिये जिससे इस शरीरके द्वारा प्राप्त किया हुआ अनुभव हमारे लिए और दूसरोंके लिए लाभदायक सिद्ध हो सके। और जो मनुष्य ब्रह्मचर्यका पालन करता है

उसकी ऐसी स्थिति रहती है। उसे मृत्युका भय नहीं रहता। मृत्युके समय
भी वह ईश्वरको भूलता नहीं और मिथ्या प्रयत्नोंमें नहीं पड़ता। वह
मृत्युके समय हाय-विकलता नहीं। वह हंसते हंसते इस शरीरको छोड़कर
स्वामीको अपने कामका हिसाब देने चला जाता है। जो पुरुष और स्त्री
इस तरह मरते हैं वे ही सच्चे पुरुष और स्त्री हैं। कहा जायगा कि
उन्होंने ही सच्चे स्वास्थ्यका रक्षण किया है।

हम सामान्यतः इस बातका विचार नहीं करते कि इस दुनियामें
मौजशौक ईर्षा-द्वेष बड़प्पन आडंबर, क्रोध अधैर्य आदिका मूल हमारे
ब्रह्मचर्य भंगमें निहित है। इस प्रकार यदि हमारा मन अपने वशमें न
रहे और एक या अनेक बार हम छोटे बालकसे भी ज्यादा मूर्खताका
व्यवहार करें, तो फिर जान-अनजाने हम कौनसे पाप जीवनमें नहीं
करेंगे? कौनसा घोर कर्म करनेसे हम रुकेंगे?

परन्तु यह प्रश्न करनेवाले लोग हमारे यहां हैं: ऐसा ब्रह्मचर्य
पालनेवाले ब्रह्मचारीको किसने देखा है? ऐसा ब्रह्मचर्य यदि सभी लोग
पालें तब तो दुनियाका सर्वनाश हो जाय? इस प्रश्नकी चर्चा करनेमें
धर्मकी चर्चा आ सकती है। इसलिए धर्मको छोड़कर केवल दुनियावी
दृष्टिसे ही हम इसका विचार करेंगे। मेरे मनसे इन दोनों प्रश्नोंकी
जड़में हमारा भय और कायरता ही है। हम ब्रह्मचर्यका पालन नहीं करना
चाहते इसलिए उससे निकल भागनेका रास्ता खोजते हैं। इस दुनियामें
अनेक लोग ब्रह्मचर्यका पालन करते हैं। लेकिन अगर वे दूकानमें सुलभ मिल
जायं तो उनका मूल्य क्या रहे? हीरा प्राप्त करनेके लिए पृथ्वीके गर्भमें
हजारों मजदूरोंको बन्द होकर कड़ी मेहनत करनी पड़ती है और उसके
बाद भी पर्वत जैसा धूल-कंकरका ढेर खोदने पर मुश्किलसे मुट्ठीभर हीरे
ही हाथ लगते हैं। तब वैज्ञानिकका हिसाब करके सबको इस प्रश्नका
उत्तर जान लेना चाहिये कि ब्रह्मचर्यका पालन करनेवाले मनुष्यरूपी
हीरेको खोजनेके लिए कितना प्रयत्न करना चाहिये। ब्रह्मचर्यका पालन
करनेसे सृष्टिका क्रम बंद हो जाय तो उसकी चिन्ता हम क्यों करें? हम
कोई ईश्वर नहीं हैं। जिस ईश्वरने यह सृष्टि उत्पन्न की है वह उसका
ध्यान रख लेगा। दूसरे लोग ब्रह्मचर्य पालते हैं या नहीं यह प्रश्न

हमारे करनेका है ही नहीं। हम व्यापार, वकालत वगैरा धंधेमें पड़ते समय इस बातका विचार नहीं करते कि सभी लोग व्यापारी या वकील बन जायं तो क्या होगा? जो ब्रह्मचर्यका पालन करेंगे उन पुरुषों या स्त्रियोंको समय बीतने पर ऊपरके दोनों प्रश्नोंका उत्तर मिल जायगा। अर्थात् अपने जैसे दूसरे लोग उन्हें मिल जायंगे और यह बात भी वे सूर्य-प्रकाशकी तरह स्पष्ट देख लेंगे कि अगर सभी लोग ब्रह्मचर्यका पालन करें तो सृष्टिका क्या होगा।

परन्तु संसारी मनुष्य ऊपर बताये हुए विचारोंको अमलमें कैसे उतार सकते हैं? विवाहित लोग क्या करें? बाल-बच्चेवाले लोग क्या करें? जो लोग कामको वशमें रख ही न पायें वे क्या करें?

हम यह देख चुके हैं कि हमारे लिए उत्तम और आदर्श स्थिति क्या है जिसे हमें प्राप्त करना है। उस आदर्शको हम सामने रखें तो उसकी वैसी ही या उससे घटिया नकल कर सकते हैं। बालकसे जब हम अक्षर लिखवाते हैं तब अच्छेसे अच्छे अक्षरोंका नमूना हम उसके सामने रखते हैं। बालक उसके आधार पर यथाशक्ति उन अक्षरोंकी पूरी या अधूरी नकल करेगा। उसी प्रकार हम भी अपने समक्ष अखंड ब्रह्मचर्यका आदर्श रखकर उसकी नकलका प्रयत्न करें। विवाहित होनेका क्या अर्थ है? कुदरती कानून तो यह है कि जब स्त्री-पुरुषको सन्तानकी इच्छा हो तभी वे अपने ब्रह्मचर्यको तोड़ें। इस प्रकार सोच-विचार कर जो जोड़ा बरसमें या चार-पांच बरसमें एक बार ब्रह्मचर्य तोड़ेगा वह बिलकुल पागल नहीं बनेगा और उसके पास वीर्यरूपी पूंजी भी पर्याप्त मात्रामें एकत्र हो सकेगी। ऐसे स्त्री-पुरुष मुश्किलसे हमारे देखनेमें आते हैं जो केवल प्रजोत्पत्तिके लिए ही कामभोग करते हैं। परन्तु हजारों लोग तो कामभोग चाहते हैं उसकी इच्छा रखते हैं और उसे पूरा करते हैं। परिणाम यह आता है कि उन्हें इच्छाके विरुद्ध सन्तान पैदा होती है। इस विषय-सेवनमें हम इतने अंधे हो जाते हैं कि सामनेवाले साथीका विचार ही नहीं करते। इसमें स्त्रीकी अपेक्षा पुरुष अधिक अपराधी है। अपने पागलपनमें उसे स्त्रीकी कमजोरीका और सन्तानका भार उठाने तथा उसका पालन-पोषण करनेकी अपनी शक्ति या अशक्तिका खयाल

भी नहीं रहता। पश्चिमके लोगोंने तो इस बारेमें अति कर डाली है। वे विषय भोग भोगनेके लिए तथा उत्पन्न होनेवाली सन्तानके बोझको दूर रखनेके लिए अनेक उपचार करते हैं। इन उपचारों पर बड़ी पुस्तकें लिखी गई हैं और विषय-सेवन करते हुए भी सन्तान उत्पन्न न हो ऐसे साधन बतानेवाले पेशेवर लोग खड़े हो गये हैं। हम अभी तो इस पापसे मुक्त हैं। परन्तु हम अपनी पत्नियों पर बोझ लादनेमें किसी तरहका विचार नहीं करते और इस बातकी भी परवाह नहीं करते कि ऐसा करनेमें हमारी सन्तान कमजोर, वीर्यहीन डरपोक और बुद्धिहीन होती है। इसके विपरीत जब हमारे यहां सन्तान उत्पन्न होती है, तब हम ईश्वरका उपकार मानते हैं।

हमारी इस दीन दशाको छिपानेका एक मार्ग है। कमजोर, पंगु, विषयी कायर सन्तान हमारे यहां उत्पन्न हो तो हम इसे ईश्वरका कोप क्यों न मानें? बारह बरसका बालक पिता बने इसमें सुख और आनन्द माननेकी क्या बात है? इसमें उत्सव मनानेका क्या कारण हो सकता है? बारह वर्षकी बाला अगर माता बन जाय तो इसे हम ईश्वरका महाकोप क्यों न मानें? हम यह जानते हैं कि तुरन्त लगाये हुए पेड़को अगर फल आने लगें तो वह कमजोर हो जाता है। और हम ऐसे इलाज करते हैं जिससे उस पेड़को फल न लगें। तब बालक पतिसे बालक पत्नीको सन्तान उत्पन्न हो और हम उसका आनन्द मनायें तो यह हमारी भयंकर मूढ़ मानी जानी चाहिये। हिन्दुस्तानमें या दुनियामें अगर कमजोर मनुष्य चींटियोंकी तरह उमड़ पड़ें तो इससे हिन्दुस्तानका अथवा दुनियाका क्या भला होगा? एक दृष्टिसे तो पशु हमसे ऊँचे हैं। जब उन्हें सन्तान पैदा करनी होती है तभी हम नर और मादाका मिलाप कराते हैं। मिलापके बाद गर्भकालमें तथा जन्मके बाद बच्चा माका दूध पीना छोड़कर बड़ा हो तब तकका समय सर्वथा पवित्र माना जाना चाहिये। पुरुष और स्त्री दोनोंको उस कालमें तो ब्रह्मचर्यका ही पालन करना चाहिये। इसके बजाय हम थोड़ा भी विचार किये बिना अपने भोग भोगते ही चले जाते हैं। हमारे मन इतने अधिक रोगी हैं। यह असाध्य रोग कहा जायगा। ऐसा रोग मृत्युसे हमारी भेंट कराता है। और जब तक मृत्यु

नहीं हो जाती तब तक हम पागलोंकी तरह विषय-भोगके पीछे भटकते रहते हैं।

इसलिए चरित्रवान स्त्री-पुरुषोंका यह कर्तव्य है कि वे अपना विवाहका गलत नहीं किन्तु सही और शुद्ध अर्थ करें और सन्तान न हो तब उत्तम विचारोंकी प्राप्त करनेकी इच्छासे ही सहवास करें। आज हमारी जो दयनीय दशा है उसमें ऐसा करना अत्यन्त कठिन है। हमारा आहार, हमारा रहन-सहन हमारी बातें आसपासके दृश्य — सब कुछ हमारी विषय-वासनाको जाग्रत और उत्तेजित करनेवाले हैं। इसके सिवा अफीमके नशेकी तरह हम पर विषयका नशा चढ़ा हो तब विचार करके पीछे कदम हटाना कैसे संभव हो सकता है? परन्तु जो होना चाहिये वह कैसे हो सकता है ऐसी शंका उठानेवालोंके लिए इस लेखमें कोई उत्तर नहीं है। जो लोग सोच कर जो कुछ करना चाहिये उसे करनेके लिए — प्रयत्न करनेके लिए — तैयार हैं उन्हींके लिए मैं यह लिख रहा हूं। जो लोग अपनी वर्तमान स्थितिमें संतोष मानकर बैठे हैं, उन्हें तो यह सब पढ़ना भी नापसन्द होगा परन्तु जिन्हें अपनी दीन दशाका भान हो गया है और जो अपनी इस दशासे कुछ हद तक ऊब गये हैं उन्हींकी सहायता करना इस लेखका उद्देश्य है।

ऊपरकी बातोंसे हम यह देख सकते हैं कि जिनका विवाह नहीं हुआ है उन्हें आजके कठिन समयमें विवाह करना ही नहीं चाहिये। और अगर विवाह किये बिना काम चले ही नहीं तो यथासंभव बड़ी उमरमें विवाह करना चाहिये। तरुण पुरुषोंको २५ या ३० वर्ष तक विवाह न करनेकी प्रतिज्ञा लेनी चाहिये। ऐसा करनेसे स्वास्थ्यलाभके साथ जो अन्य अनेक लाभ होंगे उनकी चर्चा हम इस स्थान पर नहीं कर सकते। सब लोग स्वयं इन लाभोंका अनुमान कर लें।

जो माता-पिता मेरा यह लेख पढ़ें उनसे मुझे इतना कहना है कि वे अपने बालकोंको जो बचपनसे ही मंगनी या विवाह करके बेच डालते हैं यह उनकी भारी मूर्खता है। ऐसा करके वे अपने बच्चोंका स्वार्थ देखनेके बजाय केवल अपना ही अन्धा स्वार्थ साधते हैं। उन्हें स्वयं ही बड़े बनना है अपनी जातिमें नाम कमाना है और बच्चोंका विवाह करके

आनन्द-उत्सव मनाना है। अगर बच्चोंका हित करना हो तब तो वे उनकी पढ़ाईकी जांच करेंगे उनकी सार-सम्भालका ध्यान रखेंगे और उन्हें शरीर-शिक्षण देंगे। भावके विषम समयमें छोटे बालकोंका विवाह करके उन्हें घर-गृहस्थीकी झंझाटमें फसानेसे बड़ा उनका और क्या अहित हो सकता है?

अंतमें जिन स्त्रियों और पुरुषोंका एक बार विवाह हो गया है उनका मृत्युके कारण एक-दूसरेसे वियोग हो जाने पर उन्हें वैधव्यका पालन करना चाहिये। यह आरोग्यकी दृष्टिसे एक कानून है। कुछ डॉक्टरोंने यह राय प्रकट की है कि जवान पुरुष या स्त्रीको वीर्यपातका अवसर मिलना ही चाहिये। दूसरे कुछ डॉक्टरोंका कहना है कि किसी भी स्थितिमें वीर्यपात करना आवश्यक नहीं है। इस प्रकार डॉक्टरोंमें परस्पर मतभेद हो तब यह समझकर हमें विषय-भोगमें लीन नहीं रहना चाहिये कि हमारे विषय-भोगके विचारको डॉक्टरोंका समर्थन प्राप्त है। मैं अपने अनुभवसे तथा दूसरोंके ऐसे अनुभवसे जिसे मैं जानता हूं बिना किसी हिचकिचाहटके यह कह सकता हूं कि स्वास्थ्यकी रक्षाके लिए विषय-भोग जरूरी नहीं है। इतना ही नहीं विषय-भोगसे वीर्यपातसे स्वास्थ्यको बहुत हानि पहुंचती है। मन और तनकी अनेक वर्षोंकी संचित शक्ति और ताकत एक बारके वीर्यपातसे भी इतनी ज्यादा नष्ट हो जाती है कि उसे पुनः प्राप्त करनेमें बहुत समय लग जाता है। और इतने समयके बाद भी मूल स्थिति — पहलेकी शक्ति तो दोनों प्राप्त कर ही नहीं पाते। टूटे हुए कांचको जोड़ कर उससे काम भले किया जाय परन्तु वह टूटा हुआ ही माना जायगा।

वीर्यकी रक्षाके लिए स्वच्छ हवा स्वच्छ पानी स्वच्छ आहार और स्वच्छ विचारकी पूरी पूरी आवश्यकता है। इस प्रकार नीतिका — सदाचारका स्वास्थ्यके साथ बड़ा निकटका संबंध है। संपूर्ण नीतिवान मनुष्य ही संपूर्ण स्वास्थ्यका उपभोग कर सकता है। जब जागे तभी सवेरा समझ कर जो लोग ऊपरकी बातों पर गहरा विचार करेंगे और दी गई सूचनाओं पर अमल करेंगे उन्हें प्रत्यक्ष अनुभव होगा। जिसने थोड़े समय तक भी ब्रह्मचर्यका पालन किया होगा वह भी देख सकेगा कि उसके मन

और शरीरका बल बढ़ गया है। और एक बार यह पारसमणि उसके हाथमें आ जायगी तो वह किसी भी कीमत पर इस पारसमणिकी रक्षा करेगा। जरा भी गलती करने पर वह तुरन्त देख लेगा कि उसने भारी भूल की है। मैंने ब्रह्मचर्यके अगणित लाभ सोचे हैं और जाने हैं फिर भी भूलें की हैं और उनके कड़ुवे परिणाम भी भोगे हैं। भूल करनेसे पहलेकी अपने मनकी भव्य दशा तथा भूल करनेके बादकी अपनी दीन दशा — दोनोंका स्पष्ट चित्र मेरे सामने तैरा करता है। परन्तु अपनी भूलोंसे मैं इस पारसमणिकी कीमत करना सीखा हूं। अब मैं इसकी अखंड रक्षा कर सकूंगा या नहीं यह मैं नहीं जानता। परन्तु ईश्वरकी सहायतासे इसकी रक्षा करनेकी आशा रखता हूं। इससे मेरे मन और शरीरको जो लाभ हुए हैं उन्हें मैं देख और समझ सकता हूं। दूर मेरा विवाह बालपनमें हो गया था बालपनमें ही मैं कामांध बन गया था और बालपनमें ही मैं पिता बन गया था। मैं बहुत देरसे जागा। जागकर जब मैंने देखा तो पाया कि मैं तो अज्ञानके घन अंधकारमें पड़ा हुआ हूं। मेरी भूलोंसे और मेरे अनुभवोंसे अगर एक भी पाठक चेतेगा और लाभ उठायेगा तो मैं इस प्रकरणको लिखकर कृतार्थताका अनुभव करूंगा। बहुत लोगोंने यह कहा है और मैं भी मानता हूं कि मुझमें उत्साहकी बहुत बड़ी मात्रा है। मेरा मन तो कमजोर नहीं माना जाता। कुछ लोग तो मुझे हठी मानते हैं। मेरे शरीरमें और मनमें अनेक रोग हैं। परन्तु मेरे संपर्कमें आये हुए लोगोंकी तुलनामें मैं काफी स्वस्थ माना जाता हूं। बीस वर्ष तक कम या अधिक विषयमें लीन रहनेके बाद जागने पर यदि मेरी यह दशा है तब यदि वे बीस वर्ष भी मैंने ब्रह्मचर्यके पालनमें बिताये होते तो आज मेरी कितनी अच्छी दशा होती? मैं स्वयं तो ऐसा मानता हूं कि आज मेरे उत्साहका पार न रहा होता। और मैं जहां कहीं होता वहां जनताकी सेवामें अथवा अपनी स्वार्थ सिद्धिमें मैंने इतना उत्साह दिखाया होता कि मेरी बराबरी करना किसीके भी लिए कड़ी कसौटी हो जाता। इतना सार मेरे जैसे अधूरे ब्रह्मचारीके जीवनसे निकाला जा सकता है। तब जो लोग अखंड ब्रह्मचर्यका पालन कर सके हैं उनके शारीरिक मानसिक और नैतिक बलका अनुमान तो मैं

ही लगा सकते हैं जिन्होंने उन्हें देखा है। शब्दोंमें उसका वर्णन नहीं किया जा सकता।

इस प्रकरणको पढ़नेवाले यह बात समझ गये होंगे कि जब मैंने विवाहित लोगोंको ब्रह्मचर्य पालनेकी सलाह दी है और विधुर पुरुष या विधवा स्त्रीको वैधव्यकी दशामें ही रहनेकी सलाह दी है, तब विवाहित अथवा अविवाहित पुरुष या स्त्रीके जीवनमें अन्यत्र कहीं भी विषय-सेवन करनेकी गुंजाइश तो हो ही नहीं सकती। परन्तु परस्त्री अथवा वेश्या पर कुदृष्टि डालनेसे कैसे भयंकर परिणाम आते हैं इसकी चर्चा करनेके लिए यहां नहीं ठहरा जा सकता। यह धर्मका और गहरी नैतिकताका विषय है। यहां तो केवल इतना ही कहा जा सकता है कि परस्त्री तथा वेश्या-गमनसे पुरुष विस्फोटक आदि घृणित रोगोंसे पीड़ा भोगते और सड़ते देखे जाते हैं। कुदरत इतनी दया करती है कि ऐसे स्त्री-पुरुषोंको तुरन्त वाव पड़ जाते हैं। फिर भी वे जागते नहीं। और अपने रोगोंके लिए दवा खोजनेको वैद्य-हकीम या डॉक्टरोंके पास भटकते रहते हैं। अगर परस्त्री गमनकी बुराई मिट जाय तो ५ प्रतिशत वैद्य-हकीमों और डॉक्टरोंका धंधा खतम हो जाय। इन रोगोंने मानव-जातिको इस तरह अपने शिकंजेमें जकड़ लिया है कि विचारशील डॉक्टर कहते हैं यदि परस्त्री-गमनका यह पाप जारी रहा तो हमारी खोजोंके बावजूद देखते ही देखते दुनियाकी प्रजाओंका नाश हो जायगा। इस पापसे होनेवाले रोगोंकी दवायें इतनी जहरीली होती हैं कि उनसे अगर रोगका नाश हुआ मालूम हो तो दूसरे ऐसे रोग शरीरमें घर कर लेते हैं जो एक पीढ़ीसे दूसरी पीढ़ीमें उतरते हैं।

अब विवाहित लोगोंको ब्रह्मचर्य-पालनके उपाय बताकर यह आवश्यक अधिक बढ़ जानेवाला प्रकरण हम पूरा करेंगे। विवाहित पुरुष केवल आहार, हवा पानी आदिके नियमोंका पालन करके ही ब्रह्मचर्य नहीं पाल सकेंगे। उन्हें अपनी स्त्रीके साथ एकान्तका त्याग करना चाहिये। विचार करने पर प्रत्येक पुरुष समझ लेगा कि विषय-सेवनके सिवा स्त्रीके साथ एकान्तमें रहनेकी जरूरत नहीं है। रातको स्त्री और पुरुषको अलग अलग कमरोंमें सोना चाहिये। दिनमें दोनोंको शुभ कार्योंमें और अच्छे विचारोंमें

घास खाने पर अपना गुजर करते हैं — सो भी महज पेट भरने लायक ही खाते हैं। वे जीनेके लिए खाते हैं खानेके लिए नहीं जीते हैं। लेकिन हम तो इसके बिलकुल विपरीत ही करते हैं।

मा बच्चेको तरह तरहके सुस्वादु भोजन कराती है। वह मानती है कि बालकके प्रति प्रेम दिखानेका यही सर्वोत्तम मार्ग है। ऐसा करते हुए हम उन चीजोंमें स्वाद डालते नहीं बल्कि उनका स्वाद लेते हैं। सच्चा स्वाद तो भूखमें रहता है। भूखेको सूखी रोटी भी मीठी लगती है और जो आदमी भूखा नहीं है उसे लड्डू भी फीके और बेस्वाद मालूम होंगे। पर हम तो पेटको ठसाठस भरनेके लिए अनेक मसालोंका उपयोग करके अनेक व्यंजन तैयार करते हैं और फिर कहते हैं कि ब्रह्मचर्यका पालन नहीं हो पाता।

जो आँखें हमें ईश्वरने देखनेके लिए दी हैं उनको हम मलिन करते हैं और देखनेकी वस्तुओंको देखना नहीं सीखते। माता क्यों गायत्री न सीखे और अपने बालकोंको क्यों गायत्री न सिखावे? इसकी गहरी छानबीन करनेकी अपेक्षा उसके तत्त्व — सूर्योपासना — को समझकर वह उनसे सूर्योपासना करावे तो कितना अच्छा हो। सूर्यकी उपासना तो सनातनी और आर्यसमाजी सब कोई कर सकते हैं। यह तो मैंने गायत्रीका स्थूलसे स्थूल अर्थ आपके सामने उपस्थित किया। इस उपासनाके मानी क्या हैं? अपना सिर ऊँचा रखकर सूर्य-नारायणके दर्शन करके आँखकी शुद्धि करना चाहिये। गायत्रीके रचयिता ऋषि थे द्रष्टा थे। उन्होंने कहा है कि सूर्योदयमें जो नाटक है जो सौन्दर्य है जो लीला है वह और कहीं दिखाई नहीं दे सकती। ईश्वरके जैसा सुन्दर सूत्रधार अन्यत्र नहीं मिल सकता और आकाशसे बढ़कर भव्य रंगभूमि अन्यत्र नहीं मिल सकती।

मगर कौनसी माता आज बालककी आँखें धोकर उसे आकाशका दर्शन कराती है? बल्कि माताके मनमें तो अनेक प्रपंच ही रहते हैं। स्कूलोंके बड़े-बड़े मकानोंमें जो शिक्षा मिलती है उसके फलस्वरूप लड़का शायद बड़ा अधिकारी होगा। लेकिन इस बात पर कौन विचार करता है कि घरमें जाने-अनजाने जो शिक्षा बच्चोंको मिलती है उससे कितनी बातें वह ग्रहण कर लेता है?

मां-बाप हमारे शरीरको ढंकते हैं, सजाते हैं परन्तु इससे क्या शरीरकी शोभा बढ़ सकती है? कपड़े शरीरको ढंकनेके लिए हैं, सर्दी-गर्मीसे उसकी रक्षा करनेके लिए हैं उसे सजानेके लिए नहीं। जाड़ेसे ठिठुरते हुए बालकको जब हम अंगीठीके पास बैठेंगे अथवा मुहल्लेमें खेलने-कूदनेको भेज देंगे अथवा खेतमें काम करने लगा देंगे तभी उसका शरीर वज्रकी तरह मजबूत होगा। जिसने ब्रह्मचर्यका पालन किया है उसका शरीर वज्रकी तरह होना चाहिये। हम तो बच्चेके शरीरका नाश कर डालते हैं। हम उसे घरमें रखकर जो गर्मी देना चाहते हैं उससे तो उसकी चमड़ीमें जिस तरहकी गर्मी आती है, वह सच्ची गर्मी नहीं है, उससे बच्चेको नुकसान होता है। हमने शरीरको दुलराकर उसे बिगाड़ डाला है।

यह तो हुई कपड़ोंकी बात। इसके सिवा घरमें तरह तरहकी बातें करके हम उसके मन पर बुरा प्रभाव डालते हैं। हम उसकी शादीकी बातें किया करते हैं। बालकको ऐसी तरहकी चीजें देखनेको भी मिलती हैं। मुझे तो आश्चर्य होता है कि हम बिलकुल जंगली ही क्यों न हो गये। मर्यादा तोड़नेके अनेक साधनोंके होते हुए भी हमारी मर्यादाकी रक्षा होती रहती है। ईश्वरने मनुष्यकी रचना इस तरहसे की है कि पतनके अनेक अवसर आने पर भी वह पतनसे बच जाता है। ऐसी ईश्वरकी अलौकिक लीला है। यदि ब्रह्मचर्यके रास्तेमें आनेवाले ये सब विघ्न हम दूर कर दें तो उसका पालन सहज और आसान हो जाय।

ऐसी स्थिति होते हुए भी हम दुनियाके बलवान लोगोंके साथ शारीरिक स्पर्धा करना चाहते हैं। उसके दो मार्ग हैं। एक आसुरी और दूसरा दैवी। आसुरी मार्ग है—शरीर-बल प्राप्त करनेके लिए हर तरहके उपायोंसे काम लेना हर तरहकी चीजें खाना शारीरिक स्पर्धा करनेके लिए गोमांस खाना इत्यादि। मेरे बचपनमें मेरा एक मित्र मुझसे कहा करता था कि मांसाहार हमें अवश्य करना चाहिये। नहीं तो अंग्रेजोंकी तरह हट्टे-कट्टे हम नहीं हो सकेंगे। जापानको भी जब दूसरे देशोंके साथ मुकाबला करनेका समय आया तब वहां गोमांस-भक्षणको स्थान मिला। इसलिए यदि आसुरी मार्गसे शरीरको पुष्ट करनेकी इच्छा हो तो इन चीजोंका सेवन हमें करना ही होगा।

लेकिन यदि ऐसी मार्गसे शरीरको पुष्ट और शक्तिशाली बनाना हो तो ब्रह्मचर्य ही उसका एकमात्र उपाय है। जब मुझे कोई नैष्ठिक ब्रह्मचारी कहता है तब मुझे अपने पर दया आती है। इस अभिनन्दन-पत्रमें मुझे नैष्ठिक ब्रह्मचारी कहा गया है। इसलिए मुझे कहना चाहिये कि जिन्होंने यह अभिनन्दन-पत्र तैयार किया है, उन्हें पता नहीं कि नैष्ठिक ब्रह्मचारी किसे कहा जाता है। उन्हें इतना भी विचार न आया कि मेरे जैसे आदमीको जो विवाहित है और जिसके बच्चे हैं, नैष्ठिक ब्रह्मचारी कैसे कह सकते हैं? नैष्ठिक ब्रह्मचारीको न तो कभी बुखार आता है न कभी उसका सिर दर्द करता है, न कभी उसे खांसी होती है, न कभी एपेण्डिसाइटिस होता है। डॉक्टर लोग कहते हैं कि नारंगीका बीज आंतमें रह जानेसे भी एपेण्डिसाइटिस होता है। परन्तु जिसका शरीर स्वच्छ और नीरोग होता है उसमें यह बीज टिक ही नहीं सकता। जब आंतें शिथिल पड़ जाती हैं तब वे ऐसी चीजोंको अपने-आप बाहर नहीं निकाल सकतीं। मेरी भी आंतें शिथिल हो गई होंगी। इसीसे मैं ऐसी कोई चीज हजम न कर सका होऊंगा। बच्चे ऐसी अनेक चीजें खा जाते हैं। माता इसका कहां ध्यान रखती है? पर उनकी आंतोंमें इतनी शक्ति स्वाभाविक रूपसे ही होती है।

इसलिए मैं चाहता हूं कि मुझ पर नैष्ठिक ब्रह्मचर्यके पालनका आरोपण करके कोई मिथ्याचारी न बने। नैष्ठिक ब्रह्मचर्यका तेज तो मेरे तेजसे अनेक गुना अधिक होना चाहिये। मैं आदर्श ब्रह्मचारी नहीं हूं। हां, यह सच है कि मैं वैसा बनना चाहता हूं। मैंने तो आपके सामने अपने अनुभवकी कुछ बातें पेश की हैं जो ब्रह्मचर्यकी सीमा बताती हैं।

ब्रह्मचारी रहनेका अर्थ यह नहीं कि मैं किसी स्त्रीका स्पर्श न करूं, अपनी बहनका भी स्पर्श न करूं। परन्तु ब्रह्मचारी होनेका अर्थ यह है कि किसी स्त्रीका स्पर्श करनेसे किसी प्रकारका विकार मनमें उत्पन्न नहीं होना चाहिये जिस तरह कागजको स्पर्श करनेसे कोई विकार उत्पन्न नहीं होता। मेरी बहन बीमार हो और उसकी सेवा करनेमें उसका स्पर्श करनेमें ब्रह्मचर्यके कारण मुझे हिचकना पड़े तो मेरा ब्रह्मचर्य तीन कौड़ीका है। जिस निर्विकार दशाका अनुभव हम मृत शरीरका स्पर्श करके

कर सकते हैं उसी निर्विकार दशाका अनुभव जब हम किसी परम सुन्दरी युवतीका स्पर्श करने पर भी कर सकें तभी कहा जायगा कि हम ब्रह्मचारी हैं। यदि आप यह चाहते हों कि आपके बालक ऐसे ब्रह्मचर्यको प्राप्त करें तो इसका अभ्यासक्रम आप नहीं बना सकते मुझ जैसा अपूर्ण ही क्यों न हो परन्तु कोई ब्रह्मचारी ही बना सकता है।

ब्रह्मचारी स्वाभाविक संन्यासी होता है। ब्रह्मचर्याश्रम संन्यासाश्रमसे भी श्रेष्ठ है। परन्तु हमने उसे नीचे गिरा दिया है। इससे हमारा गृहस्थाश्रम भी बिगड़ा है और वानप्रस्थाश्रम भी बिगड़ा है। और संन्यासका तो नाम भी नहीं रह गया है। ऐसी हमारी दीन दशा हो गई है।

ऊपर जो आसुरी मार्ग बताया गया है उसका अनुकरण करके तो आप पांच सौ वर्षोंमें भी पठानोंका मुकाबला नहीं कर सकेंगे। दैवी मार्गका अनुकरण यदि आज हो तो आज ही पठानोंका मुकाबला हो सकता है। क्योंकि दैवी मार्गसे आवश्यक मानसिक परिवर्तन एक क्षणमें हो सकता है जब कि शारीरिक परिवर्तन करनेमें युगोंका समय लग जाता है। इस दैवी मार्गका अनुकरण हमसे तभी होगा जब हमारे पल्ले पूर्वजन्मका पुण्य होगा और माता-पिता हमारे लिए आवश्यक साधन सामग्री पैदा करेंगे।

हिन्दी नवजीवन २६-२-२५

६

ब्रह्मचर्य

इस विषय पर लिखना आसान नहीं है। लेकिन मेरा निजी अनुभव इस विषयमें इतना विशाल है कि उसके कुछ परिणाम पाठकोंके समक्ष रखनेकी इच्छा बनी रहती है। मेरे नाम आये हुए कुछ पत्रोंने इस इच्छाको और भी बढ़ा दिया है।

एक भाई पूछते हैं

ब्रह्मचर्यका अर्थ क्या है? क्या उसका पूर्ण पालन संभव है? अगर है तो क्या आप उसका पालन करते हैं?

ब्रह्मचर्यका पूरा और ठीक अर्थ तो ब्रह्मकी खोज है। ब्रह्म सबमें बसता है और इसलिए अन्तर्ध्यान द्वारा तथा उससे उत्पन्न अंतर्ज्ञानसे उसकी खोज हो सकती है। यह अंतर्ज्ञान इंद्रियोंके संपूर्ण संयमके बिना असंभव है। इस प्रकार ब्रह्मचर्यका अर्थ है सब इंद्रियोंका हर समय और हर जगह मन वचन और कर्मसे संयम।

जो व्यक्ति — पुरुष या स्त्री — ऐसे ब्रह्मचर्यका पूर्ण पालन करता है, वह सर्वथा विकार रहित होता है। इसलिए ऐसे स्त्री-पुरुष ईश्वरके निकट रहते हैं ईश्वरके जैसे होते हैं।

मुझे जरा भी शंका नहीं कि इस प्रकारके ब्रह्मचर्यका मन वचन और कर्मसे पूरी तरह पालन करना संभव है। मुझे यह कहते हुए दुःख होता है कि इस ब्रह्मचर्यकी पूर्ण अवस्था तक मैं अभी नहीं पहुंच पाया हूं। उस अवस्था तक पहुंचनेका प्रयत्न मैं निरंतर करता रहता हूं। इसी शरीरके द्वारा उस स्थिति तक पहुंचनेकी आशा मैंने छोड़ नहीं दी है। तन पर तो मैंने नियंत्रण प्राप्त कर लिया है। जाग्रत अवस्थामें मैं सावधान रह सकता हूं। वाणीके संयमका पालन करना भी मैं ठीक ठीक सीख गया हूं। विचारों पर अभी मुझे बहुत-कुछ नियंत्रण करना बाकी है। जिस समय जिस बातका विचार करना हो उस समय उसके सिवा

दूसरे विचार भी मेरे मनमें आते हैं। इससे विचारोंमें परस्पर द्वंद्व चला ही करता है।

फिर भी जाग्रत अवस्थामें मैं विचारोंको परस्पर संघर्ष करनेसे रोक सकता हूं। मेरी ऐसी स्थिति कही जा सकती है कि गंदे विचार मुझे कभी नहीं आ सकते। परन्तु निद्रावस्थामें विचारों पर मेरा नियंत्रण कम रहता है। नींदमें अनेक प्रकारके विचार आते हैं। अकल्पित सपने भी आते हैं। और कभी कभी इसी देहसे की हुई क्रियाओंकी वासना भी जाग्रत होती है। ये विचार जब गंदे होते हैं तब स्वप्नदोष भी हो जाता है। यह स्थिति विकारी जीवनकी ही हो सकती है।

मेरे पापयुक्त विचार क्षीण होते जा रहे हैं परन्तु उनका नाश नहीं हो पाया है। यदि मैं विचारों पर भी नियंत्रण प्राप्त कर सका होता तो पिछले दस बरसोंमें जो तीन रोग — पसलीका दर्द, पेचिश और एपेंडिसाइटिस — मुझे हुए वे कभी न होते। मैं मानता हूं कि नीरोग आत्माका शरीर भी नीरोग होता है। अर्थात् ज्यों ज्यों आत्मा नीरोग — निर्विकार — होती जाती है, त्यों त्यों शरीर भी नीरोग होता जाता है। नीरोग शरीरका अर्थ बलवान शरीर नहीं है। बलवान आत्मा क्षीण शरीरमें ही वास करती है। ज्यों ज्यों आत्मबल बढ़ता है, त्यों त्यों शरीरकी क्षीणता बढ़ती है। पूर्ण नीरोग शरीर बहुत क्षीण हो सकता है। बलवान शरीरमें बहुत करके रोग तो रहते ही हैं। रोग न हों तो भी वह शरीर संक्रामक रोगोंका शिकार तुरन्त हो जाता है। परन्तु पूर्ण नीरोग शरीर पर ऐसे रोगोंका असर हो ही नहीं सकता। शुद्ध रक्तमें ऐसे जन्तुओंको दूर करनेका गुण होता है।

ऐसी अद्भुत दशा दुर्लभ जरूर है। नहीं तो अब तक मैं वहां पहुंच गया होता। क्योंकि मेरी आत्मा इसकी साक्षी देती है कि ऐसी स्थिति प्राप्त करनेके लिए जिन उपायोंसे काम लेनेकी आवश्यकता है उनसे मैं मुंह नहीं मोड़ता। ऐसी कोई भी बाह्य वस्तु नहीं है जो मुझे उससे दूर रखनेमें समर्थ हो। परन्तु पूर्व संस्कारोंको धोना सबके लिए सरल नहीं होता। इसमें देर हो रही है, फिर भी मैं बिल-कुल निराश नहीं हुआ हूं। क्योंकि मैं निर्विकार अवस्थाकी कल्पना

कर सकता हूं उसकी धुंधली झलक भी देख सकता हूं और जितनी प्रगति मैंने अब तक की है वह मुझे निराश करनेके बदले आशावान बनाती है। फिर भी यदि मेरी आशा पूर्ण हुए बिना ही मेरा शरीर गिर जाय तो भी मैं अपनेको निष्फल हुआ नहीं मानूंगा। जितना विश्वास मुझे इस देहके अस्तित्व पर है उतना ही पुनर्जन्म पर भी है। इसलिए मैं जानता हूं कि थोड़ा प्रयत्न भी व्यर्थ नहीं जाता।

अपने अनुभवोंका इतना वर्णन करनेका कारण यही है कि जिन्होंने मुझे पत्र लिखे हैं उन्हें तथा उनके समान दूसरे लोगोंको धीरज रहे और उनमें आत्म-विश्वास पैदा हो। सबकी आत्मा एक ही है। सबकी आत्माकी शक्ति एकसी है। बात यह है कि कुछ लोगोंकी शक्ति प्रकट हो गई है दूसरोंकी प्रकट होना बाकी है। प्रयत्न करनेसे उन्हें भी ऐसा अनुभव हुए बिना नहीं रहेगा।

यहां तक मैंने व्यापक अर्थवाले ब्रह्मचर्यका विवेचन किया। ब्रह्मचर्यका लौकिक अथवा प्रचलित अर्थ तो इतना ही माना जाता है *विषयेन्द्रियका मन, वचन और कायाके द्वारा संयम।* यह अर्थ वास्तविक है। क्योंकि उसका पालन करना बहुत कठिन माना गया है। स्वादेन्द्रियके संयम पर उतना जोर नहीं दिया गया इस कारणसे विषयेन्द्रियका संयम मुश्किल बन गया है प्रायः असाध्य जैसा हो गया है। फिर, रोगसे अशक्त बने हुए शरीरमें हमेशा विषय-वासना अधिक मात्रामें रहती है ऐसा चिकित्सकोंका अनुभव है। इससे भी हमारी रोगग्रस्त प्रजाको ब्रह्मचर्य कठिन मालूम होता है।

ऊपर मैं क्षीण किन्तु नीरोग शरीरके विषयमें लिख चुका हूं। परन्तु उसका अर्थ यह न करना चाहिये कि शारीरिक बल न बढ़ाया जाय। मैंने सूक्ष्मतम ब्रह्मचर्यकी बात अपनी अति प्राकृत भाषामें लिखी है। इससे शायद गलतफहमी हो सकती है। जो सब इन्द्रियोंके पूर्ण संयमका पालन करना चाहता है उसे अन्तमें शारीरिक क्षीणताका स्वागत करना ही होगा। जब शरीरका मोह और ममत्व क्षीण हो जायेगा तब शारीरिक बलकी इच्छा रह ही नहीं सकती।

परन्तु विषयेन्द्रियको जीतनेवाले ब्रह्मचारीका शरीर अति तेजस्वी और बलवान होना ही चाहिये। यह ब्रह्मचर्य भी अलौकिक है। जिसकी विषयेन्द्रिय कभी स्वप्नावस्थामें भी विकारी न बने वह मनुष्य इस जगतमें वन्दनीय है। इसमें शंका नहीं कि उसके लिए दूसरा संयम स्वाभाविक हो जाता है।

इस ब्रह्मचर्यके सम्बन्धमें एक दूसरे भाई लिखते हैं

> मेरी स्थिति दयाजनक है। दफ्तरमें रास्तेमें रातमें पढ़ते समय काम करते समय और ईश्वरका नाम लेते समय भी मुझे विकारी विचार आते हैं। मनके इन विचारोंको किस तरह वशमें रखूं? स्त्रीमात्रके प्रति मातृभाव कैसे उत्पन्न हो सकता है? आंखोंसे शुद्ध वात्सल्यकी ही किरणें किस प्रकार निकल सकती हैं? दुष्ट विचार किस प्रकार निर्मूल हो सकते हैं? ब्रह्मचर्य-विषयक आपका लेख मैंने अपने पास रख छोड़ा है। परन्तु मेरे उपायरूपमें वह बिलकुल उपयोगी नहीं है।

यह स्थिति हृदयद्रावक है। बहुतोंकी ऐसी स्थिति होती है। परन्तु जब तक मन ऐसे विचारोंके साथ लड़ता रहता है, तब तक भय रखनेका कोई कारण नहीं है। आंख यदि बुरा काम करती हो तो उसे बन्द कर लेना चाहिये। कान यदि बुरी बात सुनते हों तो उनमें रुई भर लेनी चाहिये। आंखोंको हमेशा नीचा रखकर ही चलनेकी रीति अच्छी है। इससे उन्हें दूसरी बातें देखनेका अवसर ही नहीं मिलता। जहां गंदी बातें होती हों अथवा गंदा गाना गाया जाता हो वहांसे उठ जाना चाहिये। स्वादेन्द्रिय पर पूरी तरह नियंत्रण रखना चाहिये। मेरा अनुभव तो ऐसा है कि जिसने स्वादको नहीं जीता वह विषयको नहीं जीत सकता। स्वादको जीतना बहुत कठिन है। परन्तु इस विजयके साथ ही दूसरी विजय संभव बन जाती है। स्वादको जीतनेके लिए एक नियम तो यह है कि मसालोंका सर्वथा अथवा जितना हो सके उतना त्याग करना चाहिये। और दूसरा अधिक बलवान नियम यह है कि भोजन स्वादके लिए नहीं बल्कि केवल शरीर रक्षाके लिए ही हमें करना चाहिये — इस भावनाकी वृद्धि करें। हवा हम स्वादके लिए नहीं लेते बल्कि श्वासके

लिए लेते हैं। पानी हम प्यास बुझानेके लिए पीते हैं। इसी प्रकार भोजन केवल भूख बुझानेके लिए ही करना चाहिये। दुर्भाग्यवश हमारे मां-बाप बचपनसे ही इससे उल्टी आदतें हममें डालते हैं। हमारे पोषणके लिए नहीं बल्कि अपना लाड़-दुलार दिखानेके लिए वे हमें तरह तरहके स्वाद चिखा कर हमारी आदत बिगाड़ते हैं। हमें ऐसे वातावरणके खिलाफ लड़नेकी आवश्यकता है।

लेकिन विषयको जीतनेका स्वर्ण-नियम तो रामनाम अथवा दूसरा कोई ऐसा मंत्र है। द्वादश मंत्र भी यही काम देता है। अपनी अपनी भावनाके अनुसार हमें मंत्रका जप करना चाहिये। मुझे बचपनसे रामनाम सिखाया गया था। उसका सहारा मुझे बराबर मिलता रहता है। इस लिए मैंने रामनाम सुझाया है। जो मंत्र हम जपें उसमें हमें तल्लीन हो जाना चाहिये। मंत्र जपते समय यदि दूसरे विचार आवें तो कोई चिन्ता नहीं। फिर भी श्रद्धा रखकर मंत्रका जप यदि हम करते रहेंगे तो अन्तमें सफलता अवश्य प्राप्त करेंगे। मुझे इसमें रत्तीभर भी शक नहीं है। यह मंत्र मनुष्यकी जीवन डोर बनेगा और उसे सारे संकटोंसे बचावेगा। ऐसे पवित्र मंत्रोंका उपयोग किसीको आर्थिक लाभके लिए हरगिज नहीं करना चाहिये। इस मंत्रका चमत्कार हमारी नीतिको सुरक्षित रखनेमें है और यह अनुभव प्रत्येक साधकको थोड़े ही समयमें मिल जायेगा। हां, इतना याद रखना चाहिये कि कोई तोतेकी तरह इस मंत्रको न पढ़े। उसमें हमें अपनी सारी आत्मा लगा देनी चाहिये। तोते यंत्रकी तरह ऐसे मंत्र पढ़ते हैं, हमें अवांछनीय विचारोंका निवारण करनेकी भावना रखकर और मंत्रकी ऐसा करनेकी शक्तिमें विश्वास रखकर ऐसे मंत्र ज्ञानपूर्वक पढ़ना चाहिये।

हिन्दी नवजीवन २५-५-२४

७

सत्य बनाम ब्रह्मचर्य

एक मित्र श्री महादेव देसाईको लिखते हैं :

"आपको याद होगा कि कुछ महीने पहले नवजीवन में ब्रह्मचर्य विषय पर गांधीजीका एक लेख प्रकाशित हुआ था जिसका आपने ही यंग इंडिया में अनुवाद किया था। उस लेखमें गांधीजीने स्वीकार किया है कि उन्हें अब भी जब तब स्वप्नदोष हो जाया करता है। उसे पढ़ते ही मेरे दिलमें यह बात आई कि ऐसी स्वीकारोक्तियोंका असर अच्छा हो ही नहीं सकता। और बादमें मुझे मालूम हुआ कि मेरा यह भय निराधार नहीं था।

विद्यापीठकी हमारी यात्राके समय प्रलोभनोंके रहते भी मैंने और मेरे मित्रोंने अपने चरित्रको पूरी तरह शुद्ध रखा। हम मांस मद्य और स्त्रीसे तो बिलकुल दूर ही रहे। लेकिन गांधीजीका लेख पढ़नेके बाद एक मित्रने हिम्मत हार दी और मुझसे कहा इस गंभीरतम प्रयासके बाद भी जब गांधीजीकी यह स्थिति है तो हमारी क्या बिसात? ब्रह्मचर्य-पालनकी कोशिश करना बेकार है। गांधीजीकी स्वीकारोक्तिने मेरी दृष्टि बिलकुल ही बदल दी है। आजसे मुझे डूबा ही समझो। थोड़ी हिचकके साथ मैंने उन्हें समझानेकी कोशिश की। मैंने वही दलील उनके सामने रखी जो आप या गांधीजी देते अगर यह रास्ता गांधीजी जैसे पुरुषोंके लिए भी इतना कठिन है तो हम जैसोंके लिए तो कहीं ज्यादा कठिन होना चाहिये। इसलिए हमें दूनी कोशिश करनी चाहिये। परन्तु सारी दलील बेकार गई। जिस चरित्र पर कलंकका छींटा भी न पड़ा था वह कीचड़से सन गया। अगर कोई आदमी गांधीजीको उसके इस पतनके लिए जिम्मेदार ठहराये तो वे या आप उसे क्या जवाब देंगे?

"जब तक मेरे सामने ऐसा एक ही उदाहरण था तब तक मैंने आपको नहीं लिखा। संभव है आप यह कहकर मुझे टाल देते कि यह दृष्टान्त तो अपवाद-रूप है। लेकिन इधर मुझे इस तरहके और भी उदाहरण देखनेको मिले हैं और मेरी आशंका सर्वथा साधार सिद्ध हुई है।

मैं जानता हूं कि कुछ बातें ऐसी हैं जो गांधीजीके लिए तो बहुत आसान हैं परन्तु मेरे लिए बिलकुल असंभव हैं। लेकिन ईश्वरकी कृपासे मैं यह भी कह सकता हूं कि कुछ बातें जो गांधीजीके लिए भी असंभव हो मेरे लिए संभव हो सकती हैं। इस ज्ञान या गर्वने ही मुझे अब तक गिरनेसे बचाया है नहीं तो गांधीजीकी उपरोक्त स्वीकारोक्तिने मेरी सुरक्षितताकी भावनाको जरूर हिला दिया है।

क्या आप कृपा करके गांधीजीका ध्यान इस तथ्यकी ओर खींचेंगे खासकर आज जब वे अपनी आत्मकथा लिखनेमें लगे हुए हैं? सत्य और नग्न सत्यको कहना बेशक बहादुरीकी बात है परन्तु दुनिया और नवजीवन तथा यंग इंडिया के पाठक इससे गांधीजीके बारेमें गलत राय कायम करेंगे। मुझे डर है कि एक मनुष्यके लिए जो वस्तु अमृत है वह दूसरेके लिए विष न हो जाय।

इस शिकायतसे मुझे आश्चर्य नहीं हुआ। असहयोग आन्दोलन जब पूरे जोर पर था और स्वतंत्रता-संग्रामके बीच जब मैंने अपनी समझकी एक भूल हो जानेकी बात स्वीकार की तब एक मित्रने निर्दोष भावसे मुझे लिखा था अगर यह भूल थी तो भी आपको उसे स्वीकार नहीं करना चाहिए था। लोगोंको यह माननेके लिए उत्साहित करना चाहिए कि दुनियामें कमसे कम एक आदमी तो ऐसा है जो भूल—भ्रमसे परे है। लोग आपको ऐसा ही मानते थे। पर आपके अपनी भूल स्वीकार करनेसे वे हिम्मत हार जायेंगे। यह आलोचना पढ़कर मुझे हंसी भी आई और दुःख भी हुआ। पत्र लिखनेवालेके भोलेपन पर मुझे हंसी आई। लेकिन लोगोंको एक पतनशील प्राणीके भूल और भ्रमसे परे होनेका

विश्वास दिलाया जाय यह विचार ही मेरे लिए असह्य था। जो आदमी जैसा है उसे वैसा जाननेमें सदा सब लोगोंका हित ही है। इससे कभी कोई हानि नहीं होगी। मेरा यह दृढ़ विश्वास है कि मेरे तुरन्त अपनी भूलें स्वीकार कर लेनेसे लोगोंका हर तरहसे हित ही हुआ है। कमसे कम मेरे लिए तो वह आशीर्वाद-रूप ही सिद्ध हुआ है।

यही बात मैं अपने दूषित स्वप्नोंकी स्वीकृतिके बारेमें भी कह सकता हूं। पूर्ण ब्रह्मचारी न होते हुए भी यदि मैं वैसा होनेका दावा करूं तो इससे दुनियाकी बड़ी हानि होगी। क्योंकि वह ब्रह्मचर्यकी उज्ज्वलताको मलिन बनायेगा और सत्यके तेजको धूमिल कर देगा। झूठे दावे करके ब्रह्मचर्यका मूल्य घटानेका साहस मैं कैसे कर सकता हूं? आज मैं यह देख सकता हूं कि ब्रह्मचर्य-पालनके लिए जो उपाय मैं बताता हूं वे संपूर्ण नहीं होते वे सबके लिए सफल सिद्ध नहीं होते क्योंकि मैं पूर्ण ब्रह्मचारी नहीं हूं। मैं दुनियाको ब्रह्मचर्यका रामबाण उपाय न दिखा सकूं और फिर भी वह मुझे पूर्ण ब्रह्मचारी माने तो यह बात उसके लिए बड़ी भयानक होगी।

मैं सच्चा साधक हूं मैं पूरा जाग्रत रहता हूं मेरा प्रयत्न अथक और अडिग है — इतना ही जान लेना दुनियाके लिए काफी क्यों न होना चाहिये? इतना ही जानना औरोंको उत्साहित करनेके लिए पर्याप्त क्यों न होना चाहिये? झूठी प्रतिज्ञाओंसे सिद्धान्त स्थिर करना गलत है। सिद्धियोंके आधार पर सिद्धान्त निर्धारित करना ही बुद्धिमानी होगी। यह तर्क क्यों किया जाय कि जब मुझ जैसा आदमी भी मलिन विचारोंसे न बच सका तब औरोंके लिए क्या आशा हो सकती है? उसके बजाय यह क्यों न सोचा जाय कि अगर गांधी जो एक दिन काम-वासनाका गुलाम था आज अपनी पत्नीका मित्र और भाई बनकर रह सकता है और सुन्दरसे सुन्दर युवतीको भी अपनी बहन या बेटीके रूपमें देख सकता है, तो छोटेसे छोटा और पापके गड्ढेमें गिरा हुआ आदमी भी ऊपर उठनेकी आशा रख सकता है? ईश्वर अगर ऐसे कामी पुरुष पर दया कर सकता है तो निश्चय ही दूसरे सब लोग भी उसकी दयाके अधिकारी होंगे।

पत्र लिखनेवाले भाईके या मित्र मेरे दावोंको मानकर पीछे हट गये हैं वे जीवनमें कभी आगे बढ़ ही नहीं थे। यह उनकी भूरी साधना थी जो हवाके पहले ही झोंकेमें उड़ गई। सत्य ब्रह्मचर्य-पालन तथा दूसरे सनातन सिद्धान्त मुझ जैसे अपूर्ण मनुष्योंकी साधना पर आश्रित नहीं होते। वे तो उन अनुभवयुक्त पुरुषोंकी तपश्चर्याके अटल आधार पर खड़े होते हैं जिन्होंने उनकी साधनाका अथक प्रयत्न किया और जो अपने जीवनमें उनका सम्पूर्ण पालन कर रहे हैं। जब मुझमें उन पूर्ण पुरुषोंकी श्रेणीमें खड़े होनेकी योग्यता आ जायगी तब मेरी भाषामें आजसे कहीं अधिक निश्चय और बल होगा। जिसके विचार इधर उधर भटकते नहीं रहते जिसका मन बुरी बातें नहीं सोचता जिसकी नींद सपनोंसे रहित होती है और जो सोते हुए भी पूरी तरह जाग्रत रह सकता है वही मनुष्य सच्चे अर्थमें स्वस्थ और नीरोग है। उसे कुनैन खानेकी जरूरत नहीं होती। उसके शुद्ध रक्तमें हर तरहके छूतके रोगोंसे लड़नेका बल होता है। मैं तन मन और आत्माकी ऐसी पूर्ण स्वस्थ दशाकी प्राप्तिका प्रयत्न कर रहा हूं। इसमें हार अथवा असफलता जैसी कोई चीज है ही नहीं। पत्रलेखक तथा उनके अन्य ब्रह्मचारी मित्रों और दूसरे लोगोंको मेरा निमंत्रण है कि वे इस प्रयत्नमें मेरा साथ दें और मेरी यह कामना है कि पत्रलेखककी ही तरह उनके कदम भी आगे बढ़नेमें मुझसे ज्यादा तेज हों। जो लोग मुझसे पीछे हैं वे मेरे उदाहरणसे आत्म-विश्वासी बनें। मुझे जो कुछ भी सफलता मिली है वह मेरी कमियों और सब तरह वासनाके अधीन होनेकी दुर्बलताके बावजूद मिली है और मिली है केवल मेरे अथक प्रयत्न और भगवानकी दयामें मेरी असीम श्रद्धाकी बदौलत।

अतएव किसीके लिए भी निराश होनेका कारण नहीं है। मेरे महात्मापनका कोई मूल्य नहीं है। इसका श्रेय तो मेरी बाह्य प्रवृत्तियों मेरे राजनीतिक कार्योंको है जो मेरे जीवनका सबसे छोटा अंग हैं और इसलिए वह अस्थायी है। जो वस्तु स्थायी मूल्यवाली है वह तो मेरा सत्य अहिंसा और ब्रह्मचर्यका आग्रह है। वही मेरे जीवनका सच्चा अंग है। मेरे जीवनका यह स्थायी अंश कितना ही छोटा क्यों न हो वह हेय मानने जैसी चीज नहीं है। वही मेरा सर्वस्व है। इस मार्गमें होनेवाली

निष्फलताएं और भ्रम-निवारण भी मेरे लिए तो मूल्यवान हैं, क्योंकि वे सफलताके शिखर पर पहुंचनेकी सीढ़ियां हैं।

हिन्दी नवजीवन १८-२-२९

८

ब्रह्मचर्यके विषयमें – १

आजकल ब्रह्मचर्य और उसकी सिद्धिके साधनोंके विषयमें मुझ पर पत्रोंकी वर्षा हो रही है। उनमें से एक पत्रमें पूछे गये कुछ प्रश्नोंका उत्तर यहां देता हूं।

प्रश्न—१ ब्रह्मचर्यका अर्थ क्या है?

ब्रह्मचर्यका अर्थ है आत्माको (ब्रह्मको) पहचाननेका मार्ग। ब्रह्मचर्यका अर्थ है सब इन्द्रियोंका निग्रह। ब्रह्मचर्यका अर्थ है मुख्यतः स्त्री अथवा पुरुष द्वारा मनसे, वचनसे और कायासे किया जानेवाला विषय भोगका त्याग।

प्रश्न—२ आपके आदर्श ब्रह्मचारीको क्या वीर्यका उपयोग करना पड़ता है?

यह प्रश्न उठता है। मेरे आदर्श ब्रह्मचारीको वीर्यका उपयोग करनेकी अर्थात् प्रजोत्पत्ति करनेकी जरूरत ही नहीं रहती। आदर्श ब्रह्मचारी तो प्रजाका दुःख देखकर उसका दुःख दूर करनेमें ही लीन हो जायगा। और प्रजाके दुःख-निवारणका कार्य छोड़कर प्रजोत्पत्तिकी झंझटमें पड़ना उसे जहरकी तरह कड़वा मालूम होगा। जिसने संसारके दुःखोंका सम्पूर्ण दर्शन कर लिया है, उसमें विकार पैदा ही नहीं होंगे। वह तो अपने वीर्यका संग्रह ही सदा करेगा। जिस पदार्थसे सन्तानकी उत्पत्ति हो सकती है उस पदार्थका जो पुरुष अपने शरीरमें संग्रह कर सकता है, वह ऐसा वीर्यवान और शक्तिमान बन जाता है कि सारा जगत उसे प्रणाम करता है। वह चक्रवर्ती सम्राटसे भी अधिक सत्ता भोगता है। जो पुरुष केवल विषय-भोगके क्षणिक सुखके लिए ही वीर्यका क्षय होने देता है, वह

शक्तिहीन बनता है उसके शरीरकी अपेक्षा उसका मन अधिक शक्तिहीन बनता है वह दयाका पात्र है। अपने मोहमें वह भले सुख माने वह अपनी अनीतिको नीति मानकर स्वयंको और समाजको भले धोखा दे परन्तु उसकी स्थिति उस ज्ञानहीन किसानकी तरह दयाजनक है, जो अपने पासके बीजोंको खेत बोनेके लिए पानीमें या पत्थरोंमें फेंक देता है।

प्रश्न — १ स्त्री-पुरुषके आकर्षण क्या अस्वाभाविक है?

विषय भोगके लिए होनेवाला आकर्षण इतना अधिक अस्वाभाविक है कि यदि प्रत्येक पुरुष प्रत्येक स्त्रीके प्रति और प्रत्येक स्त्री प्रत्येक पुरुषके प्रति आकर्षित हो तो आज ही इस जगतका नाश हो जाय। स्त्री पुरुषके बीच स्वाभाविक आकर्षण तो वही हो सकता है, जैसा भाई-बहन माता-पुत्र अथवा पिता-पुत्रीके बीच हो सकता है। ऐसी मर्यादासे ही जगत टिक सकता है। मैं सारे जगतकी स्त्रियोंको मां बहन या पुत्री समझकर अपना काम चला सकता हूं। मगर मैं सारी स्त्रियोंके प्रति विकारी बनूं तो क्या स्थिति हो? वे मेरी कैसी फजीहत कर दें? उनके किसी प्रयत्नके बिना मेरी क्या स्थिति हो? प्रजोत्पत्ति स्वाभाविक क्रिया तो जरूर है लेकिन उसकी मर्यादायें स्पष्ट हैं। इन मर्यादाओंका पालन नहीं होता इस कारणसे स्त्री जाति भयभीत रहती है और सन्तान नामर्द बनती है। इससे रोग बढ़ते हैं पाखंड फैलता है और जगत ईश्वर रहित जैसा बन जाता है। मनुष्य जब विषय-भोगमें लिपट जाता है तब वह अपना भान खो देता है। ऐसी बेभान और मूर्छित अवस्थामें रहनेवाला मनुष्य कुछ लिख उसे प्रकाशित करे और हम उससे मोहित होकर उसका अनुकरण करने लगें तो हमारी क्या दशा होगी? परन्तु आजके पाठक-समाजमें व्यवहार तो ऐसा ही बहुधा दिखाई देता है। पतंग जब दीपकके आसपास चक्कर काट रहा हो उस समयके अपने क्षणिक सुख और आनन्दका वर्णन वह लिखे और हम उसे ज्ञानी समझकर उसका वर्णन पढ़ें तथा उसका अनुकरण करें तो हमारी क्या हालत हो? मैं तो अपने अनुभव और अपने साथियोंके अनुभवके आधार पर यहां तक कहना चाहता हूं कि पति-पत्नीके बीच भी व्यभिचारपूर्ण आकर्षण स्वाभाविक नहीं है। विवाहका अर्थ यह है कि दोनों पति-पत्नी अपने प्रेमको निर्मल और शुद्ध बनायें

और ईश्वर-प्रेमका अनुभव करे। पति-पत्नीके बीच निर्विकार, शुद्ध प्रेमका होना असंभव नहीं है। मनुष्य पशु नहीं है। अनेक पशुजन्मोंके बाद वह मनुष्य बना है। वह सीधा खड़ा रहनेको पैदा हुआ है पशुओंकी तरह चार पाँव पर चलने या कीड़ेकी तरह रेंगनेको पैदा नहीं हुआ है। पशुता और पुरुषार्थमें उतना ही भेद है जितना जड़ और चेतनके बीच है।

प्रश्न—४ ब्रह्मचर्यकी सिद्धिके लिए परिवारका त्याग क्या आवश्यक है?

आवश्यक है और नहीं भी है। जो मनुष्य अपने विकारोंको वशमें रख सकता है उसे बाहरी त्यागकी कम आवश्यकता है। जो अपने विकारोंको रोकनेमें असमर्थ है वह जिस प्रकार आदमी आगसे दूर भागता है उसी प्रकार वहाँ भी अपने भीतर विकार पैदा होते देखे वहाँसे सौ कोस दूर भाग जाय।

प्रश्न—५ ब्रह्मचर्यके मार्ग पर चलनेवालेके लिए आप कुछ साधन बतायेंगे?

ब्रह्मचर्यके मार्ग पर चलनेका पहला कदम है उसकी आवश्यकताका भान होना। इसके लिए ब्रह्मचर्य-सम्बन्धी पुस्तकोंका पठन और मनन आवश्यक है।

दूसरा कदम है धीरे धीरे इन्द्रिय-निग्रह करना इन्द्रियों पर काबू पाना। ब्रह्मचारी स्वाद पर अंकुश रखे जो कुछ वह खाये पोषणके लिए ही खाये। आँखोंसे गन्दी वस्तु न देखे। आँखोंसे सदा शुद्ध वस्तु ही देखे। किसी गन्दी वस्तुके सामने आँखें बन्द कर ले। इसीलिए सभ्य स्त्री-पुरुष चलते-फिरते इधर उधर देखनेके बदले जमीन पर ही नजर रखें और धरतीकी सुन्दरताका ही दर्शन करें। वे कानसे कोई बीभत्स बात कभी न सुने नाकसे विकार उत्पन्न करनेवाली वस्तुएँ न सूँघे। स्वच्छ मिट्टीमें जो सुगन्ध है वह गुलाबके इत्रमें नहीं है। जिसे आदत नहीं होती वह तो इन बनावटी सुगन्धोंसे मसुका उठता है। अपने हाथ-पावका भी वे कभी बुरे काममें उपयोग न करें और समय-समय पर उपवास करें।

तीसरा कदम यह है कि ब्रह्मचारी अपना सारा समय सत्कार्यमें जगतकी सेवामें ही बिताये।

चौथा कदम यह है कि वह सत्संगका सेवन करे, अच्छी पुस्तकें पढ़े और आत्म-दर्शनके बिना विकार जड़मूलसे नष्ट नहीं हो सकते ऐसा समझ कर रामनामका सदा रटन करे और ईश्वर-प्रसादकी याचना करे।

इन सबमें एक भी बात ऐसी नहीं है, जिस पर सामान्यसे सामान्य स्त्री-पुरुष भी अमल न कर सकें। परन्तु इनकी यह सरलता ही एक बड़े पहाड़के समान मालूम होती है। ब्रह्मचर्यकी आवश्यकताके बारेमें पूरी श्रद्धा न होनेसे मनुष्य व्यर्थ प्रयत्न किया करता है। इसमें शंका नहीं कि जिसके मनमें ब्रह्मचर्यकी इच्छा पैदा हो गई है उसके लिए ब्रह्मचर्यका पालन साध्य हो जाता है। जगत ब्रह्मचर्यके कम या अधिक पालनसे ही निभता है, यह बताता है कि ब्रह्मचर्य आवश्यक है और उसका पालन करना संभव है।

नवजीवन ४-४-२६

९

ब्रह्मचर्यके विषयमें – २

ऐसा कहा जा सकता है कि मैंने बहुत समयसे 'हरिजनबंधु' में लिखना छोड़ दिया है। लिखनेकी इच्छा कम नहीं है, लेकिन समयके अभावने मुझे लिखनेमें असमर्थ बना डाला है। यह लेख लिखनेकी इच्छा तो बहुत समयसे थी। परन्तु आज ही कुछ लिख पा रहा हूँ।

एक साथीने मेरा एक पुराना लेख पढ़कर बताया था कि मुझे फिर ब्रह्मचर्यके बारेमें लिखना चाहिये। मैंने उनसे कहा था कि मैं कुछ लिखनेका प्रयत्न करूंगा।

ब्रह्मचर्यकी जो परिभाषा मैंने पहले की थी वही आज भी कायम है। अर्थात् जो मनुष्य मनसे भी विकारी बनता है उसके ब्रह्मचर्यका भंग हुआ है ऐसा कहा जायगा। जो मनुष्य अपने विचारोंमें निर्विकार नहीं है वह पूर्ण ब्रह्मचारी कभी नहीं माना जा सकता। मैं अपनी परिभाषा तक नहीं पहुँच पाया हूँ, इसलिए मैं अपनेको आदर्श ब्रह्मचारी नहीं मानता।

परन्तु अपने आदर्शसे दूर होते हुए भी मैं यह मानता हूं कि मैंने ब्रह्मचर्य-पालनका आरंभ किया था उस समय मैं जहां था वहांसे आज *आगे* बढ़ा हूं। विकारोंकी निर्विकारता तब तक नहीं आ सकती जब तक परम — परमात्माका दर्शन न हो जाय। जब विकारों पर पूर्ण अधिकार हो जाता है तब पुरुष स्त्रीको अपनेमें समा लेता है और स्त्री पुरुषको अपने भीतर समा लेती है। ऐसे ब्रह्मचारीके अस्तित्वमें मेरा विश्वास है परन्तु ऐसा ब्रह्मचारी मैंने देखा नहीं है। ऐसा आदर्श ब्रह्मचारी बननेका मेरा महाप्रयत्न चल रहा है। यह ब्रह्मचर्य सिद्ध न हो तब तक मनुष्य उस अहिंसा तक नहीं पहुंच सकता जिस अहिंसा तक पहुंचना उसके लिए संभव है।

ब्रह्मचर्यके लिए जो मर्यादा आवश्यक मानी जाती है, उसे मैंने सबके लिए आवश्यक नहीं माना है। जिस मनुष्यको बाहरी रक्षाकी आवश्यकता है वह पूर्ण ब्रह्मचारी नहीं है। इसके विपरीत जो ब्रह्मचर्यकी मर्यादाको तोड़नेका ढोंग करके प्रलोभनोंकी खोजमें रहता है, वह ब्रह्मचारी नहीं किन्तु मिथ्याचारी है।

इस प्रकारके निर्मल ब्रह्मचर्यका पालन कैसे हो सकता है? मेरे पास इसका कोई अचूक उपाय नहीं है। क्योंकि मैं पूर्ण अवस्था तक नहीं पहुंचा हूं। परन्तु मैंने स्वयं अपने लिए जिस वस्तुको आवश्यक माना है वह यह है।

विचारोंको इधर उधर भटकने न देनेके लिए उन्हें निरन्तर शुभ चिन्तनमें लगाये रखना चाहिये। रामनामका जप तो चौबीसों घंटे — सोते समय भी — श्वासकी तरह स्वाभाविक रूपमें चलता ही रहना चाहिये। शुभ कल्याणकारी साहित्य पढ़ना चाहिये। सदा अपने कार्यका विचार करना चाहिये। यह कार्य परोपकारका होना चाहिये। विवाहित स्त्री पुरुषको एक-दूसरेके साथ एकान्तमें नहीं रहना चाहिये। उन्हें एक कमरेमें एक पलंग पर नहीं सोना चाहिये। यदि एक-दूसरेको देखनेसे उनके मनमें विकार उत्पन्न होता हो तो दोनोंको अलग रहना चाहिये। यदि एक दूसरेके साथ बातें करनेसे विकार उत्पन्न हो तो दोनोंको बातें नहीं करनी चाहिये। स्त्रीमात्रको देखनेसे जिसके मनमें विकार उत्पन्न होता हो

उसे ब्रह्मचर्य-पालनका विचार त्याग कर अपनी पत्नीके साथ मर्यादामय जीवन बिताना चाहिये। जिसका विवाह नहीं हुआ है वह विवाहकी बात सोचे। किसीको अपनी शक्तिसे बाहर जानेका आग्रह नहीं रखना चाहिये। शक्तिसे बाहर जानेका प्रयत्न करनेसे गिरनेवाले अनेक पुरुषोंके उदाहरण मेरी आंखोंके सामने तैरते रहते हैं।

जो पुरुष कानोंसे बीभत्स बातें सुननेमें रस लेते हैं आंखोंसे स्त्रियोंको देखनेमें रस लेते हैं बीभत्स पुस्तकें पढ़ते हैं बीभत्स बातें करनेमें रस लेते हैं वे सब ब्रह्मचर्यका भंग करते हैं। बहुतेरे विद्यार्थी और शिक्षक ब्रह्मचर्यके पालनमें निराश होते हैं उसका कारण यह है कि वे श्रवण दर्शन वाचन भाषण आदिकी मर्यादा नहीं जानते और मुझसे पूछते हैं हम ब्रह्मचर्यका पालन कैसे करें? वे इस दिशामें प्रयत्न भी नहीं करते। जो पुरुष स्त्रीके किसी भी अंगका विकारी स्पर्श करता है मानना चाहिये कि वह ब्रह्मचर्यका भंग करता है। जो लोग ऊपर बताई हुई मर्यादाओंका पूरा पालन करते हैं उनके लिए ब्रह्मचर्यका पालन सुलभ हो जाता है।

आलसी मनुष्य कभी ब्रह्मचर्यका पालन नहीं कर सकता। वीर्य-संग्रह करनेवाले मनुष्यमें अमोघ शक्ति उत्पन्न होती है। उसे अपने शरीर तथा मनको निरन्तर काममें लगाये रखना चाहिये। इसलिए प्रत्येक साधकको ऐसा सेवाकार्य खोज लेना चाहिये जिससे विषय-सेवनका समय ही उसे न मिले।

साधकको अपने आहार पर पूर्ण नियमन रखना चाहिये। वह जो कुछ भी खाय औषधि मानकर खाये शरीर-रक्षाके लिए खाये स्वादके लिए कभी न खाये। इसलिए मादक पदार्थ मसाले वगैरा चीजें वह खा ही नहीं सकता। ब्रह्मचारीको मिताहारी नहीं किन्तु अल्पाहारी होना चाहिये। सब कोई अपनी अपनी मर्यादा इस विषयमें बांध लें।

उपवास व्रत आदिका ब्रह्मचर्यके पालनमें अवश्य स्थान है। परन्तु उन्हें आवश्यकतासे अधिक महत्त्व देकर जो मनुष्य उपवास करके ही अपनेको कृतार्थ मान लेते हैं वे बहुत बड़ी गलती करते हैं। निराहारी मनुष्यके विषय उपवास-कालमें भले क्षीण हो जायं परन्तु उसका रस नहीं

करता। उपवास शरीरको नीरोग रखनेमें बहुत मदद करता है। अल्पाहारी भी कभी कामके आवेशमें गलती कर सकता है, इसलिए समय समय पर वह उपवास करे तो उसे लाभ ही होगा।

क्षणिक रस क्षणिक आनन्दके लिए मैं क्यों तेजहीन बनूं? जिस वीर्यमें सन्तान उत्पन्न करनेकी शक्ति है उसका पतन होने देकर — ईश्वरके दिये हुए वरदानका दुरुपयोग करके मैं ईश्वरका अपराधी चोर क्यों बनूं? जिस वीर्यका संग्रह करके मैं वीर्यवान — शक्तिवान — बन सकता हूं उसका पतन करके मैं वीर्यहीन क्यों बनूं? — इस भावनाका मनन साधक नित्य करे और प्रतिदिन ईश्वर-कृपाकी याचना करे, तो संभव है कि इसी जन्ममें वह अपने वीर्य पर अंकुश प्राप्त कर ले और ब्रह्मचारी बन जाय। मैं यही आशा रखकर जी रहा हूं।

हरिजनबन्धु, २२-१-३९

१०

एकान्तकी बात

ब्रह्मचर्य-पालनके विषयमें तरह तरहके प्रश्न करनेवाले और मेरी सलाह मांगनेवाले इतने पत्र मेरे पास आते हैं और इस विषयमें मेरे विचार इतने दृढ़ हैं कि अपने अनुभवके फल पाठकोंके सामने न रखना उचित नहीं होगा, खासकर राष्ट्रके जीवनकी इस अति नाजुक घड़ीमें।

ब्रह्मचर्य शब्द संस्कृत भाषाका शब्द है जिसका अर्थ उसके अंग्रेजी पर्याय सेलिबेसी (अविवाह-व्रत) से कहीं अधिक व्यापक है। ब्रह्मचर्यका अर्थ है सारी इन्द्रियों पर पूर्ण अधिकार। पूर्ण ब्रह्मचारीके लिए इस संसारमें कुछ भी असाध्य नहीं है। परन्तु यह आदर्श स्थिति है जिस तक विरले ही मनुष्य पहुंच पाते हैं। यह तो युक्लिडकी रेखाके समान है जिसका अस्तित्व केवल कल्पनामें ही होता है जो प्रत्यक्ष रूपमें कभी खींची ही नहीं जा सकती। फिर भी रेखागणितकी यह एक महत्त्वपूर्ण परिभाषा है जिससे बड़े बड़े परिणाम निकलते हैं। इसी तरह हो सकता है

कि पूर्ण ब्रह्मचारी भी केवल कल्पना-जगतमें ही मिल सकता हो। फिर भी अगर हम इस आदर्शको सदा अपने मानस-चक्षुके सामने न रखें तो हमारी दशा बिना पतवारकी नाव जैसी हो जाय। ज्यों ज्यों हम प्रयत्न करके इस काल्पनिक स्थितिके पास पहुंचेंगे त्यों त्यों अधिकाधिक पूर्णता प्राप्त करते जायेंगे।

परन्तु तत्काल तो मैं इस विशाल अर्थको छोड़कर केवल वीर्य रक्षाके संकुचित अर्थमें ही ब्रह्मचर्यका विचार करना चाहता हूं। मैं मानता हूं कि आध्यात्मिक पूर्णताकी प्राप्तिके लिए मन वाणी और कर्म सबमें पूर्ण संयमका पालन आवश्यक है। और जिस राष्ट्रमें ऐसे स्त्री-पुरुष न हों उसकी अधोगति निश्चित है। लेकिन अभी तो मेरा प्रयोजन इतना ही है कि हमारा राष्ट्र इस समय विकासकी जिस मंजिलसे गुजर रहा है, उसमें ब्रह्मचर्यको एक अल्पकालिक आवश्यकताके रूपमें ही जनताके मन पर बैठा दूं।

आज रोग अकाल और गरीबीका हमारे देशमें बोलबाला है। हमारे लाखों आदमियोंको तो रोज भूखे पेट ही रहना पड़ता है। विदेशी शासकों द्वारा गुलामीकी चक्कीमें हम ऐसी चतुराईके साथ पीसे जा रहे हैं कि बहुतोंको तो पिसनेका पता तक नहीं चलता। यद्यपि आर्थिक मानसिक और नैतिक शोषणका तिहरा अभिशाप हमें खा रहा है फिर भी हम यही मानते हैं कि हम आजादीकी राहमें बराबर आगे बढ़ते जा रहे हैं। दिन प्रति दिन बढ़नेवाला फौजी खर्च लंकाशायरके कारखानों और दूसरे ब्रिटिश व्यवसायोंके लाभकी दृष्टिसे निर्धारित कर-नीति और राज्यके विविध विभागोंके संचालनमें बरती जानेवाली फिजूलखर्ची — ये सब भारतकी गरीबीको बढ़ाते हैं और रोगोंसे लड़नेकी उसकी शक्तिको घटाते जाते हैं। श्री गोखलेके शब्दोंमें शासनकी इस पद्धतिने राष्ट्रकी प्रगतिको इतना मार दिया है कि हमारे बड़ेसे बड़े आदमी भी कमर सीधी रखकर खड़े नहीं हो सकते। अमृतसरमें तो हिन्दुस्तानियोंको पेटके बल रेंगना भी पड़ा! पंजाबका जान-बूझकर किया हुआ यह अपमान और हिन्दुस्तानके मुसलमानोंको दिये हुए वचनको उद्दंडताके साथ तोड़नेकी माफी मांगनेसे इनकार हमारी प्रजाकी नैतिक पतितताकी ताजी मिसालें हैं। ये घटनाएं सीधे

हमारी आत्मा पर आघात कर रही है। इन दोनों उपायोंको हमने यदि ग्रहण किया तो राष्ट्रको नपुंसक बना देनेकी क्रिया पूर्ण हो जायगी।

क्या हम लोगोंके लिए जो इस स्थितिको जानते और समझते हैं इस परिस्थितिके वायुमण्डलमें सन्तान उत्पन्न करना उचित है? जब तक हम दीन असहाय रोगी और क्षुधा-पीड़ित हैं तब तक हम सन्तान पैदा करके केवल गुलामों और निर्बलोंकी ही संख्या बढ़ायेंगे। भारत जब तक स्वाधीन नहीं हो जाता ऐसा राष्ट्र नहीं बन जाता जो साधारण समयमें ही नहीं परन्तु अकालके समय भी अपना पेट भर सकनेमें समर्थ हो और मलेरिया हैजा इन्फ्लुएंजा और दूसरी अनेक बीमारियोंसे अपना बचाव करना नहीं जान लेता तब तक हमें सन्तान पैदा करनेका कोई अधिकार नहीं है। इस देशमें किसीके भी बच्चा पैदा होनेकी बात सुनकर मेरे हृदयमें जो दुःख होता है उसे मैं पाठकोंसे छिपा नहीं सकता। एन्द्रिय संयमके द्वारा सन्तानोत्पादन रोकनेकी सम्भावना पर मैंने बरसों विचार किया है और मैं इस निर्णय पर आया हूँ कि ऐसी सलाह देशकी जनताको देना खतरनाक होगा। आज यही हमारा धर्म है। हिन्दुस्तान आज अपनी *मौजूदा जनसंख्याका बोझ उठानेकी शक्ति नहीं रखता — इसलिए नहीं कि* उसकी जनसंख्या बहुत ज्यादा बढ़ गई है बल्कि इसलिए कि उसकी गरदन ऐसे विदेशी राज्यके जुएके नीचे दबी हुई है, जिसने उसके जीवन-रसको अधिकसे अधिक चूसते जाना ही अपना धर्म मान रखा है।

सन्तानोत्पादन किस तरह रोका जा सकता है? यह काम हमें यूरोपमें *उपयोग किये जानेवाले नीतिनाशक कृत्रिम उपायोंसे नहीं बल्कि नियमबद्ध* जीवन और मन तथा इन्द्रियोंको संयममें रखनेके अभ्याससे करना चाहिये। माता-पिताका यह कर्तव्य है कि वे अपने बच्चोंको ब्रह्मचर्य-पालनकी शिक्षा दें। हिन्दू शास्त्रोंके अनुसार लड़केका विवाह कमसे कम २५ वर्षकी उम्रमें होना चाहिये। हमारे देशकी माताओंको यदि हम यह विश्वास करा सकें कि बालक-बालिकाओंको विवाहित जीवनके लिए तैयार करना महापाप है तो इस देशमें होनेवाले आधे विवाह अपने-आप बन्द हो जायेंगे। हमें इस अंधविश्वासको भी दिलसे बिलकुल निकाल देना चाहिये कि इस देशकी गरम जलवायुके कारण हमारी लड़कियां जल्दी ऋतुमती हो जाती हैं।

इससे बड़ा अंधविश्वास मैंने दूसरा नहीं देखा। मैं यह कहनेका साहस करता हूँ कि जल्दी अथवा देरसे युवावस्था आनेका जलवायुके साथ कुछ भी सम्बन्ध नहीं होता। जो चीज हमारे बालक-बालिकाओंको समयसे पहले जवान बना देती है, वह है हमारे कौटुम्बिक जीवनके आसपास रहने वाला मानसिक और नैतिक वातावरण। माताएं और घरकी दूसरी स्त्रियां अबोध बच्चोंको यह सिखा देना अपना धार्मिक कर्तव्य समझती हैं कि इतने बरसके होने पर तुम दूल्हा बनोगे या तुम्हें ससुराल जाना होगा। वे निरे बच्चे होते हैं या माकी गोदमें रहते हैं तभी उनकी सगाई कर दी जाती है। उन्हें जो खाना खिलाया जाता है और कपड़े पहनाये जाते हैं वे भी वासनाओंको जगानेमें सहायक होते हैं। हम अपने बच्चोंको गुड़ियोंकी तरह सजाते हैं उनके सुखके लिए नहीं बल्कि अपने सुखके लिए और अपने मिथ्याभिमानके लिए। मैं बीसों लड़कोंका पालन-पोषण कर चुका हूं। उन्हें जो भी कपड़े दिये गये वे ही उन्होंने बिना किसी कठिनाईके पहन लिये और उन्हींसे खुश रहे। हम उन्हें हर तरहकी मसालोंवाली गरम और उत्तेजना पैदा करनेवाली चीजें खिलाते रहते हैं। हमारा अंधा प्रेम यह नहीं देखता कि वे क्या पचा सकते हैं और कितना पचा सकते हैं। इन सबका परिणाम निश्चय ही यह होता है कि हम समयसे पहले जवान हो जाते हैं समयसे पहले मां-बाप बन जाते हैं और समयसे पहले ही मर जाते हैं। मां-बाप अपने व्यवहारसे जो प्रत्यक्ष उदाहरण बच्चोंके सामने रखते हैं, उसे वे आसानीसे सीख लेते हैं। अपनी वासनाओंकी लगाम ढीली छोड़कर मां-बाप अपने बच्चोंके सामने संयमरहित विषय-भोगका नमूना पेश करते हैं। असमय होनेवाले हर नये बच्चेके जन्म पर बाजे-गाजेके साथ खुशियां मनायी जाती हैं और दावतें दी जाती हैं। आश्चर्यकी बात तो यह है कि ऐसे वातावरणमें रहकर भी हम आजसे अधिक असंयमी नहीं बन पाये हैं।

मुझे इस बातमें लेशमात्र भी शंका नहीं कि हमारे देशके विवाहित स्त्री-पुरुष अगर देशका भला चाहते हैं और यह चाहते हैं कि हिन्दुस्तान सबल सुन्दर और सुगठित शरीरवाले स्त्री-पुरुषोंका राष्ट्र बने तो उन्हें पूर्ण संयमका पालन करना चाहिये और फिलहाल तो सन्तान उत्पन्न करना रोक ही देना चाहिये। मैं नव-विवाहित पति-पत्नियोंको भी यही सलाह देना

हूं। कोई काम करके छोड़ देनेके बनिस्बत उसे बिलकुल न करना ज्यादा आसान होता है — वैसे ही जैसे कि सिगरेट या बीड़ी शराब पीनेवालेके लिए उसका त्याग करना कठिन होता है और जिसने कभी उसे मुंहसे भी न लगाया हो उसके लिए उससे दूर रहना आसान होता है। गिर कर उठनेके बनिस्बत सीधा खड़ा रहना हजार दरजे आसान होता है। यह कहना गलत है कि संयमके उपदेशके अधिकारी केवल वे ही लोग हैं जिनकी वासनाएं परितृप्त हो चुकी हैं। जैसे ही जिसका तन-मन शिथिल हो गया है उसको भोगके त्यागका उपदेश देना कोई अर्थ नहीं रखता। मेरा कहना तो यह है कि हम जवान हों या बड़े भोगसे तृप्त हो चुके हों या न हो चुके हों तत्काल तो हमारा यह कर्तव्य है कि अपनी इस गुलामीके उत्तराधिकारी उत्पन्न करना हम बन्द कर दें।

देशके माता-पिताओंको मैं यह भी बता देना चाहता हूं कि वे जीवन-साथियोंके अधिकारकी दलीलके भुलावेमें न पड़ें। अनुमति भोगके लिए आवश्यक होती है संयमके लिए कभी नहीं। यह बिलकुल खुला सत्य है।

हम आज एक शक्तिशाली विदेशी सरकारके साथ जीवन-मरणके संग्राममें जूझ रहे हैं। उसमें हमें अपना सारा शारीरिक भौतिक नैतिक और आध्यात्मिक बल लगाना होगा। यह बल हमें तब तक नहीं मिल सकता जब तक हम उस वस्तुको बहुत किफायतसे खर्च न करें, जो हमारे लिए सबसे अधिक मूल्यवान होनी चाहिये। हमारे व्यक्तिगत जीवनमें यह पवित्रता न आई तो हमारा राष्ट्र सदा गुलामोंका राष्ट्र बना रहेगा। हम यह सोचकर अपने-आपको धोखा न दें कि चूंकि अंग्रेजोंकी शासन-पद्धतिको हम पापमय मानते हैं इसलिए वैयक्तिक सद्गुण और सदाचारमें भी हमें उनको अपनेसे हीन तिरस्करणीय समझना चाहिये। चरित्रके मूलभूत सद्गुणोंको वे आध्यात्मिक साधनाका नाम देकर उनका ढिंढोरा नहीं पीटते लेकिन कमसे कम शरीरसे तो वे उनका पूरा पूरा पालन करते हैं। इस देशके राजनीतिक कार्योंमें लगे हुए अंग्रेजोंमें जितने ब्रह्मचारी और ब्रह्मचारिणियां हैं उतने हमारे समाजमें नहीं हैं। ब्रह्मचर्य-व्रत लेनेवाली स्त्रियां तो हममें एक तरहसे हैं ही नहीं। थोड़ीसी जोगिनें और वैरागिनें अवश्य हैं परन्तु देशके राजनीतिक जीवन पर उनका कोई असर नहीं है।

यूरोपमें हजारों स्त्रियां एक साधारण सदाचारकी भांति ब्रह्मचर्यका जीवन बिताती हैं।

अब मैं पाठकोंके लिए यहां कुछ सादे नियम बता दूं। ये नियम मेरे अकेलेके ही अनुभवके आधार पर नहीं परन्तु मेरे अनेक साथियोंके अनुभवके आधार पर बनाये हुए हैं।

१. लड़कों और लड़कियोंका सादी और कुदरती पद्धतिसे इस मान्यताके आधार पर लालन-पालन किया जाय कि वे जीवनभर पवित्र और निर्मल रहनेवाले हैं और रह सकते हैं।

२. सबको मसालोंका, मिर्चका और गरम पदार्थोंका त्याग करना चाहिये। चरबीवाली और पचनमें भारी खुराक, भारी मिष्टान्न, मिठाई और तले हुए पदार्थ खाना छोड़ देना चाहिये।

३. पति-पत्नीको अलग अलग कमरोंमें सोना चाहिये और एकान्तको टालना चाहिये।

४. शरीर और मन दोनोंको सतत अच्छे कार्योंमें लगाये रखना चाहिये।

५. रातमें जल्दी सोने और सबेरे जल्दी उठनेके नियमका सख्तीसे पालन करना चाहिये।

६. किसी भी प्रकारका बीभत्स और अश्लील साहित्य नहीं पढ़ना चाहिये। मलिन विचारोंकी दवा पवित्र और निर्मल विचार ही है।

७. नाटक, सिनेमा या मनोविकारोंको उत्तेजित करनेवाले ऐसे दूसरे तमाशे नहीं देखने चाहिये।

८. स्वप्नदोष हो जाय तो घबराना नहीं चाहिये। ऐसे समय तन्दुरुस्त आदमीको ठंडे पानीमें नहा लेना चाहिये। यह उत्तम इलाज है। यह मान्यता गलत है कि स्वप्नदोषका इलाज करनेके लिए कभी कभी स्त्रीसंग किया जा सकता है।

सबसे महत्त्वकी बात यह है कि किसी भी व्यक्तिको — पति पत्नीको भी — ऐसा नहीं मानना चाहिये कि संयमका पालन अत्यन्त कठिन है। इससे विपरीत सब कोई संयमको जीवनकी सामान्य और स्वाभाविक स्थिति मानकर चलें।

१ प्रतिदिन सबेरे उठकर पवित्रता और निर्मलताके लिए एकाग्र मनसे प्रभुकी प्रार्थना करनी चाहिये। इससे हम प्रतिदिन अधिकाधिक पवित्र और निर्मल बनेंगे।

हिन्दी नवजीवन २४-१०-२

११

सुधार या बिगाड़?

एक पत्रलेखक जिन्हें मैं अच्छी तरह पहचानता हूं इस प्रकार लिखते हैं

> बार बार मनमें यही सवाल उठा करता है कि क्या प्रचलित नीति — नैतिकता — प्राकृतिक नीति है? आपने नीतिधर्मकी पुस्तक लिखकर प्रचलित नीतिका समर्थन किया है। क्या आजकी प्रचलित नीति प्राकृतिक है? मेरा तो यह विचार है कि वह प्राकृतिक नहीं है। क्योंकि वर्तमान नीतिके कारण ही मनुष्य विषय भोगमें पशुसे भी अधम बन गया है। आजकी नीतिकी मर्यादाके कारण विवाह-सम्बन्ध शायद ही कहीं संतोषकारक होता होगा। असंतोषकारक नहीं होता यह कहूं तो भी कोई अत्युक्ति नहीं होगी। जब विवाहका नियम नहीं था उस समय प्रकृतिके नियमोंके अनुसार स्त्री-पुरुषोंका समागम होता था और वह समागम सुखमय होता था। आज नीतिके बन्धनोंके कारण वह समागम एक प्रकारकी पीड़ा हो गया है। इस पीड़ामें सारा जगत फंसा हुआ है और फंसता जा रहा है।
>
> अब नीति किसे कहें? एककी नीति दूसरेकी अनीति होती है। कोई एक ही पत्नीके विवाहको स्वीकार करता है, तो दूसरा अनेक पत्नियां करनेकी स्वतंत्रता देता है। कोई काका-मामाकी सन्तानके साथ होनेवाले विवाह-सम्बन्धको त्याज्य मानते हैं तो कोई उसके लिए स्वतंत्रता देते हैं। ऐसी स्थितिमें किसकी नीतिको ठीक

समझना चाहिये? मैं तो यह कहता हूं कि विवाह एक प्रकारकी सामाजिक व्यवस्था है, उसका धर्मके साथ कोई सम्बन्ध नहीं है। पुरातन जमानेके महापुरुषोंने देश और कालके अनुसार नीतिकी रचना की थी।

अब इस नीतिके कारण जगतकी कितनी हानि हुई है इसकी जांच करें

१ इस नीतिके कारण प्रमेह (सुजाक) उपदंश (गरमी) आदि रोग उत्पन्न हुए। पशुओंमें ये रोग नहीं होते क्योंकि उनमें प्राकृतिक समागम होता है।

२ इसने बालहत्यायें करवाईं। यह स्मरण कर मेरा हृदय कांप उठता है। केवल इस नीतिके कारण ही तो एक कोमल हृदय वाली माता क्रूर बनकर अपने शिशुको गर्भमें या उसके गर्भसे बाहर आने पर मार डालती है।

३ इसकी वजहसे बाल-विवाह, वृद्ध पुरुषोंके साथ छोटी उमरकी लड़कियोंका विवाह इत्यादि पसन्द न करने लायक समागम होते हैं। इन समागमोंके कारण ही आज समाज और उसमें भी विशेषतः भारतवर्ष दुर्बल बना हुआ है।

४ धन, स्त्री और जमीन—इन तीन प्रकारके झगड़ोंमें स्त्रीके लिए होनेवाले झगड़ोंको प्रथम स्थान प्राप्त है। ये झगड़े भी वर्तमान नीतिके कारण ही होते हैं।

उपरोक्त चार कारणोंके सिवा दूसरे कारण भी होंगे। यदि मेरी दलील ठीक है तो क्या प्रचलित नीतिमें कोई सुधार नहीं किया जाना चाहिये?

ब्रह्मचर्यको आप मानते हैं यह ठीक ही है। परन्तु ब्रह्मचर्य स्वेच्छया होना चाहिए, जबरदस्ती नहीं। और हिन्दू लोग तो लाखों विधवाओंसे जबरदस्ती ब्रह्मचर्यका पालन कराते हैं। इन विधवाओंकी भयानक दुर्दशा तो आप जानते ही हैं। आप यह भी जानते हैं कि इसी कारणसे बालहत्यायें होती हैं। ऐसी स्थितिमें आप पुनर्विवाहके लिए यदि एक बड़ा आन्दोलन करें, तो बड़ा अच्छा

नहीं होगा ? उसकी आवश्यकता भी आज कुछ कम नहीं है। आप इस प्रश्न पर जितना चाहिये उतना ध्यान क्यों नहीं दे रहे हैं ?

मेरा यह खयाल है कि लेखकने ऊपर जो प्रश्न पूछे हैं वे इस विषय पर मुझसे कुछ लिखवानेके लिए ही पूछे हैं। क्योंकि ऊपरके पत्रमें जिस पक्षका समर्थन किया गया है, उसका लेखक स्वयं समर्थन करते हैं ऐसा मैं जानता नहीं। परन्तु मैं यह जानता हूं कि उन्होंने जैसे प्रश्न पूछे हैं वैसे प्रश्न आजकल भारतवर्षमें भी उठ रहे हैं। उनकी उत्पत्ति पश्चिममें हुई है और विवाहको पुरानी जंगली और अनीतिकी वृद्धि करनेवाली प्रथा माननेवाले लोगोंकी संख्या पश्चिममें कुछ कम नहीं है। शायद यह संख्या बढ़ती भी जा रही होगी। विवाहको जंगली साबित करनेके लिए पश्चिममें जो दलीलें की जाती हैं उन सब दलीलोंको मैंने पढ़ा नहीं है। परन्तु ऊपर लेखकने जैसी दलीलें की हैं वैसी ही यदि वे दलीलें हों तो मेरे जैसे पुराणपंथीको (अथवा यदि मेरा दावा स्वीकार किया जाये तो सनातनीको) उनका खंडन करनेमें कोई मुश्किल या परेशानी नहीं होगी।

मनुष्यकी तुलना पशुके साथ करनेमें ही भूलका आरंभ होती है। मनुष्यके लिए जो नीति और आदर्श रखे गये हैं वे अनेक बातोंमें पशु नीतिसे भिन्न हैं और उत्तम हैं। और यही मनुष्यकी विशेषता है। अर्थात् प्रकृतिके नियमोंका जो अर्थ पशुयोनिके लिए किया जा सकता है, वह मनुष्य-योनिके लिए हमेशा नहीं किया जा सकता। ईश्वरने मनुष्यको विवेक-शक्ति दी है। पशु केवल पराधीन है, इसलिए पशुके जीवनमें स्वतंत्रता अर्थात् पसन्द जैसी कोई चीज नहीं है। मनुष्यकी अपनी पसन्द होती है। वह सार-असारका विचार कर सकता है और स्वतंत्र होनेके कारण वह पाप-पुण्यको भी समझ सकता है। और जहां उसकी अपनी पसंद रहती है वहां उसे पसंदसे भी अधम बननेका अवकाश जरूर रहता है। उसी प्रकार यदि वह अपने दिव्य स्वभावके अनुकूल चले तो वह आगे भी बढ़ सकता है। असभ्यसे असभ्य गिनी जानेवाली कौमोंमें भी कोई बहुत सगोत्र विवाहका अंकुश होता ही है। यदि यह कहा जाय कि यह अंकुश स्वयमें ही जंगलीपन है — क्योंकि पशु किसी अंकुशके वश

होने ही नहीं तो उसका परिणाम यह होगा कि स्वच्छन्दता ही मनुष्यका नियम बन जायगा। परन्तु यदि सब मनुष्य चौबीस घण्टेके लिए भी स्वेच्छाचारी बनकर रहें तो सारे जगतका नाश हो जायेगा। न तो कोई किसीकी बात मानेगा न सुनेगा। स्त्री और पुरुषके बीच मर्यादाका होना असभ्य समझा जायेगा। और मनुष्यके विकार तो पशुकी अपेक्षा कहीं अधिक होते ही हैं। इन विकारोंकी लगाम ढीली कर दी कि उनके वेगसे उत्पन्न होनेवाली अग्नि ज्वालामुखीकी तरह भभक उठेगी और संसारको पलभरमें भस्म कर देगी। थोड़ासा विचार करने पर यह मालूम होगा कि मनुष्यने इस संसारमें दूसरे समस्त प्राणियों पर जो अधिकार प्राप्त किया है वह केवल अपने संयम त्याग आत्म-बलिदान और कुरबानीके कारण ही प्राप्त किया है।

उपदंश प्रमेह इत्यादिका उपद्रव विवाहके कारण नहीं परन्तु विवाहके नियमोंका भंग करनेसे और पशु न होने पर भी पशुका अनुकरण करनेसे मनुष्यके दोषी बन जानेसे ही होता है। विवाहके नियमोंका पालन करनेवाला एक तक भी व्यक्तिको मैं नहीं जानता जिसे इन भयंकर रोगोंका शिकार होना पड़ा हो। जहां जहां ये रोग हुए हैं वहां वहां मुख्यतः विवाह-नीतिका भंग करनेसे ही ये हुए हैं अथवा उस नीतिका भंग करनेवालोंके संसर्गसे ही हुए हैं। यह बात चिकित्साशास्त्रसे सिद्ध होती है। बाल-विवाह और बालवृद्धोंका निर्दय रिवाज इस विवाह-नीतिके कारण नहीं पड़ा है परन्तु विवाह-नीतिके भंगके कारण ही उस रिवाजकी उत्पत्ति हुई है। विवाह-नीति तो यह कहती है कि जब पुरुष अथवा स्त्री योग्य वयके हो जायं उनमें प्रजोत्पत्तिकी इच्छा हो और उनका स्वास्थ्य अच्छा हो तभी वे अमुक मर्यादाका पालन करते हुए अपने लिए योग्य पत्नी या पति ढूंढ़ें अथवा उनके माता पिता इसका प्रबंध कर दें। जो शादी हुआ जाय उसमें भी आरोग्य इत्यादिका पूर्णतया होना आवश्यक है। इस विवाह-नीतिका पालन करनेवाले मनुष्य समाजमें कहीं भी सुखी ही दिखाई देंगे। जो बात बाल-विवाहके विषयमें ठीक है वही वैधव्यके सम्बन्धमें भी ठीक है। विवाह-नीतिके भंगसे ही दुःखद वैधव्य उत्पन्न होता है। जहां विवाह शुद्ध होता है वहां वैधव्य अथवा विधुरता

स्वभावतः सुवास्य और शोभास्य होती है। जहां ज्ञानपूर्वक विवाह-संबंध जोड़ा जाता है वहां वह संबंध केवल दैहिक नहीं होता बल्कि आत्मिक हो जाता है और देहके छूट जाने पर भी आत्माका संबंध कभी भुलाया नहीं जा सकता। जहां इस संबंधका ज्ञान होता है वहां पुनर्विवाह असंभव है, अनुचित है और अधर्म है। जिस विवाहमें उपरोक्त नियमोंका पालन नहीं होता उस विवाहके संबंधको विवाहका नाम नहीं दिया जाना चाहिये। और जहां विवाह नहीं होता वहां वैधव्य अथवा विधुरता जैसी कोई चीज ही नहीं होती। यदि हम ऐसे आदर्श विवाह बड़ी संख्यामें होते न देखते हों तो उससे विवाहकी प्रथाका नाश करनेका कोई कारण नहीं दिखाई देता। हां उस प्रथाको उत्तम आदर्शके अनुकूल बनानेका प्रयत्न करनेके लिए वह एक सबल कारण अवश्य होना चाहिये।

सत्यके नामसे असत्यका प्रचार करनेवालोंकी बड़ी संख्याको देखकर यदि कोई सत्यका ही लोप निकाले और उसकी अपूर्णता सिद्ध करनेका प्रयत्न करे, तो हम उस मनुष्यको अज्ञानी कहेंगे। उसी प्रकार विवाह-नीतिके भंगके दृष्टान्तोंसे विवाह-नीतिकी मिथ्या करनेका प्रयत्न भी अज्ञान और अविचारकी ही निशानी है।

पत्रलेखक कहते हैं कि विवाहमें धर्म या नीति कुछ भी नहीं है वह तो एक रूढ़ि अथवा रिवाज है और वह भी धर्म तथा नीतिके विरुद्ध है और इसलिए उठा देनेके योग्य है। मेरी अल्पमतिके अनुसार तो विवाह धर्मकी मर्यादा है और उसे यदि उठा दिया जायेगा तो संसारमें धर्म जैसी कोई चीज ही न रहेगी। धर्मका आधार ही संयम अथवा मर्यादा है। जो मनुष्य संयमका और मर्यादाका पालन नहीं करता वह धर्मको क्या समझेगा? पशुकी अपेक्षा मनुष्यमें बहुत ही अधिक विकार होते हैं। दोनोंमें जो विकार भरे हुए हैं उनकी तुलना ही नहीं की जा सकती। जो मनुष्य विकारोंको अपने वशमें नहीं रख सकता वह मनुष्य ईश्वरको पहचान ही नहीं सकता। इस सिद्धान्तका समर्थन करनेकी कोई आवश्यकता ही नहीं है। क्योंकि मैं इस बातको स्वीकार करता हूं कि जो लोग ईश्वरके अस्तित्वको अथवा आत्मा और देहकी भिन्नताको

स्वीकार नहीं करते उनके लिए विवाह-बन्धनकी आवश्यकताको सिद्ध करना बड़ा ही मुश्किल काम है। परन्तु जो आत्माके अस्तित्वको स्वीकार करता है और उसका विकास करना चाहता है, उसे यह समझानेकी कोई आवश्यकता नहीं होगी कि देहका दमन किये बिना आत्माकी पहचान अथवा उसका विकास असम्भव है। देह या तो स्वच्छन्दताका घर होगी अथवा आत्माकी पहचान करनेका तीर्थक्षेत्र होगी। यदि यह आत्माकी पहचान करनेका तीर्थक्षेत्र है तब तो स्वेच्छाचारके लिए उसमें कोई स्थान ही नहीं है। देहको प्रतिक्षण अपने वशमें लानेका प्रयत्न आत्माको करना ही चाहिये।

जमीन, स्त्री और धन ये तीनों वहीं झगड़ेके कारण होते हैं जहां संयम-धर्मका पालन नहीं होता। विवाहकी प्रथाको जितने अंशोंमें मनुष्य आदरकी दृष्टिसे देखते हैं उतने ही अंशोंमें स्त्री झगड़ेका कारण होनेसे बच जाती है। यदि पशुकी तरह प्रत्येक स्त्री और पुरुष भी जहां चाहें वहां मनचाहा व्यवहार रख सकते होते तो मनुष्योंमें भयंकर झगड़ा होता और वे एक-दूसरेका नाश ही करते। इसलिए मेरा तो यह दृढ़ अभिप्राय है कि जिस दुराचार और जिन दोषोंका पत्र-लेखकने उल्लेख किया है उनकी दवा विवाह-धर्मका छेदन नहीं परन्तु विवाह-धर्मका सूक्ष्म निरीक्षण और पालन है।

किसी जगह सगे-सम्बन्धियोंमें विवाह-सम्बन्ध जोड़नेकी स्वतंत्रता होती है और किसी जगह यह स्वतंत्रता नहीं होती। बेशक इस प्रकार नीतिकी भिन्नता तो है। किसी जगह एकपत्नी-व्रतका पालन करना धर्म माना जाता है और किसी जगह एक ही समयमें अनेक पत्नी करनेमें कोई प्रतिबन्ध नहीं होता। यह बात वाञ्छनीय है कि नीतिकी ऐसी भिन्नता न हो। परन्तु यह भिन्नता हमारी अपूर्णताकी सूचक है नीतिकी अनावश्यकताकी सूचक कभी नहीं। ज्यों ज्यों हम अधिक अनुभव प्राप्त करते जायंगे त्यों त्यों सब कौमोंकी और सभी धर्मोंके लोगोंकी नीतिमें एकता आती जायगी। नीतिकी सत्ताको स्वीकार करनेवाला जगत तो आज भी एकपत्नी व्रतको आदरकी दृष्टिसे देखता है। किसी भी धर्ममें अनेक पत्नियां करना अनिवार्य नहीं है। सिर्फ अनेक पत्नियां करनेकी इजाजत ही दी

गई है। देश और समयको देखकर अमुक काम करनेकी इजाजत दी जाय तो उससे आदर्श गलत सिद्ध नहीं होता और न उससे आदर्शकी मिथ्या ही सिद्ध होती है।

विधवा-विवाहके सम्बन्धमें मैं अपने विचार अनेक बार बता चुका हूं। बाल-विधवाके पुनर्विवाहको मैं उचित और वांछनीय मानता हूं। इतना ही नहीं मैं यह भी मानता हूं कि उनका विवाह कर देना उनके माता-पिताका कर्तव्य है।

हिन्दी नवजीवन २९-४-२९

१२

प्राणशक्तिका संचय

कुछ नाजुक समस्याओं पर प्रकट रूपमें विचार करनेके लिए पाठकगण मुझे क्षमा करें। केवल कानमें ही इन पर चर्चा करनेसे मुझे खुशी होती। लेकिन जिस साहित्यका मुझे अध्ययन करना पड़ा है और मों ब्यूरोकी पुस्तककी आलोचना पर मेरे पास जो अनेक पत्र आये हैं उनके कारण समाजके लिए इस परम महत्त्वपूर्ण प्रश्न पर प्रकट रूपसे चर्चा करना आवश्यक हो गया है। एक मलाबारी भाई लिखते हैं

> आप मों ब्यूरोकी पुस्तककी समालोचनामें लिखते हैं कि ऐसा एक भी उदाहरण नहीं मिलता है, जिससे यह सिद्ध हो कि ब्रह्मचर्यके पालनसे अथवा दीर्घकालके संयमसे किसीको कुछ हानि पहुंची हो। और मुझ अपने लिए तो तीन सप्ताहसे अधिक समय तक संयम रखना हानिकारक ही मालूम होता है। इतने समयके बाद प्रायः मेरे शरीरमें भारीपन मालूम होता है, चित्त और शरीरमें बेचैनीका अनुभव होने लगता है, जिससे मेरा स्वभाव भी चिड़चिड़ा-सा हो जाता है। आराम तभी मिलता है जब संभोग द्वारा या प्रकृतिकी कृपासे स्वप्नमें वीर्यपात हो जाता है।

दूसरे दिन सुबह शरीर और मनकी कमजोरीका अनुभव करनेके बदले मैं शान्त और हलका हो जाता हूं और अपने काममें अधिक उत्साहसे लग सकता हूं।

मेरे एक मित्रके लिए तो संयम हानिकारक ही सिद्ध हुआ है। उनकी उमर कोई ३२ सालकी होगी। वे बड़े ही कट्टर शाका हारी और धर्मनिष्ठ पुरुष हैं। शरीर और मनसे वे प्रत्येक बुरी आदतसे मुक्त हैं। किन्तु फिर भी दो साल पहले तक उन्हें स्वप्न दशामें बहुत ज्यादा वीर्यपात हो जाया करता था जिसके फलस्वरूप उनमें बड़ी कमजोरी और उत्साहहीनता आ जाती थी। पेडूके दर्दकी भी बीमारी उन्हें उसी समय हो गई थी। एक आयुर्वेदिक वैद्यकी सलाहसे उन्होंने विवाह कर लिया और अब वे बिलकुल चंगे हैं।

ब्रह्मचर्यकी श्रेष्ठताका जिस पर हमारे सभी प्राचीन शास्त्र एकमत हैं मैं बुद्धिसे तो कायल हूं किन्तु जिन अनुभवोंका ऊपर मैंने वर्णन किया है उनसे स्पष्ट हो जाता है कि शुक्रग्रंथिसे जो वीर्य निकलता है उसे शरीरमें पचा लेनेकी शक्ति हममें नहीं है। इसलिए वह जहर बन जाता है। अतएव मैं आपसे सविनय अनुरोध करता हूं कि मेरे जैसे लोगोंके लाभके लिए, जिन्हें ब्रह्मचर्य और आत्म-संयमके महत्त्वके विषयमें कुछ संदेह नहीं है, यंग इंडिया में हठयोगके आसनों जैसी कोई क्रिया बतलाइये जिसके सहारे हम अपने शरीरमें इस प्राणशक्तिको पचा सकें।

इन भाइयोंके अनुभव असाधारण नहीं हैं बल्कि बहुतोंके ऐसे ही अनुभवोंके नमूने मात्र हैं। ऐसे उदाहरण मैं जानता हूं जिनमें अपूर्ण तथ्योंके आधार पर साधारण नियम निकालनेकी जल्दबाजी की गई है। वीर्य जैसी प्राणशक्तिको शरीरमें सुरक्षित रखने और पचा लेनेकी योग्यता दीर्घकालके अभ्याससे आती है। ऐसा होना भी चाहिये क्योंकि दूसरी किसी भी प्रक्रियासे शरीर और मनको इतनी शक्ति नहीं प्राप्त होती। माना कि दवाओं और यांत्रिक साधन शरीरको साधारणतया अच्छी दशामें रख सकते हैं किन्तु उनसे चित्त इतना निर्बल हो जाता है कि वह उन असंख्य

मनोविकारोंका विरोध नहीं कर सकता जो मालक पशुओंकि समान हर मनुष्यको घेरे रहते हैं।

अनेक बार हम जैसे कर्म करते हैं उनके स्वाभाविक परिणामोंसे विपरीत परिणामोंकी आशा रखते हैं। हमारी साधारण जीवन-पद्धति विकारोंको संतोष देनेके लिए ही बनाई जाती है हमारा भोजन हमारा साहित्य हमारा मनोरंजन हमारा कामका समय — ये सब पाशविक विकारोंको ही उत्तेजना देने और सन्तुष्ट करनेके लिए निश्चित किये जाते हैं। हममें से अधिकांशकी इच्छा विवाह करके सन्तान पैदा करनेकी और साधारणतया थोड़े संयत रूपमें सुख भोगनेकी ही होती है। और जीवनका यह क्रम अनन्त काल तक इस रूपमें चलता ही रहेगा।

किन्तु इस साधारण नियमके अपवाद जैसे हमेशासे रहते आये हैं वैसे आज भी हैं। ऐसे भी मनुष्य हुए हैं जिन्होंने मानव-जातिकी सेवामें या यों कहिये कि भगवानकी ही सेवामें अपना सारा जीवन लगा देना चाहा है। वे विशाल मानव-परिवारकी सेवा और अपने विशिष्ट परिवारके पालन-पोषणमें अपना समय अलग अलग बांटना नहीं चाहते। ऐसे स्त्री पुरुष वह सामान्य जीवन नहीं बिता सकते जिसका हेतु विशिष्ट वैयक्तिक हित साधना हो। जो भगवानकी सेवाके लिए ब्रह्मचर्यका व्रत लेंगे उन स्त्री-पुरुषोंको जीवनकी सुख-सुविधायें छोड़ देनी पड़ेंगी और कठोर संयम तथा तपस्याके जीवनमें ही सुखका अनुभव करना होगा। वे भले ही इस दुनियामें रहें, परन्तु वे इस दुनियाके नहीं हो सकते। उनका भोजन उनका धंधा उनका काम करनेका समय उनका मनोरंजन उनका साहित्य उनके जीवनका उद्देश्य आदि सर्व-साधारण लोगोंसे अवश्य ही भिन्न होंगे।

अब हमें इस प्रश्न पर विचार करना चाहिये कि क्या पत्रलेखक और उनके मित्रने सम्पूर्ण ब्रह्मचर्य-पालनको अपना ध्येय बनाया था और क्या उन्होंने अपने जीवनको उसी ढांचेमें ढाला था? यदि उन्होंने ऐसा नहीं किया था तो फिर यह समझनेमें जरा भी कठिनाई नहीं होना चाहिये कि पत्रलेखकको वीर्यपातसे आराम क्यों मिलता था और मित्रको संयम-पालनसे निर्बलता क्यों मालूम होती थी। पत्रलेखकके मित्रके लिए

तो बेशक विवाह ही एकमात्र उपाय था। जब मनुष्य अपनी इच्छाके विरुद्ध भी प्रतिदिन विचारोंमें विवाहित जीवन ही बिताता हो तब तो उसके लिए विवाह ही सबसे स्वाभाविक और वांछनीय स्थिति हो सकती है। न दबाये हुए किन्तु कार्यरूपमें अपरिणत विचारकी शक्ति उस विचारसे कहीं बड़ी होती है जिसे मूर्तरूप अर्थात् कार्यका रूप दिया जाता है। जब क्रिया पर हम यथोचित संयम प्राप्त कर लेते हैं तो उसका प्रभाव विचार पर भी पड़ता है और विचारका संयम भी होता है। इस प्रकार जिस विचारको कार्यरूपमें परिणत कर दिया जाता है वह कैदी-सा बन जाता है और हमारे वशमें आ जाता है। इस दृष्टिसे विवाह भी एक प्रकारका संयम ही मालूम होता है।

मेरे लिए एक अखबारी लेखमें उन लोगोंके लाभके लिए, जो नियमित संयमपूर्ण जीवन बिताना चाहते हैं ब्यौरेवार सलाह देना ठीक न होगा। उन्हें तो मैं कई वर्ष पहले इसी उद्देश्यसे लिखी हुई अपनी पुस्तक 'आरोग्य विषयक सामान्य ज्ञान' पढ़नेकी सलाह दूंगा। नये अनुभवोंके अनुसार *उसमें कहीं कहीं सुधार करनेकी जरूरत है किन्तु उसमें एक भी* बात ऐसी नहीं है जिसे मैं लौटा लेना चाहूं। फिर भी साधारण नियम यहां फिरसे दोहराये जा सकते हैं

१ खानेमें हमेशा संयमसे काम लें। थोड़ी मीठी भूख रहते ही थालीसे हमेशा उठ जायें।

२ अतिशय मसालोंवाले तथा घी-तेलवाले शाकाहारसे अवश्य बचना चाहिये। जब पूरा दूध मिलता हो तो घी तेल आदि चिकने पदार्थ अलगसे खाना बिलकुल अनावश्यक है। जब प्राणशक्तिका अल्प नाश ही होता हो तो अल्प भोजन भी काफी होता है।

३ हमेशा मन और शरीरको शुद्ध काममें ही लगाये रहें।

४ रातमें जल्दी सो जाना और सवेरे जल्दी उठ बैठना परमावश्यक है।

५ सबसे महत्त्वपूर्ण बात तो यह है कि संयत जीवन बितानेमें ही ईश्वर प्राप्तिकी उत्कट जीवित अभिलाषा मिली रहती है। जब इस

केन्द्रीय वस्तुका प्रत्यक्ष अनुभव हो जाता है तब ईश्वरके ऊपर हमारा यह भरोसा बराबर बढ़ता ही जाता है कि वह स्वयं ही अपने इस यंत्रको (मनुष्यके शरीरको) विशुद्ध और व्यवस्थित रखेगा। गीतामें कहा गया है

> विषया विनिवर्तन्ते निराहारस्य देहिन ।
> रसवर्जं रसोऽप्यस्य परं दृष्ट्वा निवर्तते ।।

(निराहारी मनुष्यके विषय तो शान्त हो जाते हैं परन्तु विषयोंका रस बना रहता है। जब वह प्रभुके दर्शन करता है तब उसका रस भी नष्ट हो जाता है।)

यह अक्षरशः सत्य है।

पत्रलेखक आसन और प्राणायामकी बात करते हैं। मेरा विश्वास है कि आत्म-संयममें उनका महत्त्वपूर्ण स्थान है। परन्तु मुझे खेद है कि इस विषयमें मेरे निजी अनुभव ऐसे नहीं हैं जो लिखने लायक हों। जहाँ तक मुझे मालूम है इस विषय पर इस जमानेके अनुभवोंके आधार पर लिखा हुआ कोई साहित्य है ही नहीं। लेकिन यह विषय अध्ययन करने योग्य है। मैं अपने अनभिज्ञ पाठकोंको इसके प्रयोग करने या जो भी हठयोगी मिल जाय उसीको गुरु मान लेनेसे सावधान कर देना चाहता हूं। उन्हें निश्चित रूपसे यह जान लेना चाहिये कि संयत और धार्मिक जीवनमें ही अभीष्ट संयमके पालनकी काफी शक्ति होती है।

हिन्दी नवजीवन २–९–२६

१३

मनोवृत्तियोंका प्रभाव

सन्तति-नियमन पर आपने 'यंग इंडिया' में जो लेख लिखे हैं उनको मैं बड़ी दिलचस्पीसे पढ़ता रहा हूँ। मुझे आशा है कि आपने जे० ए० हैडफील्डकी 'साइकोलॉजी एण्ड मॉरल्स' नामक पुस्तक पढ़ी होगी। मैं आपका ध्यान इस पुस्तकके निम्नलिखित उद्धरणकी ओर दिलाना चाहता हूँ:

विषय-भोग स्वेच्छाचार उस हालतमें कहलाता है जब कि वह प्रवृत्ति नीतिकी विरोधी मानी जाती हो और विषय-भोगको निर्दोष आनन्द तब माना जाता है जब इस प्रवृत्तिको प्रेमका चिह्न माना जाय। विषय-वासनाकी इस प्रकारकी अभिव्यक्ति दाम्पत्य प्रेमको वस्तुतः गहरा बनाती है, न कि उसे नष्ट करती है। लेकिन एक ओर मनमाना सम्भोग करनेसे और दूसरी ओर सम्भोगके विचारको तुच्छ सुख माननेके भ्रममें पड़कर इन्द्रिय-निग्रह करनेसे अक्सर अशान्ति पैदा होती है और प्रेम शिथिल पड़ जाता है।

इसका अर्थ यह हुआ कि लेखककी रायमें सन्तानोत्पत्तिके सिवा भी विषय-भोग पति-पत्नीके बीच प्रेम बढ़ानेका पवित्र गुण रखता है। अगर लेखककी यह बात सच है तो मुझे आश्चर्य है कि आप अपने इस सिद्धान्तका समर्थन किस प्रकार कर सकते हैं कि सन्तान पैदा करनेकी इच्छासे किया हुआ सम्भोग ही उचित है, और दूसरा अनुचित। मेरा तो विचार यह है कि लेखककी उपरोक्त बात सच है क्योंकि वह लेखक एक प्रसिद्ध मानसशास्त्री है और मैंने स्वयं ऐसे उदाहरण देखे हैं जिनमें प्रेमको शारीरिक व्यवहारके द्वारा व्यक्त करनेकी स्वाभाविक इच्छाको दबाया। उनकी कोशिश करनेसे पति-पत्नीका विवाहित जीवन नीरस और नष्ट हो गया है।

मसलन एक उदाहरण लीजिये। एक पुरुष और एक स्त्री एक-दूसरेके साथ प्रेम करते हैं और उनका ऐसा करना सुन्दर

तथा ईश्वरकी योजनाका एक अंग है। परन्तु उनके पास अपने बच्चोंका पालन-पोषण करने और उन्हें शिक्षा देनेके लिए काफी पैसा नहीं है। मैं समझता हूं कि आप इससे सहमत होंगे कि पालन पोषण करने और शिक्षा देनेकी शक्ति न रखते हुए भी सन्तान पैदा करना पाप है या यह समझ लीजिये कि सन्तान पैदा करना स्त्रीकी तन्दुरुस्तीके लिए हानिकारक होगा या यह कि उसके बहुतसे बच्चे हैं इसलिए उस अधिककी जरूरत नहीं है। अब आपके कथनानुसार तो इस दम्पतिके सामने दो ही रास्ते हैं (१) वे विवाह *करके अलग अलग रहें।* लेकिन अगर ऐसा होगा तो हक्सीलकी उपरोक्त दलीलके अनुसार दबाई हुई इच्छाओंके कारण उत्पन्न असान्तिसे उनका प्रेम विकृत हो जायगा। (२) अथवा वे दोनों अविवाहित रहें। लेकिन इस स्थितिमें भी उनका प्रेम नष्ट हो जायगा। इसका कारण यह है कि प्रकृति मनुष्य-कृत योजनाओंकी अवहेलना किया करती है। यह हो सकता है कि वे एक-दूसरेसे *बिलकुल अलग हो जायें लेकिन इस अलहदगीमें भी उनके मनमें* विकार तो उठते ही रहेंगे और उनमें कुंठायें उत्पन्न किया करेंगे। *और, अगर सामाजिक अवस्थाको इस तरह बदल दें कि सब लोगोंके* लिए जितने चाहें उतने बच्चे पैदा करना संभव हो जाय तो भी समाजके लिए अतिशय सन्तानोत्पत्तिका और हरएक स्त्रीके लिए सीमासे अधिक सन्तान उत्पन्न करनेका खतरा तो बना ही रहता है। इसका कारण यह है कि पुरुष अपनेको बहुत ज्यादा संयममें रखे तो भी सालमें एक बच्चा तो वह पैदा कर ही लेगा। इसलिए आपको या तो ब्रह्मचर्यका समर्थन करना चाहिये या सन्तति-नियमनका। क्योंकि समय-समय पर किये गये संयोगका नतीजा यह *हो सकता है जैसा कि कभी कभी अंग्रेज पादरियोंमें हुआ करता* है कि पति कहता जायगा क्या करें, ईश्वरकी इच्छा बालक देनेकी है! और पत्नी बेचारी मृत्युके समीप पहुंचती जायगी।

जिसे आप आत्म-संयम कहते हैं उसमें भी प्रकृतिके काममें उतना ही हस्तक्षेप है — बल्कि वास्तवमें अधिक है — जितना कि

क्रिया वस्तुतः जैसी है उसी रूपमें हम इसे क्यों न देखें? इसमें आखिर क्या विषमता है? जब स्त्री-पुरुष अपनेको काबूमें नहीं रख सकते तब वे प्रजोत्पत्तिके लिए आपसमें मिलते हैं। जिन मनुष्योंको ईश्वरसे थोड़ा संयम बल मिला है वे ही जनताके कल्याणके लिए, पशु जिस प्रयोजनके लिए उत्पन्न हुए हैं उससे अधिक उच्च प्रयोजन सिद्ध करनेके लिए, कामेच्छाको संयत करनेके अपने अधिकारका उपयोग करेंगे। विषय-तृप्तिसे प्रेम दृढ़ नहीं होता प्रेमको टिकाये रखनेके लिए अथवा समृद्ध बनानेके लिए विषय-तृप्ति जरूरी नहीं है। यह बात अनेक उदाहरणोंसे हम देखते हैं। फिर भी आदतके जोरसे हम प्रजोत्पत्तिके हेतुके बिना होनेवाली विषय-तृप्तिको प्रेमके पोषणके लिए आवश्यक और वांछनीय मानते हैं। ऐसे अनेक उदाहरण दिये जा सकते हैं जिनमें इन्द्रिय-निग्रहके फलस्वरूप प्रेमका बन्धन दृढ़ हुआ है। अवश्य यह इन्द्रिय-निग्रह स्वतंत्र इच्छासे तथा पति-पत्नीकी आत्मोन्नतिके उद्देश्यसे किया जाना चाहिये।

मानव-समाजका निरन्तर विकास होता रहता है, अर्थात् उसकी आत्मोन्नति होती ही रहती है। और अगर यह विकास और उन्नति सदा ही होने देना हो तो हमको इन्द्रियोंका अधिकाधिक संयम हमें करते रहना चाहिये। इस दृष्टिसे विवाह पवित्र संस्कार कहा जायगा और वह इसी अर्थमें कि विवाहित दम्पती इस संस्कारसे संयमी जीवन बितानेकी और जब दोनोंको प्रजोत्पत्तिकी इच्छा हो और दोनों उसके लिए तैयार हों तो ही विषय-सेवन करनेकी प्रतिज्ञा लेते हैं। विवाहके इस संस्कारको हम अच्छी तरह समझ लें तो पत्रलेखकने जो दो उदाहरण दिये हैं उनमें प्रजोत्पत्तिकी इच्छाके बिना भोगका अवकाश ही नहीं रह जाता।

पत्रलेखक इस बातको स्वीकार करके ही चलते हैं कि प्रजोत्पत्तिके बिना स्वतंत्र रूपसे भी विषय-भोग करना आवश्यक है। इस तरह सोचा जाय तो अधिक तर्कके लिए कोई गुंजाइश ही नहीं रहती। परन्तु यह स्वीकार कर ली गई बात ही गलत है। क्योंकि समस्त मानव-जातिमें ऐसे अनेक उदाहरण मौजूद हैं जिनमें श्रेष्ठ स्त्री-पुरुषोंने सम्पूर्ण ब्रह्मचर्यका अपने जीवनमें पालन किया है। जन-समूहके लिए संयम पालना कठिन है यह वचन संयमकी आवश्यकता अथवा वांछनीयताके विरुद्ध कोई तर्क नहीं

है। हम देखते हैं कि सौ वर्ष पूर्व आम जनता जो काम नहीं कर सकती थी वह काम आज वह कर सकती है। और असीम प्रगति करनेके लिए हमारे पास जो अनन्त काल है, उसमें से सौ वर्ष केवल बिन्दुमात्र है। यदि वैज्ञानिकोंकी बात सत्य हो तो हमारे मानव-शरीर पानेको भी बहुत समय नहीं हुआ है। इस शरीरकी मर्यादा भला कौन जानता है? कौन निर्धारित कर सकता है? सच पूछा जाय तो प्रतिदिन हमें मानव-शरीरकी भला या बुरा काम करनेकी अपार शक्तिका पता लगता जा रहा है।

यदि इन्द्रिय-निग्रहकी संभावना और वांछनीयताको हम स्वीकार करें तो उसे प्राप्त करनेके साधनोंकी हमें खोज करनी चाहिए और उनका उपयोग करना चाहिये। और, जैसा कि मैंने एक पिछले लेखमें लिखा है, यदि हमें संयम और नियमनमें रहना हो तो अपनी जीवनकी पद्धतिको हमें बदल डालना होगा। केक खाना भी है और हाथमें भी रखना है — ये दो बातें एकसाथ नहीं चल सकतीं। यदि हमें विषयेन्द्रिय पर संयम रखना हो तो उसके लिए सारी इन्द्रियों पर संयम रखना आवश्यक है। आंख, कान, नाक, जीभ, हाथ-पांवको हम पूरी स्वतंत्रता दे दें तो मुख्य इन्द्रिय — विषयेन्द्रिय — को वशमें रखना असंभव होगा। अशान्ति, मृगी और पागलपनके भी अनेक उदाहरणोंमें हम ऐसा मानते हैं कि संयम पालनके फलस्वरूप ये रोग होते हैं; परन्तु जांच करनेसे पता चलेगा कि ये रोग अन्य इन्द्रियोंके असंयमका ही परिणाम हैं। एक भी पापकी कुदरतके एक भी नियमके भंगकी सजा मिले बिना नहीं रहती।

मुझे शब्दोंके बारेमें झगड़ा नहीं करना है। यदि आत्म-संयमसे भी गर्भको रोकनेवाले कृत्रिम साधनों जितना ही कुदरतके कार्यमें हस्तक्षेप होता हो तो भले ही ऐसा हो। फिर भी मैं तो यही कहूंगा कि आत्म-संयमसे सम्बन्धित हस्तक्षेप उचित है और वांछनीय है, क्योंकि इससे व्यक्ति तथा समाज दोनोंका कल्याण होता है। और कृत्रिम साधनोंके हस्तक्षेपसे व्यक्ति और समाज दोनोंकी हानि होती है, इसलिए वह अनुचित और अवांछनीय है। प्रजाकी मर्यादा रखनेका एकमात्र सीधा, अचूक और सरल मार्ग आत्म-संयम ही है। गर्भको रोकनेवाले कृत्रिम साधनोंसे प्रजोत्पत्तिको रोकना मानव जातिकी आत्महत्या कही जायगी।

यदि खान-मालिक अन्याय करते हुए भी जीतें तो इसका कारण यह नहीं है कि खानोंके मजदूर अपरिमित बच्चे पैदा करते हैं बल्कि यह है कि मजदूर हर तरहसे संयमी जीवन बितानेका सबक नहीं सीखे हैं। यदि मजदूरोंके बच्चे ही न होते तो उनके पास अपनी स्थिति सुधारनेके लिए एक भी प्रेरक बल न रहता और मजदूरी बढ़ानेकी उनकी मांग ही उड़ जाती। क्या उनके लिए शराब पीना जुआ खेलना या तम्बाकू पीना आवश्यक है? अगर यह कहा जाय कि मालिक भी यही सब करते हैं तो भी उनकी जीत होती है तो क्या यह प्रश्नका सही उत्तर होगा? यदि मजदूर मालिकोंसे ज्यादा अच्छे होनेका दावा न करते हों तो दुनियाकी सहानुभूति मांगनेका उन्हें क्या अधिकार है? क्या पूंजीपतियोंकी संख्या बढ़ाने और पूंजीवादको मजबूत बनानेके लिए वे ऐसा करते हैं? जब लोकतन्त्र जोर पकड़ेगा तब दुनिया ज्यादा अच्छी होगी इस वचनके आधार पर ही हम लोकतन्त्रकी पूजा करते हैं। हम पूंजीपतियों तथा पूंजीवादके सिर जो दोष थोपते हैं वे ही दोष बड़े पैमाने पर हम स्वयं न करें तो अच्छा हो।

मुझे दुःखके साथ इस बातका ज्ञान है कि आत्म-संयम आसानीसे नहीं हो सकता। परन्तु इसकी मंद धीमी गतिसे हमें घबराना नहीं चाहिए। जल्दीका मतलब बरबादी है। अधीर बन जानेसे आम जनतामें पाई जानेवाली अतिशय जनसंख्याकी बुराई कम नहीं होनेवाली है। आम लोगोंके बीच काम करनेवालोंके सामने भगीरथ कार्य करनेको पड़ा है। मानव जातिके श्रेष्ठ शिक्षकोंने अपने अनुभवोंके समृद्ध भंडारमें से आत्म-संयमके जो पाठ हमें दिये हैं उन पाठोंको वे अपने जीवनसे अलग न रखें। आजकी उत्तमसे उत्तम प्रयोगशालाओंकी अपेक्षा अधिक अच्छी प्रयोगशालाओंमें उन ऋषियों द्वारा किये गये सत्योंकी परीक्षा हो चुकी है। और वे सब ऋषि वे सब बिलकुल एक ही बात कहते हैं आत्म-संयम अत्यन्त आवश्यक है।

हिन्दी नवजीवन १६-९-२६

१४

धर्म-संकट

"मैं १ वर्षका विवाहित पुरुष हूं। मेरी धर्मपत्नीकी भी लगभग यही उम्र है। हमें पांच संतानें हुईं, जिनमें से सौभाग्यसे दो तो मर गई हैं। मैं अपने बाकी बच्चोंके प्रति अपनी जिम्मेदारीको भलीभांति जानता हूं। उस जिम्मेदारीको पूरा करना अगर असंभव नहीं तो बहुत कठिन जरूर पाता हूं। आपने आत्म-संयमकी सलाह दी है। मैं पिछले तीन वर्षोंसे उसका पालन करता आ रहा हूं परन्तु अपनी सहधर्मिणीकी इच्छाओंके विरुद्ध। वह तो उसी वस्तुका आग्रह करती है जिसे सामान्य लोग जीवनका सुख और आनन्द कहते हैं। आप इतनी ऊंचाई पर बैठकर अपने आदर्शोंकी दृष्टिसे भले ही इसे पाप कह सकते हैं परन्तु मेरी पत्नी तो इस चीजको आपकी दृष्टिसे नहीं देखती। और अधिक बच्चे पैदा करनेसे भी वह नहीं डरती। उसे उत्तरदायित्वका वह ख्याल नहीं है जिसके होनेका विश्वास रखकर मैं दर्द अनुभव करता हूं। मेरे माता-पिता भी मेरी अपेक्षा मेरी पत्नीका ही अधिक साथ देते हैं और रोज ही घरमें झगड़ा-टंटा होता रहता है। काम-वासनाकी पूर्ति न होनेसे मेरी स्त्रीका स्वभाव इतना चिड़चिड़ा और क्रोधी हो गया है कि वह जरा जरासी बात पर भी उबल पड़ती है। मेरे सामने प्रश्न यह है कि इस कठिनाईको मैं कैसे हल करूं? आज जो बच्चे हैं उनकी ही मात्रा अधिक है। उनका पालन करनेकी शक्ति मुझमें नहीं है। पत्नीको यह बात समझाना बिलकुल असंभव-सा जान पड़ता है। जो संतोष वह चाहती है वह अगर उसे नहीं मिला तो वह कुमार्ग पर जा सकती है, पागल हो सकती है या शायद आत्महत्या भी कर सकती है। मैं आपसे कहता हूं कि अगर इस देशका कानून मुझे इजाजत देता तो मैं सभी अनचाहे बालकोंको गोलीसे मार

चाहता जिस तरह कि आप लावारिस कुत्तोंको गोलीसे उड़वा देते। गत तीन महीनोंसे मुझे दिन रात भी ठीक खाना नसीब नहीं हुआ है नाश्ता या जलपान भी नहीं मिला है। मेरे सिर व्यापारकी ऐसी जिम्मेदारी है कि मैं लगातार कई दिनोंतक उपवास भी नहीं कर सकता। पत्नीसे मुझे कोई दया माया या सहानुभूति नहीं मिलती क्योंकि वह मुझे पागल समझती है। संतति-निग्रहके साहित्यसे मैं परिचित हूं। वह साहित्य बहुत लुभावने ढंगसे लिखा गया है। और मैंने आत्म-संयम पर आपकी भी पुस्तक पढ़ी है। मैं तो यहां बाघ और मगरके बीचमें पड़ा हूं।"

मैं इन पत्रलेखकको कई वर्षोंसे जानता हूं। वे युवक हैं। उन्होंने अपना पूरा नाम-ठाम पत्रमें दिया है। उनके हृदय-विदारक पत्रका प्रामाणिक सारांश ऊपर दिया गया है। पहले अपना नाम देते हुए वे डरते थे। इसलिए वे लिखते हैं कि इस आशामें उन्होंने मेरे पास दो गुमनाम पत्र भेजे थे कि मैं यंग इंडिया में उनकी समस्याकी चर्चा करूंगा। इस तरहके इतने अधिक गुमनाम पत्र मेरे पास आते रहते हैं कि मैं उन पर चर्चा करनेसे हिचकता हूं। उसी तरह इस पत्र पर भी चर्चा करनेमें मुझे बहुत हिचकिचाहट होती है फिर भी मैं जानता हूं कि यह पत्र सच्चा है और एक प्रयत्नशील पुरुषका लिखा हुआ है। पत्रका विषय भी बड़ा ही नाजुक है। लेकिन मैं तो यह दावा करता हूं कि ऐसे मामलोंका मुझे काफी अनुभव है। ऐसा दावा करते हुए और खासकर इसलिए कि कई ऐसे ही मामलोंमें मेरी पद्धतिसे लोगोंको लाभ मिला है मैं इस स्पष्ट कर्तव्यके पालनसे अपनेको बचा नहीं सकता।

जहां तक अंग्रेजी पढ़े-लिखे लोगोंसे संबंध है भारतकी स्थिति दुगुनी कठिन है। सामाजिक योग्यताकी दृष्टिसे पति-पत्नीके बीच इतना बड़ा अंतर होता है कि उसे मिटाना असंभव है। कुछ नौजवान यह सोचते जान पड़ते हैं कि अपनी पत्नियोंकी परवाह न करके ही उन्होंने यह सवाल हल कर लिया है यद्यपि वे जानते हैं कि उनकी जातिमें तलाक संभव नहीं है और इसलिए उनकी पत्नियां पुनर्विवाह नहीं कर

सकती । दूसरे लोग — और इन्हींकी संख्या कहीं अधिक है — अपनी पत्नियोंको केवल विषय-भोगका साधन मानकर उनका उपभोग करते हैं और उन्हें अपने बौद्धिक जीवनका साझेदार नहीं बनाते। बहुत ही थोड़े लोग ऐसे हैं जिनका अंतःकरण जाग्रत हुआ है परन्तु उनकी संख्या दिनोदिन बढ़ती जा रही है। उनके सामने भी वैसी ही नैतिक समस्या आ खड़ी हुई है जैसी कि मेरे पत्रलेखकके सामने है।

मेरी रायमें संभोगको यदि उचित या नियमानुकूल मानना है तो उसकी स्वीकृति तभी दी जा सकती है जब कि दोनों पक्ष उसकी इच्छा करें। मैं इस अधिकारको नहीं मानता कि कोई एक साथी दूसरेसे जबरन् अपनी इच्छाकी पूर्ति कराये। और यदि इस मामलेमें मेरी स्थिति सही हो तो पतिके लिए पत्नीकी विषय भोगकी मांग पूरी करनेका कोई नैतिक बंधन नहीं है। लेकिन यों पत्नीकी इच्छाको ठुकरानेसे पति पर एकदम और भी बड़ा तथा भारी उत्तरदायित्व आ पड़ता है। वह अपनी श्रेष्ठताके अभिमानमें अपनी पत्नीको घृणाकी दृष्टिसे नहीं देखेगा किन्तु नम्रतापूर्वक इसे स्वीकार करेगा कि उसके लिए जो बात जरूरी नहीं है वही उसकी पत्नीके लिए परमावश्यक वस्तु है। इसलिए वह उसके साथ अत्यन्त दयालुता और प्रेमका व्यवहार करेगा और यह विश्वास रखेगा कि उसकी पवित्रता उसकी पत्नीकी विषय-वासनाको अत्यन्त ऊँचे प्रकारकी शक्तिमें बदल सकेगी। इसलिए उसे अपनी पत्नीका सच्चा मित्र मार्गदर्शक और चिकित्सक बनना होगा। पत्नीमें उसे पूरा पूरा विश्वास रखना होगा उससे कुछ छिपाना नहीं होगा अनन्त धैर्य रखकर पत्नीको अपने कार्यका नैतिक आधार समझाना पड़ेगा और यह बतलाना होगा कि पति-पत्नीके बीच सचमुच कैसा संबंध होना चाहिये और विवाहका सच्चा अर्थ क्या है। यह काम करते हुए वह देखेगा कि पहले जो बहुतसी बातें स्पष्ट नहीं थी वे अब स्पष्ट होती जा रही हैं और यदि उसका अपना संयम सच्चा होगा तो वह अपनी पत्नीको अपने और भी निकट खींच लेगा।

इस उदाहरणमें मुझे यह कहना पड़ेगा कि केवल संतानोत्पत्तिके बचनकी इच्छा ही पत्नीको मनोज देनेसे इनकार करनेका पर्याप्त कारण नहीं माना जा सकता। केवल बच्चोंके पालनका भार उठानेके डरसे

पत्नीकी प्रेम-याचनाको अस्वीकार करना कायरता जैसी लगती है। अमर्यादित संतानोत्पत्तिको रोकना दोनों पक्षोंके लिए अलग अलग और सयुक्त रूपमें अपनी काम-वासना पर रोक लगानेका अच्छा कारण है परन्तु पति-पत्नीमें से किसी एकके द्वारा अपने संयमीम एकधम्याका अधिकार छीन लेनेका यह पूरा कारण नहीं है।

और, आखिर बच्चोंसे इतनी घबराहट किसलिए? ढ़ाक ईमानदार, परिश्रमी और बुद्धिमान पुरुषोंके लिए कई बच्चोंका पालन-पोषण कर सकने लायक कमाई करनेकी काफी गुंजाइश है। मैं स्वीकार करता हूं कि मेरे पत्रलेखक जैसे आदमीके लिए, जो देशसेवामें अपना सारा समय लगानेकी सच्ची कोशिश करता है बड़े और बढ़ते हुए परिवारका पालन-पोषण करना और साथ ही देशकी सेवा भी करना — जिसकी करोड़ों भूखी संतानें हैं — मुश्किल है। मैंने इन पृष्ठोंमें अक्सर यह मत प्रकट किया है कि जब तक भारत गुलाम है तब तक यहां बच्चे पैदा करना ही भूल है। लेकिन यह नवयुवकों और नवयुवतियोंके विवाह न करनेका बड़ा अच्छा कारण है एक साथी द्वारा दूसरेको दाम्पत्तिक सहयोग न देनेका काफी कारण नहीं है। हां जब शुद्ध धर्मके नाम पर ब्रह्मचर्य-पालनकी इच्छा प्रबल हो उठे तब ऐसा सहयोग न करना भी उचित हो सकता है, बल्कि सहयोग न करना धर्म हो जाता है। जब यह इच्छा सचमुच एक साथीमें पैदा हो जायेगी तब उसका बड़ा अच्छा प्रभाव दूसरे पर भी पड़ेगा। मान लें कि समय पर उसका अच्छा प्रभाव साथी पर नहीं पड़ता तो भी जीवन-संगीके पागलपन या मृत्युका खतरा उठाकर भी ब्रह्मचर्यका पालन करना उसका कर्तव्य हो जाता है। ब्रह्मचर्यके लिए भी वैसा ही त्यागोंकी जरूरत है जैसे स्वाम सत्यके लिए या देशोद्धारके लिए जरूरी है। मैंने ऊपर जो कुछ लिखा है उसे दृष्टिमें रखते हुए यह कहनेकी जरूरत नहीं रह जाती कि कृत्रिम उपायोंसे संतान-निग्रह करना अनैतिक है और मेरे तर्कके पीछे जीवनका जो आदर्श रहा है उसमें इनके लिए कोई स्थान नहीं है।

हिन्दी नवजीवन २१–४–२८

१५

ब्रह्मचर्यका व्रत

अच्छी तरह चर्चा करने और गहराईसे सोचनेके बाद सन् १९०६में मैंने ब्रह्मचर्यका व्रत लिया। व्रत लेनेके दिन तक मैंने धर्मपत्नीके साथ सलाह नहीं की थी, पर व्रत लेते समय की। उसकी ओरसे मेरा कोई विरोध नहीं हुआ।

यह व्रत मेरे लिए बहुत कठिन सिद्ध हुआ। मेरी शक्ति कम थी। मैं सोचता था, विकारोंको किस प्रकार दबा सकूंगा? अपनी पत्नीके साथ विकारयुक्त संबंधका त्याग मुझे एक अनोखी बात मालूम होती थी। फिर भी मैं यह साफ देख सकता था कि यही मेरा कर्तव्य है। मेरी नीयत शुद्ध थी। यह सोचकर कि भगवान शक्ति देगा, मैं इसमें कूद पड़ा।

आज बीस बरस बाद उस व्रतका स्मरण करते हुए मुझे सानन्द आश्चर्य होता है। संयम पालनेकी वृत्ति तो मुझमें १९०१ से ही प्रबल थी और मैं संयम पाल भी रहा था, पर जिस स्वतंत्रता और आनन्दका उपभोग मैं अब करने लगा, सन् १९०६के पहले उसके वैसे उपभोगका कोई स्मरण मुझे नहीं है। क्योंकि उस समय मैं वासना-बद्ध था, किसी भी समय उसके वश हो सकता था। अब वासना मुझ पर सवारी करनेमें असमर्थ हो गयी थी।

साथ ही मैं अब ब्रह्मचर्यकी महिमा अधिकाधिक समझने लगा। व्रत मैंने फीनिक्समें लिया था। घायलोंकी सेवा-शुश्रूषाके कामसे छुट्टी पाने पर मैं फीनिक्स गया था। वहांसे मुझे तुरन्त जोहानिसबर्ग जाना था। मैं वहां गया और एक महीनेके अन्दर ही सत्याग्रहकी लड़ाईका श्रीगणेश हुआ। मानो यह ब्रह्मचर्य-व्रत मुझे उसके लिए तैयार करनेको ही आया हो! सत्याग्रहकी कोई कल्पना मैंने पहलेसे करके नहीं रखी थी। उसकी उत्पत्ति अनायास, अनिच्छापूर्वक ही हुई। पर मैंने देखा कि उससे पहलेके मेरे सारे कदम — फीनिक्स जाना, जोहानिसबर्गका भारी घरखर्च

कम कर देना और अन्तमें ब्रह्मचर्य-व्रत लेना — मानो उसकी तैयारीके रूपमें ही थे।

ब्रह्मचर्यके सम्पूर्ण पालनका अर्थ है ब्रह्म-दर्शन। यह ज्ञान मुझे शास्त्र द्वारा नहीं हुआ। यह अर्थ मेरे सामने क्रम-क्रमसे अनुभव-सिद्ध होता गया। उससे संबंध रखनेवाले शास्त्र-वाक्य मैंने बादमें पढ़े। ब्रह्मचर्यमें शरीर रक्षण, बुद्धि रक्षण और आत्माका रक्षण है, इसे मैं व्रत लेनेके बाद दिन-दिन अधिकाधिक अनुभव करने लगा। अब ब्रह्मचर्यको एक घोर तपश्चर्याके रूपमें रहने देनेके बदले उसे रसमय बनाना था, उसीके सहारे निभना था, इसलिए अब उसकी विशेषताओंके मुझे नित-नये दर्शन होने लगे।

इस प्रकार यद्यपि मैं इस व्रतमें से रस लूट रहा था, तो भी कोई यह न माने कि मैं उसकी कठिनाईका अनुभव नहीं करता था। आज मुझे छप्पन वर्ष पूरे हो चुके हैं, फिर भी इसकी कठिनताका अनुभव तो मुझे होता ही है। यह एक असिधारा-व्रत है, इसे मैं अधिकाधिक समझ रहा हूं। और निरन्तर जागृतिकी आवश्यकताका अनुभव करता हूं।

ब्रह्मचर्यका पालन करना हो तो स्वादेन्द्रिय पर प्रभुत्व प्राप्त करना ही चाहिये। मैंने स्वयं अनुभव किया है कि यदि स्वादको जीत लिया जाय तो ब्रह्मचर्यका पालन बहुत सरल हो जाता है। इस कारण अबसे आगेके मेरे आहार-संबंधी प्रयोग केवल अन्नाहारकी दृष्टिसे नहीं बल्कि ब्रह्मचर्यकी दृष्टिसे होने लगे। मैंने प्रयोग करके अनुभव किया कि आहार थोड़ा, सादा, बिना मिर्च-मसालेका और प्राकृतिक स्थितिवाला होना चाहिये। ब्रह्मचारीका आहार वनपक्व फल है, जिसे अपने विषयमें तो मैंने छः वर्ष तक प्रयोग करके देखा है। जब मैं सूखे और हरे वनपक्व फलों पर रहता था, तब जिस निर्विकार अवस्थाका अनुभव मैंने किया, वैसा अनुभव आहारमें परिवर्तन करनेके बाद मुझे नहीं हुआ। फलाहारके दिनोंमें ब्रह्मचर्य स्वाभाविक हो गया था। दुग्धाहारके कारण वह कष्टसाध्य बन गया है। मुझे फलाहारसे दुग्धाहार पर क्यों जाना पड़ा, इसकी चर्चा मैं यथास्थान करूंगा। यहां तो यही कहना काफी है कि ब्रह्मचारीके लिए दूधका आहार व्रत-पालनमें बाधक है, इस विषयमें मुझे शंका नहीं है। इसका कोई यह अर्थ न करे कि ब्रह्मचारी-मात्रके लिए दूधका त्याग इष्ट है। ब्रह्मचर्य

पर आहारका कितना प्रभाव पड़ता है इसके संबंधमें बहुत प्रयोग करनेकी आवश्यकता है। दूधके समान स्नायु-पोषक और उतनी ही सरलतासे पचनेवाला फलाहार मुझे अभी तक मिला नहीं और न कोई वैद्य हकीम या डॉक्टर ऐसे फलों अथवा अन्नकी जानकारी दे सका है। अतएव दूधको विकारोत्पादक वस्तु जानते हुए भी मैं उसके त्यागकी सलाह अभी किसीको नहीं दे सकता।

बाह्य उपचारोंमें जिस तरह आहारके प्रकार और परिमाणकी मर्यादा आवश्यक है उसी तरह उपवासके बारेमें भी समझना चाहिये। इन्द्रियां इतनी बलवान हैं कि उन्हें चारों तरफसे ऊपरसे और नीचेसे यों दसो दिशाओंसे घेरा जाय तो ही वे अंकुशमें रहती हैं। सब जानते हैं कि आहारके बिना वे काम नहीं कर सकतीं। अतएव इन्द्रिय-दमनके हेतुसे स्वेच्छापूर्वक किये गये उपवाससे इन्द्रिय-दमनमें बहुत मदद मिलती है इसमें मुझे कोई सन्देह नहीं। कई लोग उपवास करते हुए भी इसमें विफल होते हैं। उसका कारण यह है कि उपवास ही सब कुछ कर सकेगा ऐसा मानकर वे केवल स्थूल उपवास करते हैं और मनसे छप्पन भोगोंका स्वाद लेते रहते हैं। उपवासके दिनोंमें वे उपवासकी समाप्ति पर क्या खायेंगे इसके विचारोंका स्वाद लेते रहते हैं और फिर शिकायत करते हैं कि न स्वादेन्द्रियका संयम सधा और न जननेन्द्रियका। उपवासकी सच्ची उपयोगिता वहीं होती है जहां मनुष्यका मन भी देह-दमनमें साथ देता है। तात्पर्य यह कि मनमें विषय भोगके प्रति विरक्ति आनी चाहिये। विषयकी जड़ें मनमें रहती हैं। उपवास आदि साधनोंसे यद्यपि बहुत सहायता मिलती है फिर भी वह अपेक्षाकृत कम ही होती है। कहा जा सकता है कि उपवास करते हुए भी मनुष्य विषयासक्त रह सकता है। पर बिना उपवासके विषयासक्तिको जड़मूलसे मिटाना संभव नहीं है। अतएव ब्रह्मचर्यके पालनमें उपवास अनिवार्य अंग है।

ब्रह्मचर्यका प्रयत्न करनेवाले बहुतेरे लोग विफल होते हैं क्योंकि वे खाने-पीने देखने-सुनने इत्यादिमें अब्रह्मचारीकी तरह रहना चाहते हुए भी ब्रह्मचर्य-पालनकी इच्छा रखते हैं। यह प्रयत्न वैसा ही कहा जायगा जैसा गरमीमें जाड़ेका अनुभव करनेका प्रयत्न। संयमी और स्वैराचारीके भोगी

और त्यागीके जीवनमें भव होना ही चाहिये। साम्य होता है पर वह ऊपरसे देखने-भरका। भेद स्पष्ट प्रकट होना चाहिये। आंखका उपयोग दोनों करते हैं। पर ब्रह्मचारी देव-दर्शन करता है, भोगी नाटक-सिनमामें लीन रहता है। दोनों कानका उपयोग करते हैं। पर एक ईश्वर भजन सुनता है दूसरा विलासी गाने सुननेमें रस लेता है। दोनों जागरण करते हैं। पर एक जाग्रत अवस्थामें हृदय-मंदिरमें विराजे हुए रामकी आराधना करता है दूसरेको नाच-गानकी धुनमें सोनेका होश ही नहीं रहता। दोनों भोजन करते हैं। पर एक शरीर-रूपी तीर्थक्षेत्रको निबाहनेभरके लिए देहको भाड़ा देता है दूसरा स्वादके लिए देहमें अनेक वस्तुएं भरकर उसे दुर्गन्धका घर बना डालता है। इस प्रकार दोनोंके आचार-विचारमें भेद बना ही रहता है और यह अन्तर दिन-दिन बढ़ता जाता है घटता नहीं।

ब्रह्मचर्यका अर्थ है मन-वचन-कायासे समस्त इन्द्रियोंका संयम। इस संयमके लिए ऊपर बताये गये त्यागोंकी आवश्यकता है इसे मैं दिन प्रतिदिन अनुभव करता रहा हूं और आज भी कर रहा हूं। त्यागके क्षेत्रकी सीमा ही नहीं है जैसे ब्रह्मचर्यकी महिमाकी कोई सीमा नहीं है। ऐसा ब्रह्मचर्य अल्प प्रयत्नसे सिद्ध नहीं होता। करोड़ों लोगोंके लिए यह सदा केवल आदर्शरूप ही रहेगा। क्योंकि प्रयत्नशील ब्रह्मचारी अपनी त्रुटियोंका नित्य दर्शन करेगा अपने अन्दर कोने-कोनेमें छिपकर बैठे हुए विकारोंको पहचान लेगा और उन्हें निकालनेका सतत प्रयत्न करेगा। जब तक विचारों पर इतना अंकुश प्राप्त नहीं होता कि इच्छाके बिना एक भी विचार मनमें न आये तब तक ब्रह्मचर्य सम्पूर्ण नहीं कहा जा सकता। विचार-मात्र विकार है। उन्हें वशमें करनेका मतलब है मनको वशमें करना और मनको वशमें करना तो वायुको वशमें करनेसे भी ज्यादा कठिन है। फिर भी यदि आत्मा है, तो यह वस्तु भी साध्य है ही। हमारे मार्गमें कठिनाइयां आकर बाधा डालती हैं इससे कोई यह न माने कि वह असाध्य है। वह परम अर्थ है। और परम अर्थके लिए परम प्रयत्नकी आवश्यकता हो तो उसमें आश्चर्य ही क्या?

परन्तु ऐसा ब्रह्मचर्य केवल प्रयत्न-साध्य नहीं है इसे मैंने हिन्दुस्तानमें आनेके बाद अनुभव किया। कहा जा सकता है कि तब तक मैं

मूर्च्छावश था। मैंने यह मान लिया था कि फलाहारसे विकार समूल नष्ट हो जाते हैं और मैं अभिमानपूर्वक यह मानता था कि अब मुझे कुछ करना बाकी नहीं है।

पर इस विचारके प्रकरण तक पहुंचनेमें अभी देर है। इस बीच इतना कह देना आवश्यक है कि ईश्वर-साक्षात्कारके लिए जो लोग मेरी व्याख्यावाले ब्रह्मचर्यका पालन करना चाहते हैं वे यदि अपने प्रयत्नके साथ ही ईश्वर पर श्रद्धा रखनेवाले हों तो उनके लिए निराशाका कोई कारण नहीं रहेगा।

विषया विनिवर्तन्ते निराहारस्य देहिनः ।
रसवर्जं रसोऽप्यस्य परं दृष्ट्वा निवर्तते ॥

(गीता २ ५९)

अतएव आत्मार्थीके लिए रामनाम और रामकृपा ही अन्तिम साधन है इस वस्तुका साक्षात्कार मैंने हिन्दुस्तानमें ही किया।

आत्मकथा भाग ३ प्रक ८ १९५७

निराहारीके विषय तो शान्त हो जाते हैं पर उसकी वासनाका शमन नहीं होता। ईश्वर-दर्शनसे वासना भी शान्त हो जाती है।

विवाहित स्त्रियां आत्मिक रूपमें वेश्याओं जैसा जीवन बिताती हैं। यह स्थिति इसलिए पैदा होती है कि विवाहित स्त्रियोंको यह विश्वास कराया जाता है कि उनका यह वेश्यापन कानून-सम्मत होनेसे उचित है और स्वाभाविक है तथा उनके पतियोंका प्रेम कायम रखनेके लिए आवश्यक है।

इसके बाद लेखक सतत और अनियंत्रित विषय-भोग के परिणामोंका वर्णन करता है जिसका सार मैं नीचे देता हूं

(क) इससे स्त्रीके ज्ञानतंतु अत्यन्त निर्बल पड़ जाते हैं वह समयसे पहले बूढ़ी हो जाती है उसका शरीर रोगका घर बन जाता है वह चिड़चिड़ी स्वभावकी व असन्तुष्ट रहती है तथा अपने बच्चोंकी भलीभांति सार-संभाल नहीं कर पाती।

(ख) गरीब वर्गोंमें इससे बहुतेरे अनचाहे बच्चे पैदा होते हैं जिनका पालन-पोषण असम्भव हो जाता है।

(ग) कुछ समृद्ध लोगोंमें अनियंत्रित विषय-भोगके कारण सन्तति-नियमनके और गर्भपातके कृत्रिम उपाय काममें लिए जाते हैं। "अगर संतति नियमनके कृत्रिम उपाय सन्तानकी संख्या न बढ़ने देनेके काम कर या और किसी काम पर आम वर्गकी स्त्रियोंको सिखाये जायंगे तो उसकी प्रजा सामान्यतः रोगी दुराचारी और भ्रष्ट होगी और अन्तमें नष्ट हो जायगी।

(घ) अनियंत्र विषय-भोग पुरुषकी वह शक्ति नष्ट कर देता है जो अच्छी नागरिकता बनानेके लिए जरूरी होती है।
इस समय अमेरिकामें विधुरोंकी अपेक्षा विधवाओंकी संख्या ए लाख अधिक है। इनमें से बहुत थोड़ी स्त्रियां पतिके कारण विधवा हुई होंगी।

(ङ) वर्तमान विवाहित स्थिति फलस्वरूप पैदा होनेवाला अनियंत्रित विषय-भोग पुरुष और स्त्री दोनोंके मनमें स्वार्थ और स्वच्छन्दताकी भावना बढ़ाता है। "दुनियाकी वर्तमान गरीबी और बड़े राष्ट्रोंके सबसे बीहड़ी आर्थिक दृष्टिसे नाजुक वक्त अभावके

परिणाम नहीं है परन्तु विवाहके वर्तमान कानूनोंके फलस्वरूप महसूस होनेवाले अतिशय अनियंत्रित विषय-भोगके परिणाम हैं।"[1]

(क) मानव-जातिके भविष्यकी दृष्टिसे सबसे गंभीर वस्तु धर्मशास्त्रमें दिया जानेवाला विषय-भोग है।"

इसके बाद चीन और हिन्दुस्तान पर लगाया गया आरोप आता है जिसमें जानेकी जरूरत नहीं। यहां पुस्तिकाके आधे भाग तक हम पहुँच जाते हैं। बाकी आधे भागमें इन दुष्परिणामोंसे बचनेके उपाय बताये गये हैं।

उपायोंसे सम्बन्ध रखनेवाली केन्द्रीय वस्तु यह है कि पति और पत्नी दोनोंको हमेशा अलग कमरोंमें रहना चाहिये इसलिए दोनोंको आवश्यक रूपमें अलग बिस्तर पर सोना चाहिये और तभी मिलना चाहिये जब दोनोंकी — खास करके पत्नीकी — सन्तानोत्पत्तिकी इच्छा हो। लेखकने विवाहके कानूनोंमें जो परिवर्तन सुझाये हैं उन्हें मैं यहां देनेका इरादा नहीं रखता। एक बात दुनिया भरमें सारे विवाहोंको समान रूपसे लागू होती है। वह है पति-पत्नीके लिए एक कमरा और एक ही बिस्तर। इसकी लेखकने अपार, और मेरे विचारसे उचित निन्दा की है। इसमें कोई शक नहीं कि पुरुष या स्त्रीके स्वभावमें पाई जानेवाली अधिकतर काम-वासना इस अन्धविश्वासको प्राप्त होनेवाली धार्मिक स्वीकृतिका फल है कि विवाहित स्त्री-पुरुषोंको अनिवार्यतः एक ही कमरे और एक ही बिस्तरका उपयोग करना चाहिये। इसने समाजमें ऐसी मनोवृत्ति उत्पन्न कर दी है जिसके खतरनाक असरका अनुमान लगाना हमारे लिए, जो इस अन्धविश्वास द्वारा पैदा किये हुए वातावरणमें ही रहते हैं कठिन है।

जैसा कि हम देख चुके हैं लेखक संतति-नियमनके कृत्रिम साधनोंके भी खिलाफ है।

मद्रासके साहसी प्रकाशक एस० गणेशनने भारतमें वितरणके लिए इस पुस्तिकाके पुनर्मुद्रणकी स्वीकृति लेखकसे प्राप्त कर ली है। यदि न ऐसा

---

१ ऊपरके (अ) (ब) (क) — तीनों पैरेग्राफमें मोटा टाइप लेखकने किया है।

करते हैं तो पाठकोंको यह प्रति अल्प मूल्यमें मिल सकेगी। उन्होंने मनुवादके अधिकार भी प्राप्त कर लिये हैं।

लेखकने दूसरे जो अनेक उपाय सुझाये हैं उनका मेरी रायमें हमारे लिए कोई व्यावहारिक उपयोग नहीं है और उनके लिए कानूनकी स्वीकृति आवश्यक है। परन्तु प्रत्येक पति और पत्नी आजसे ही यह दृढ़ निश्चय कर सकते हैं कि वे रातमें कभी एक कमरेका या एक बिस्तरका उपयोग नहीं करेंगे और मनुष्य तथा पशु दोनोंके लिए निर्धारित प्रजोत्पत्तिके एकमात्र उदात्त हेतुके सिवा दूसरे किसी हेतुसे विषय-भोग नहीं करेंगे। पशु इस कानूनका पालन अनिवार्य रूपमें करता है। मनुष्यको चुनावकी छूट होनेसे उसने गलत चुनाव करनेकी भयंकर भूल की है। प्रत्येक स्त्री कृत्रिम साधनोंके साथ कोई भी सम्बन्ध रखनेसे इनकार कर सकती है। पुरुष और स्त्री दोनोंको जानना चाहिये कि काम-वासनाकी तृप्ति न करनेका परिणाम रोगमें नहीं आता बल्कि स्वास्थ्य और शक्तिके रूपमें आता है बशर्ते मनुष्यका मन उसके शरीरके साथ सहयोग करे। लेखकका विश्वास है कि विवाहके कानूनोंकी वर्तमान स्थिति दुनियाकी आजकी अधिकतर बुराइयोंके लिए जिम्मेदार है। मेरे सुझाये हुए दो अन्तिम निर्णयों पर पहुंचनेके लिए यह जरूरी नहीं है कि कोई लेखकके इस व्यापक विश्वासको माने ही। परन्तु इसमें कोई शक नहीं कि यदि हम स्त्री-पुरुषके संबंधोंको स्वस्थ और पवित्र दृष्टिसे देखें तथा भावी पीढ़ियोंके नैतिक कल्याणके लिए अपनेको ट्रस्टी मानें तो आजके बहुतस दुःख-दर्द टल सकते हैं।

यंग इंडिया २७-९-२८

१७

कामको कैसे जीता जाय?

काम-विकारको जीतनेका प्रयत्न करनेवाले एक पाठक लिखते हैं

आपकी सत्यके प्रयोग अथवा आत्मकथा — बाद पहला — पढ़ी। आपने कोई बात छिपाई नहीं इसलिए मैं भी आपसे कोई बात छिपाना नहीं चाहता। आपकी नीतिनाशके मार्ग पर नामक पुस्तक भी मैंने पढ़ी। उसे पढ़कर विषयोंको जीतनेका खास कारण मेरी समझमें आया। परन्तु विषय-वासना इतनी बुरी है कि योग वासिष्ठ स्वामी रामतीर्थ तथा स्वामी विवेकानन्दके ग्रन्थ मैं पढ़ता रहता हूं तब तक तो सब कुछ निखार लगता है लेकिन ज्यों ही उनके वाचनसे विमुख हुआ कि तुरन्त वह मुझ पर सवार हो जाती है। आंख कान नाक जीभ जैसी इन्द्रियोंको जीता जा सकता है। क्योंकि आंख बन्द की कि आंखके देखनेका विषय बन्द हुआ। यही बात दूसरी इन्द्रियोंको लागू होती है। परन्तु जननेन्द्रियका तो कुछ अलग ही मार्ग मालूम होता है। यह जब मनुष्यको त्रास देती है तब पढ़े हुए शब्दोंकी कीमत ही जैसे नहीं रह जाती। मैं सात्विक भोजन करता हूं एक बार खाता हूं रातको दूध पर ही रहता हूं फिर भी काम-विकार किसी भी तरह मेरे काबूमें नहीं आता। इसका कारण मेरी समझमें नहीं आता। गीतामें भी भगवान श्रीकृष्णने एक स्थान पर कहा है आहार न करनेवाला देहधारी जीव इन्द्रियोंके विषयोंसे तो निवृत्त होता है परन्तु वह विषयोंकी आसक्तिसे निवृत्त नहीं होता। वह आसक्ति तो परमात्माके दर्शनसे ही नष्ट होती है।

इस प्रकार यदि ईश्वरका दर्शन हो तो ही विषयोंकी आसक्तिसे मनुष्य मुक्त हो सकता है। अर्थात् ईश्वरका दर्शन होगा नहीं और इस विषयसे मनुष्यको मुक्ति मिलेगी नहीं। ऐसी

पड़ेगी है। तो क्या आप मेरे जैसे विषयोंमें फंसे हुए मनुष्यको आचरणका सही रास्ता नहीं बतायेंगे ?

"इसका उत्तर आप नवजीवन के द्वारा दें तो ठीक हो जिससे मैं अच्छा मार्ग ग्रहण कर सकूं और प्रभुकी प्राप्तिमें बाधक बननेवाले विषयोंको जीत सकूं।

जो स्थिति इस पाठककी है वैसी बहुतेरे लोगोंकी है। कामको जीतना कठिन तो है परन्तु असंभव नहीं है। परन्तु जो मनुष्य कामको जीतता है वह संसारको जीत लेता है और तर जाता है ऐसा ईश्वरका वचन है। इसलिए हमने देखा कि काम पर विजय प्राप्त करना सबसे कठिन है। यह विजय प्राप्त करनेमें धैर्यकी बड़ी आवश्यकता है। लेकिन काम पर विजय पानेका प्रयत्न करनेवाले सब लोग इस बातको स्वीकार नहीं करते। हम जानते हैं कि अक्षर ज्ञानके अभ्यासमें हमें लगनकी धैर्यकी तथा एकाग्रताकी कितनी जरूरत पड़ती है। इस परसे गैराशिक लगायें तो भी हमें पता चलेगा कि अक्षर-ज्ञानके अभ्यासमें धैर्य लगन आदिकी जितनी जरूरत है उसकी अपेक्षा कामको जीतनेमें अनन्त गुने धैर्य तथा लगनकी जरूरत होगी।

यह तो हुई धैर्यादिकी बात। परन्तु कामको जीतनेके उपचारोंके बारेमें भी हम उतने ही उदासीन रहते हैं। मामूली रोगको मिटानेके प्रयत्नमें हम सारी दुनिया छान डालते हैं। डॉक्टरोंके सारे घर लोग जानते हैं। जंतर-मंतरकी बात लेना भी नहीं छोड़ते। परन्तु कामरूपी महारोगको मिटानेके लिए हम समस्त उपचार नहीं करते। कुछ उपचार आजमा कर ही थक जाते हैं। और ईश्वरके साथ या उपचार बतानेवालेके साथ दर्द करते हैं कि इतनी चीजें तो हम कभी नहीं छोड़ेंगे फिर भी आप हमारा काम-विकार जरूर मिटा दें। सार यह कि काम-विकार मिटानेकी हममें सच्ची उत्कण्ठा नहीं है। उसके लिए सर्वस्वका त्याग करनेकी हमारी तैयारी नहीं है। यह शिथिलता काम-विजयके मार्गमें बड़ीसे बड़ी बाधा है। इसलिए यह बात सत्य है कि निराहारी मनुष्यके विकार शान्त होते हैं परन्तु आत्म-दर्शनके बिना उनकी आसक्ति नहीं मिटती। परन्तु इस श्लोकका यह अर्थ नहीं है कि कामको जीतनेके लिए निराहार व्यर्थ

है। इस श्लोकका अर्थ यह है कि निराहारी रहनेसे कभी थकना ही नहीं चाहिये और ऐसी दृढ़ता तथा भगवद् आत्म-दर्शन होना संभव है। इससे विषयोंकी आसक्ति भी मिटेगी। ऐसा उपवास दूसरेके कहनेसे नहीं किया जा सकता। उसमें मन वचन और काया तीनोंका सहयोग होना चाहिये। यह सहयोग हो तो ईश्वरकी प्रसादी अवश्य प्राप्त होती है और इस प्रसादीके अन्तमें विकार-शान्ति तो होती ही है।

परन्तु निराहार रहनेके पहले दूसरे अनेक उपाय करने बाकी रहते हैं। उन उपायोंसे विकार शान्त भले न हों परन्तु शिथिल तो होते ही हैं। भोग-विलासके हर अवसरका त्याग करना चाहिये। उसके प्रति हमारे मनमें अरुचि बढ़नी चाहिये। क्योंकि अरुचिके बिना किया जानेवाला त्याग बाहरी त्याग होगा इसलिए वह हमेशा टिकेगा नहीं। भोग-विलासमें किन किन चीजोंका समावेश होता है यह गिनानेकी जरूरत नहीं होनी चाहिये। जिस जिस चीजसे विकार उत्पन्न हों उसका हमें त्याग करना चाहिये।

आहारका प्रश्न इस सम्बन्धमें बहुत सोचने जैसा है। इस क्षेत्रमें अभी अधिक शोध और प्रयोग नहीं हुए हैं। मैं यह मानता हूं कि विकारोंको शान्त करनेकी इच्छा रखनेवालेको घी और दूधका उपयोग कम करना चाहिये। अनपक्व अन्न खाकर निर्वाह किया जा सके तो कृत्रिम अग्निका स्पर्श जिसे हुआ है ऐसा भोजन न किया जाय अथवा कम मात्रामें किया जाय। फल और अनेक प्रकारकी पत्ताभाजी बिना पकाई हुई खाई जा सकती है और खानी चाहिये। कच्ची पत्ताभाजीकी मात्रा बहुत थोड़ी रखनी चाहिये। दो तीन तोला कच्ची भाजीसे पर्याप्त पोषण मिल जाता है। मिठाई और मसालोंका सर्वथा त्याग करना चाहिये। इतना बतानेके बाद भी मैं जानता हूं कि केवल आहारके संयमसे ही ब्रह्मचर्यकी पूरी रक्षा नहीं हो सकती। परन्तु विकारोत्तेजक आहार खाते हुए भी मनुष्यको ब्रह्मचर्यके पालनकी आशा नहीं रखनी चाहिये।

१८

ब्रह्मचर्य

आश्रमके हमारे व्रतोंमें तीसरा व्रत ब्रह्मचर्यका है। वास्तवमें अन्य सब व्रत एक सत्यके व्रतसे ही निकलते हैं और उसीके लिए हैं। जिस मनुष्यने सत्यका वरण किया है जो उसीकी उपासना (भक्ति) करता है, वह अगर उसे छोड़कर किसी और चीजकी आराधना करता है तो व्यभिचारी सिद्ध होता है। तब फिर विकारकी आराधना तो उससे हो ही कैसे सकती है? जिसकी सारी प्रवृत्ति सारा काम सत्यके दर्शनके लिए है, वह सन्तान पैदा करनेके या घर-संसार, कुटम्ब-कबीला चलानेके काममें कैसे पड़ सकता है? भाग-विलाससे किसीने सत्यको पाया हो ऐसी आज तक एक भी मिसाल हमारे सामने नहीं है।

अथवा अहिंसाके पालनको लें तो उसका पूरा-पूरा पालन ब्रह्मचर्यके बिना असंभव है। अहिंसाका अर्थ है सब जगह फैला हुआ सर्वव्यापी प्रेम। जहां पुरुषने एक स्त्रीको या स्त्रीने एक पुरुषको अपना प्रेम दे दिया वहां उनके पास दूसरेके लिए क्या रहा? उसका मतलब यही हुआ कि हम दो पहले और दूसरे सब बादमें। पतिव्रता स्त्री पुरुषके लिए और पत्नीव्रती पुरुष स्त्रीके लिए सब-कुछ कुरबान करनेको तैयार होगा इसलिए यह तो स्पष्ट है कि उसके द्वारा सर्वव्यापी प्रेमका पालन कभी नहीं हो सकेगा। वह सारी दुनियाको अपना कुटुम्ब कभी नहीं बना सकेगा क्योंकि उसका अपना माना हुआ एक कुटुम्ब मौजूद है या बन रहा है। वह कुटुम्ब जितना बढ़ता है उतनी सर्वव्यापी प्रेममें विश्वप्रेममें बाधा पहुंचती है। सारी दुनियामें हम ऐसा होते देख रहे हैं। इसलिए अहिंसा-व्रतका पालन करनेवाला विवाह नहीं कर सकता तब फिर विवाहसे बाहरके विकारोंकी तृप्तिका तो पूछना ही क्या?

तब जो लोग विवाह कर बैठे हैं उनका क्या? क्या वे कभी सत्यको नहीं पायेंगे? क्या वे कभी भी सर्वार्पण — सब कुछ न्यौछावर — नहीं कर सकेंगे? हमने उसका रास्ता निकाला है। विवाहित स्त्री-पुरुष भाई-बहिन जैसे बन जायें। इस विचारमें इसके जैसी सुन्दर दूसरी कोई बात

मेरे अनुभवमें नहीं आयी है। इस स्थितिका रस जिसने चखा है वही इसकी गवाही दे सकेगा। आज तो इस प्रयोगकी सफलता सिद्ध हो चुकी है ऐसा कह सकते हैं। विवाहित स्त्री-पुरुष एक-दूसरेको भाई-बहन समझने लगें तो वे सारे जंजालसे दूर छूट जाते हैं। दुनियाकी तमाम स्त्रियां बहनें हैं माताएं हैं हमारी बेटियां हैं यह खयाल ही आदमीको एकदम ऊंचा उठानेवाला बन्धनसे मुक्ति देनेवाला बन जाता है। इससे पति-पत्नी कुछ भी खोते नहीं हैं बल्कि अपनी पूंजी बढ़ाते हैं अपना कुटुम्ब बढ़ाते हैं और विकार-रूपी मैलको निकाल डालनेसे अपना प्रेम भी बढ़ाते हैं। विकारके न रहनेसे एक-दूसरेकी सेवा अधिक अच्छी हो सकती है आपसके झगड़ेके मौके कम होते हैं। जहां स्वार्थी एकांगी प्रेम होता है वहां झगड़के लिए ज्यादा स्थान रहता है।

ऊपरकी प्रधान बात सोच लेनेके बाद और उसके हृदयमें जम जानेके बाद ब्रह्मचर्यसे होनेवाले शरीरके लाभ वीर्यलाभ आदि बहुत गौण हो जाते हैं। जान-बूझकर भोग-विलासके लिए वीर्यको गवाना और शरीरको निचोना कितनी बड़ी मूर्खता है? वीर्यका उपयोग स्त्री-पुरुष दोनोंके शरीर और मनकी शक्ति बढ़ानेके लिए है। विषय-भोगमें उसका उपयोग करना उसका बहुत बड़ा दुरुपयोग है और इसलिए वह बहुतसी बीमारियोंका मूल बन जाता है।

ऐसा ब्रह्मचर्य मन वचन और शरीरसे पालनेका होता है। सारे व्रतोंका ऐसा ही समझना चाहिये। जो मनुष्य शरीरको वशमें रखता है, लेकिन मनसे विकारको पोसता रहता है, वह मूढ़ और मिथ्याचारी है ऐसा गीतामें हमने पढ़ा है हमीने उसका अनुभव किया है। मनको विकारी रहने देना और शरीरको दबानेकी कोशिश करना हानिकारक ही है। जहां मन है वहां शरीर आखिर घसिटे बिना रहेगा ही नहीं। यहां एक भेद समझ लेना जरूरी है। मनको विकारवश होने देना एक बात है और मन अपने-आप हमारी इच्छाके बिना जबरन् विकारवाला हो जाय या हुआ करे यह दूसरी बात है। इस विकारमें अगर हम सहायक न हों तो अन्तमें हमारी जीत है ही। यह हम प्रतिक्षण अनुभव करते हैं कि शरीर हमारे वशमें रहता है लेकिन मन नहीं रहता। इसलिए शरीरको

तुरन्त वशमें करके हम मनको वशमें करनेकी हमेशा कोशिश करते रहें तो कहा जायगा कि हम अपना फर्ज अदा कर चुके। मनके वशमें हम हुए कि शरीर और मनका झगड़ा शुरू हुआ, मिथ्याचारका आरंभ हुआ। जब तक मनके विकारको हम दबाते ही रहेंगे तब तक दोनों साथ साथ चलेंगे ऐसा कह सकते हैं।

इस ब्रह्मचर्यका पालन बहुत कठिन, लगभग असंभव माना गया है। उसके कारण ढूंढने पर पता चलता है कि ब्रह्मचर्यका संकुचित अर्थ किया गया है। जननेन्द्रिय (लिंग योनि) के विकारों पर अंकुश रखना ही ब्रह्मचर्यका पालन है ऐसा माना गया है। मुझे लगता है कि यह अधूरी और गलत व्याख्या है। सारे विषयों पर अंकुश रखना ही ब्रह्मचर्य है। जो दूसरी इन्द्रियोंको जहां तहां भटकने देता है और एक ही इन्द्रियको रोकनेकी कोशिश करता है वह निष्फल प्रयत्न करता है इसमें क्या शक है? कानोंसे विकारकी बातें सुन, आंखोंसे विकार पैदा करनेवाली चीजें देखे, जीभसे विकारोंको उत्तेजित करनेवाली चीजें स्वादसे खाये, हाथसे विकारोंको बढ़ानेवाली वस्तुएं छुए और फिर भी जननेन्द्रियको रोकनेका इरादा कोई रखे तो यह आगमें हाथ डाल कर न जलनेकी कोशिश करने जैसा होगा। इसलिए जो जननेन्द्रियको रोकनेका निश्चय करे उसे तमाम इन्द्रियोंको उनके विकारोंसे रोकनेका निश्चय करना ही चाहिये। ब्रह्मचर्यकी संकुचित व्याख्यासे नुकसान हुआ है ऐसा मुझे हमेशा लगा है। मेरी तो पक्की राय है और मेरा अनुभव भी है कि अगर हम सब इन्द्रियोंको एकसाथ वशमें लानेकी आदत डालें तो जननेन्द्रियको वशमें लानेकी कोशिश तुरन्त सफल होगी। इसमें मुख्य स्वादकी इन्द्रिय है और इसीलिए उसके संयमको हमने व्रतोंमें अलग स्थान दिया है।

ब्रह्मचर्यके मूल अर्थको सब याद करें। ब्रह्मचर्य यानी ब्रह्मकी — सत्यकी — शोधमें चर्या अर्थात् उससे सम्बन्धित आचार। इस मूल अर्थसे सब इन्द्रियोंका संयम यह विशेष अर्थ निकलता है। सिर्फ जननेन्द्रियका संयम इस अधूरे अर्थको हम भूल ही जायं।

मंगल-प्रभात प्र० १ १९५८

संतति-नियमन – १

मेरे एक साथीने जो मेरे लेखोंको बड़े ध्यानके साथ पढ़ते रहते हैं जब यह पढ़ा कि संतति-नियमनके लिए संभवतः मैं उन दिनों पति-पत्नीके सहवास करनेकी बात स्वीकार कर लूंगा जिन दिनोंमें गर्भ रहनेकी संभावना नहीं होती तो उन्हें बड़ी बेचैनी हुई। मैंने उन्हें यह समझानेकी कोशिश की कि कृत्रिम साधनोंसे संतति-नियमन करानेकी बात मुझे जितनी खटकती है उतनी यह नहीं खटकती फिर यह है भी अधिकतर विवाहित दम्पतियोंके ही लिए। आखिर बहस बढ़ते-बढ़ते इतनी गहराई पर चली गई, जिसकी हम दोनोंमें से किसीने आशा नहीं की थी। मैंने देखा कि यह बात भी उन मित्रको कृत्रिम साधनोंसे संतति-नियमन करने जैसी ही बुरी प्रतीत हुई। इससे मुझे मालूम हुआ कि वे मित्र स्मृतियोंके इस वचनको साधारण मनुष्योंके लिए व्यवहारमें समझते हैं कि पति-पत्नीको भी तभी सहवास करना चाहिये जब उन्हें सचमुच सन्तानोत्पत्तिकी इच्छा हो। इस नियमको जानता तो मैं पहलेसे ही था लेकिन उसे उस रूपमें मैंने पहले कभी नहीं माना था जिस रूपमें इस चर्चाके बाद मानने लगा हूं। अभी तक तो पिछले कितने ही सालोंसे मैं इसे ऐसा पूर्ण आदर्श ही मानता आया हूं जिस पर अक्षरशः अमल करनेकी बात नहीं है इसलिए मैं समझता था कि संतानोत्पत्तिकी खास इच्छाके बगैर भी विवाहित स्त्री-पुरुष जब तक एक-दूसरेकी स्वीकृति या सहमतिसे सहवास करें तब तक वे वैवाहिक उद्देश्यकी पूर्ति करते हुए स्मृतियोंके आदेशका भंग नहीं करते। लेकिन जिस नये रूपमें अब मैं स्मृतिके वचनको समझने लगा हूं उस परसे मुझे एक नया ही प्रकाश मिला है। जो विवाहित स्त्री-पुरुष स्मृतिके इस आदेशका दृढ़ताके साथ पालन करें, वे वैसे ही ब्रह्मचारी हैं जैसे सदा अविवाहित रहकर सदाचारी जीवन व्यतीत करनेवाले स्त्री-पुरुष होते हैं — स्मृतिके इस वचनको अब मैं जितनी अच्छी तरह समझ गया हूं उतना पहले कभी नहीं समझ पाया था।

इस नयी दृष्टिके अनुसार अपनी काम-वासनाको तृप्त करना नहीं बल्कि सन्तानोत्पत्ति ही सहवासका एकमात्र उद्देश्य है। साधारण विषय तृप्ति तो विवाहकी इस दृष्टिसे भोग-विलास ही मानी जायगी। जिस भोगको अभी तक हम निर्दोष और धर्म मानते आये हैं उसके लिए ऐसे शब्दका प्रयोग कठोर तो मालूम होगा। लेकिन मैं यहां प्रचलित प्रथाकी बात नहीं कर रहा हूं बल्कि उस विवाह-विज्ञानको ले रहा हूं जिसका प्रतिपादन हिन्दू ऋषियोंने किया है। यह हो सकता है कि उनका यह प्रतिपादन दोषपूर्ण हो या बिलकुल गलत हो। लेकिन मुझ जैसे आदमीके लिए तो जो स्मृतियोंके अनेक वचनोंको ईश्वर-प्रेरित या अनुभव पर आधारित मानता है उनके अर्थको पूरी तरह स्वीकार किये सिवा कोई चारा ही नहीं है। प्राचीन शास्त्रवचनोंको उनके पूरे अर्थोंमें ग्रहण करके प्रयोग करनेके अलावा और कोई ऐसी पद्धति मैं नहीं जानता जिससे उनका यथार्थका पता लगाया जा सके। फिर यह बात कितनी ही कड़ी क्यों न प्रतीत हो और उसमें निकलनेवाला निष्कर्ष कितना ही कठोर क्यों न लगे।

ऊपर मैंने जो कुछ कहा है उसको देखते हुए संतति-नियमनके साधनों या इसी तरहके अन्य कृत्रिम उपायों द्वारा संतति-नियमन करना एक गंभीर भूल है। मैं यह बात जिम्मेदारीकी पूरी भावनासे लिखता हूं। श्रीमती मार्गरेट सैंगर और उनके अनुयायियोंके लिए मेरे मनमें बड़ा आदर है। अपने कार्यके लिए उनके प्रबल उत्साहको देखकर मैं बहुत प्रभावित हुआ हूं। मैं जानता हूं कि अवांछित सन्तानोंको जन्म देने और उनका पालन-पोषण करनेके बोझसे कष्ट पानेवाली स्त्रियोंके प्रति उनके हृदयमें सहानुभूति है। मैं यह भी जानता हूं कि कई प्रॉटेस्टेंट धर्माचार्य, वैज्ञानिक, विद्वान और डॉक्टर — जिनमें से कई लोगोंको मैं व्यक्तिगत रूपमें जानता हूं और जिनके लिए मेरे मनमें बड़ा आदर है — सन्तति-नियमनकी इस पद्धतिका समर्थन करते हैं। लेकिन यदि इस पद्धतिके इन महान समर्थकोंके या पाठकोंके सामने मैं इस विषय पर अपना विश्वास छिपाऊं तो मैं जिस सत्य भगवानका पुजारी हूं उसका द्रोही ठहरूंगा। इसके अलावा उन अनेक स्त्री-पुरुषोंके खातिर भी मैं यह जाहिर कर रहा हूं जो कि

संतति-नियमन तथा अन्य अनेक नैतिक समस्याओंके बारेमें मेरे मार्गदर्शन और मेरी सलाहको स्वीकार करते हैं।

सन्ततिका नियमन अवश्य होना चाहिये इस विषयमें मेरे और कृत्रिम साधनोंके समर्थकोंमें कोई मतभेद नहीं है। दोनों ही पक्ष यह चाहते हैं। संयमके द्वारा संतति-नियमनकी कठिनाईसे भी इनकार नहीं किया जा सकता। लेकिन यदि मानव-जाति अपने लिए उस उज्ज्वल भविष्यका निर्माण करना चाहती है जिसकी वह अधिकारिणी है तो इस लक्ष्यकी सिद्धिका संयमके सिवा कोई दूसरा उपाय नहीं है। मेरा दृढ़ विश्वास है कि यदि कृत्रिम साधनोंके उपयोगका व्यापक प्रचार हुआ और सन्तति नियमनकी यह पद्धति ही मानव-जातिने अपना ली तो उसका नैतिक पतन अनिवार्य है। और यह मैं उन प्रतिकूल प्रमाणोंके बावजूद भी कहता हूं जो इस पद्धतिके समर्थकों द्वारा अकसर पेश किये जाते हैं।

मेरा विश्वास है कि मैं वहमसे मुक्त हूं। कोई बात महज इसलिए सत्य नहीं हो सकती कि वह प्राचीन है लेकिन साथ ही यह भी सही है कि किसी चीजको महज उसके प्राचीन होनेके कारण ही हम संदेहकी निगाहसे नहीं देख सकते। जीवनके कुछ बुनियादी सत्य ऐसे हैं कि अपने जीवनमें उनका आचरण करना कितना ही कठिन क्यों न हो उन्हें हम छोड़ नहीं सकते।

संयमके द्वारा संतति-नियमन कठिन अवश्य है। लेकिन मेरी दृष्टिमें अभी तक ऐसा कोई व्यक्ति नहीं आया है, जो संयमकी सफलतासे और कृत्रिम साधनोंकी तुलनामें उसकी श्रेष्ठतासे गम्भीरतापूर्वक इनकार करता हो या उसमें संदेह रखता हो।

इसके सिवा मेरा खयाल है कि संभोगकी क्रियाके अत्यन्त मर्यादित उपयोगके विषयमें शास्त्रोंकी आज्ञाका अर्थ पूरी तरह स्वीकार कर लिया जाय तो संयमका पालन उक्त क्रियाको विषयानन्दका एक साधन समझनेकी तुलनामें कहीं ज्यादा आसान हो जाता है। प्रजोत्पत्तिकी इन्द्रियोंका कार्य स्पष्टतः विवाहित दम्पतिके लिए जितनी उच्च श्रेणीकी प्रजा उत्पन्न करना सम्भव हो उतनी उच्च श्रेणीकी प्रजा उत्पन्न करना ही है। और यह उपयोग तभी हो सकता है और तभी होना चाहिये जब

कि दोनों पक्ष मात्र शरीर-सम्बन्धकी नहीं बल्कि प्रजोत्पत्तिकी इच्छा रखते हों — जो कि ऐसे समागमका फल है। अतः प्रजोत्पत्तिकी इच्छाके अभावमें समागमकी इच्छा अवैध मानी जानी चाहिये और रोकी जानी चाहिये।

साधारण आदमियों पर ऐसा नियंत्रण लगाया जा सकता है या नहीं इस पर अगले अंकमें विचार किया जायेगा।

हरिजन १४-३-३६

२०

संतति-नियमन – २

आज हमारे समाजमें ऐसी कोई बात नहीं है जो आत्म-संयमकी भावनाका पोषण करनेवाली हो। हमारे पालन-पोषणका ढंग ही उसका नाश करनेवाला होता है। माता-पिताकी सबसे बड़ी चिन्ता किसी भी तरह अपने लड़कोंका विवाह कर देनेकी होती है ताकि वे खरगोशकी तरह बच्चे उत्पन्न करते रहें। अगर लड़कियाँ हों तो जल्दीसे जल्दी उनका विवाह कर दिया जाता है और उनके नैतिक कल्याणका कोई विचार नहीं किया जाता। विवाहकी विधि जाति-भोजों तथा मौज-शौककी दीर्घ बेहूदगी भरी होती है। मनुष्यका जीवन जैसा विवाहके पहले होता है वैसा ही उसका गृहस्थ जीवन भी होता है। उसमें पहलेका स्वेच्छाचार जारी ही रहता है। तीज-त्योहार और सामाजिक आनन्द प्रमोदकी ऐसी व्यवस्था की जाती है कि उसमें मनुष्यको अपनी विषय वासनाकी तृप्तिका पूरा पूरा मौका मिलता है। जो साहित्य लगभग हम पर लादा जाता है वह सामान्यतः हमारी विषय-वासनाको उत्तेजित करनेवाला होता है। अत्यधिक आधुनिक साहित्य तो लगभग यही सिखाता है कि विषय-भोग मनुष्यका धर्म है और संपूर्ण संयम पाप है।

ऐसी हालतमें यदि विषय-वासनाका नियंत्रण असंभव न होते हुए भी अत्यन्त कठिन बन जाय तो इसमें आश्चर्य कैसा? इसलिए अगर आत्म-संयम द्वारा संतति-नियमनकी पद्धति सबसे ज्यादा वांछनीय बुद्धि

सत्तापूर्ण और जरा भी हानि न पहुंचानेवाली पद्धति हो तो हमें अपना सामाजिक आदर्श और वातावरण बदलना होगा। इस वांछित ध्येयकी सिद्धिका एकमात्र मार्ग यह है कि संयमकी पद्धति पर जिन व्यक्तियोंकी श्रद्धा हो उन्हें स्वयं इसका आरंभ अपने जीवनमें करना चाहिये और अचल श्रद्धा रखकर वातावरण पर अपना प्रभाव डालना चाहिये। मुझे लगता है कि पिछले सप्ताह मैंने विवाहकी जिस कल्पनाकी चर्चा की थी उसका ऐसे लोगोंके लिए बहुत बड़ा महत्त्व है। यह कल्पना अगर भलीभांति समझमें आ जाय तो उससे संपूर्ण मानसिक परिवर्तन हो सकता है। यह कल्पना सिर्फ कुछ इनेगिने लोगोंके लिए ही नहीं है। उसका वर्णन मनुष्य-जातिके धर्मके रूपमें किया गया है। इस धर्मका भंग मनुष्यको मनुष्यकी कोटिसे नीचे उतार देता है और इस धर्मके भंगकी सजा अवांछित बालकों सतत बढ़नेवाले रोगोंकी परम्परा और सरजनहार प्रभुके प्रति उत्तरदायी तथा सदाचारी प्राणीके ऊंचे पदसे मनुष्यके अधःपतनके रूपमें तत्काल ही उसे मिलती है।

कृत्रिम उपायों द्वारा किया जानेवाला संतति-नियमन एक हद तक नयी प्रजाकी संख्याको अवश्य रोकता है और उसका उपयोग करके सामान्य स्थितिके आदमीकी मुफलिसी टाली जा सकती है। लेकिन उससे व्यक्ति और समाजको जो नैतिक हानि होती है वह अपार है। एक तो जो लोग विषय-वासनाकी तृप्तिके लिए ही विषय-सेवन करते हैं उनकी दृष्टिमें जीवनके प्रति आमूल परिवर्तन हो जाता है। फिर उनके लिए विवाहमें पवित्रताका भाव नहीं रह जाता। इसका यह अर्थ हुआ कि जिन सामाजिक आदर्शोंकी आज तक एक अतिशय मूल्यवान निधिके रूपमें कीमत की जाती रही है उनका मूल्य घट जाता है। बेशक यह दलील उन लोगोंके मन पर तो शायद ही कोई असर करेगी जो विवाहके पुराने आदर्शोंको अन्धविश्वाससे अधिक कुछ नहीं मानते। मेरी दलील उनके लिए नहीं है। यह तो उन्हीं लोगोंके लिए है जो विवाहको एक पवित्र संस्कार मानते हैं और स्त्रीको पशु-तुल्य विषय वासनाकी तृप्तिका साधन नहीं बल्कि मनुष्यकी माता और अपनी संततिके शील और सदाचारकी वाली मानते हैं।

संयम-पालनका मेरा और मेरे साथियोंका अनुभव मैंने यहाँ जो विचार पेश किया है उसमें मेरे विश्वासको दृढ़ करता है। विवाहकी प्राचीन कल्पनाका मर्म मैं नये प्रकाशमें देख सका हूँ और उससे मेरे इस विचारको बहुत बल मिला है। अब मुझे इस बातकी पूरी प्रतीति हो गयी है कि विवाहित जीवनमें ब्रह्मचर्यका स्वाभाविक और अनिवार्य स्थान है। यह उतनी ही सीधी और सरल वस्तु है जितना कि खुद विवाह है। संतति-नियमनकी कोई दूसरी पद्धति मुझे व्यर्थ और अकल्पनीय मालूम होती है। जननेन्द्रियका एकमात्र और उदात्त कार्य प्रजोत्पादन है। यह सत्य जहाँ एक बार स्त्री और पुरुषके मनमें उतरा कि वे किसी भिन्न उद्देश्यके लिए किये गये समागमको वीर्यशक्तिका दण्डनीय दुर्व्यय मानेंगे और इस सिलसिलेमें स्त्री और पुरुष दोनोंके विकारोंका जो उद्दीपन होता है उसे भी अपनी इस बहुमूल्य शक्तिका उतना ही बड़ा दुर्व्यय मानेंगे। अब यह सहज ही समझमें आयेगा कि प्राचीन वैज्ञानिकोंने वीर्यकी रक्षाको इतना महत्त्व क्यों दिया है और समाजके कल्याणके लिए उसका उच्चतम शक्तिमें रूपान्तर करनेका आग्रह क्यों किया है। वे दृढ़ विश्वासके साथ घोषित करते हैं कि जो व्यक्ति — पुरुष या स्त्री — अपनी वीर्यशक्ति पर पूरा नियंत्रण पा लेता है वह शारीरिक मानसिक और आध्यात्मिक — अपनी सम्पूर्ण सत्ताको बलवान बनाता है और ऐसी शक्तियाँ प्राप्त करता है, जो अन्य किसी साधन द्वारा नहीं प्राप्त की जा सकतीं।

ऐसे महान ब्रह्मचारियोंके जीवित उदाहरण अधिक संख्यामें नहीं मिलते या बिलकुल ही नहीं मिलते इस बातसे पाठकोंको विचलित नहीं होना चाहिये। हम जिन ब्रह्मचारियोंको आज अपने आसपास देखते हैं वे बहुत ही अधूरे नमूने हैं। अधिकसे अधिक वे ब्रह्मचर्यके साधक होते हैं उनका अपने शरीर पर काबू होता है किन्तु मन पर नहीं। इन्द्रिय सुखके लालचसे वे परे हो गये हों ऐसी उनकी स्थिति नहीं होती। लेकिन इसका कारण यह नहीं है कि ब्रह्मचर्यकी सिद्धि इतनी असाध्य है। एक कारण इसका यह है कि सामाजिक वातावरण उनके इस प्रयत्नके आड़े आता है दूसरे जो लोग इस दिशामें ईमानदारीसे कोशिश करते हैं

उनमें से अधिकांश अनजान ही इस विशेष विकारके निर्मूलनकी कोशिश इसे अन्यान्य विकारोंसे अलग मानकर करते हैं जब कि यह कोशिश सफल तभी हो सकती है जब वह उसके साथ ही साथ अन्य सब विकारोंको जीतनेके लिए भी हो। यह सच है कि ब्रह्मचर्यका पालन सामान्य स्त्री-पुरुषोंके लिए कठिन नहीं है। परन्तु इस कारणसे ऐसा नहीं मानना चाहिये कि किसी सामान्य कोटिके विद्यार्थीको विज्ञानकी किसी विशिष्ट शाखामें निष्णात होनेके लिए जितना प्रयत्न करना पड़ता है उसकी अपेक्षा ब्रह्मचर्यकी साधनामें कुछ कम प्रयत्न करना पड़ता है। यहां जिस ब्रह्मचर्यकी बात कही गई है, वैसे ब्रह्मचर्यकी साधना तो जीवन शास्त्रमें पारंगत होनेकी साधना है।

हरिजन २१-३-३६

२१

प्रयोग-नलीके बालक

प्र० — आप कहते हैं कि मातृत्व तो उदात्त है पवित्र करनेवाला है परन्तु विषय-वासना बुरी चीज है। आध्यात्मिक दृष्टि तथा सुप्रजननकी दृष्टिसे क्या आप यह स्वीकार नहीं करते कि प्रयोग-नलीके मार्गसे बालक उत्पन्न करनेकी जो नई रीति निकली है वह आदर्श है क्योंकि उसकी वजहसे प्रजोत्पत्तिके लिए काम-विकार तथा विषय-वासनाका अस्तित्व ही खतम हो जाता है?

उ० — आपकी इस नई रीतिसे यदि विषय-वासनाका ही अन्त हो जाता हो तो मैं जरूर उसके साथ सहमत हो सकता हूं। परन्तु जब तक मेरा यह विचार बना हुआ है कि विषय-वासना पुरुष अथवा स्त्रीको उसकी सर्वोच्च आध्यात्मिक दशा प्राप्त नहीं करने देती तब तक तो मैं प्रजोत्पत्तिकी इन कृत्रिम रीतियोंके खिलाफ विद्रोह करूंगा ही। मेरी मान्यताके अनुसार आपकी इस नई रीतिका परिणाम मानव-प्राणी उत्तम बनाना नहीं आयगा परन्तु जिस काम-विकारको अपने वश करनेमें

मनुष्योंको नीरस अनुभव करना चाहिए उस विकारके समुद्रमें डूबे हुए बुद्धिविहीन मूर्ख या राक्षस उत्पन्न करनेमें ही आयेगा। परन्तु मैं यह स्वीकार करता हूं कि मैं जिस युगका मनुष्य हूं उस युगका शायद अस्त हो रहा है। जो नया युग आयेगा उसमें मनुष्य यदि पांव भी पैदल चलेंगे तो केवल आनन्दके लिए चलेंगे परन्तु काम करनेके लिए तो वे पहियोंवाली सवारीमें बैठकर या विमानमें उड़कर ही जायंगे तथा विवाहकी प्रथा और उसके भीतरकी सारी मर्यादायें नष्ट हो जायगी। परन्तु उस युगका विचार करनेसे मेरे मनमें कोई उत्साह उत्पन्न नहीं होता।

हरिजनबन्धु, २१-९-'४

२२

विवाहित ब्रह्मचर्य

एक सज्जन लिखते हैं :

आपके विचारोंको पढ़कर मैं बहुत समयसे यह मानता आया हूं कि सन्तति-नियमनके लिए ब्रह्मचर्य ही एकमात्र सर्वश्रेष्ठ उपाय है। संभोग केवल सन्तानेच्छासे प्रेरित होकर ही होना चाहिए बिना सन्तानेच्छाका संभोग पाप है — इन बातोंको सोचते हुए तो कई प्रश्न उपस्थित होते हैं। संभोग सन्तानके लिए किया जाय यह ठीक है परन्तु एक दो बारके संयोगसे सन्तान न हो तो? ऐसे मनुष्यको मर्यादापूर्वक किस सीमाके अन्दर रहना चाहिए? एक दो बारके संयोगमें सन्तान चाहे न हो लेकिन आगे चलकर फिर होती है? इस प्रकार बीसियों बार करने पर असफलता भी हो सकती है। ऐसी स्थितिमें क्या यह कहा जाय कि ईश्वरकी इच्छा सन्तोत्पत्तिके विरुद्ध होनेके कारण उसे संभोगका त्याग कर देना चाहिए? ऐसे त्यागके लिए तो बड़ी आध्यात्मिकताकी आवश्यकता है। ऐसे भी उदाहरण देखनेमें आये हैं कि सन्तान सारी आयु न होकर उत्तरावस्थामें हुई है इसलिए आशाका त्याग

कितना कठिन है! यह कठिनाई तब और भी बढ़ जाती है जब दोनों स्त्री और पुरुष पूर्ण स्वस्थ और रोगसे मुक्त हों।"

यह कठिनाई अवश्य है लेकिन ऐसी बातें मुश्किल तो हुआ ही करती हैं। मनुष्य अपनी उन्नति बगैर कठिनाईके कैसे कर सकता है? हिमालय पर चढ़नेके लिए जैसे जैसे मनुष्य आगे बढ़ता है कठिनाई बढ़ती ही जाती है। यहां तक कि हिमालयके सबसे ऊंचे शिखर पर आज तक कोई पहुंच नहीं सका है। इस प्रयत्नमें कई मनुष्योंने मृत्युकी भेंट की है। हर साल चढ़ाई करनेवाले नये नये पुरुषार्थी तैयार होते हैं और निष्फल भी होते हैं फिर भी इस प्रयासको वे छोड़ते नहीं। विषयेन्द्रियोंका दमन हिमालय पहाड़ पर चढ़नेसे तो कठिन है ही लेकिन उसका परिणाम भी कितना ऊंचा है! हिमालय पर चढ़नेवाला मनुष्य कुछ कीर्ति पायेगा अधिक सुख पायेगा इन्द्रियजित मनुष्य आत्मानन्द पायेगा और उसका आनन्द दिन प्रतिदिन बढ़ता जायेगा। ब्रह्मचर्यशास्त्रमें तो ऐसा नियम माना गया है कि पुरुष-वीर्य कभी निष्फल होता ही नहीं और होना भी नहीं चाहिये। और जैसा पुरुषके लिए है वैसा ही स्त्रीके लिए भी है इसमें कोई आश्चर्यकी बात नहीं है। जब पुरुष निर्विकार होते हैं तब वीर्यहानि असम्भवित हो जाती है और भोगेच्छाका सर्वथा नाश हो जाता है। और जब पति-पत्नी सन्तानकी इच्छा करते हैं तभी एक-दूसरेका मिलन होता है। और यही अर्थ गृहस्थाश्रमीके ब्रह्मचर्यका है। अर्थात् स्त्री-पुरुषका मिलन सिर्फ सन्तानोत्पत्तिके लिए ही उचित है, भोगतृप्तिके लिए कभी नहीं। यह हुई नियमकी बात अथवा आदर्शकी बात। यदि हम इस आदर्शको स्वीकार करें तो हम समझ सकते हैं कि भोगेच्छाकी तृप्ति अनुचित है और हमें उसका यथोचित त्याग करना चाहिये। यह ठीक है कि आज कोई इस नियमका पालन नहीं करते। आदर्शकी बात करते हुए हम अपनी अशक्तिका बचाव नहीं कर सकते। लेकिन आजकल भोगतृप्तिको आदर्श बताया जाता है। ऐसा आदर्श कभी हो ही नहीं सकता यह स्वयंसिद्ध है। यदि भोग आदर्श है तो उसे मर्यादा नहीं होनी चाहिये। अमर्यादित भोगसे नाश होता है यह सभी स्वीकार करते हैं। त्याग ही आदर्श हो सकता है और प्राचीन कालसे रहा है।

मेरा कुछ ऐसा विश्वास बन गया है कि ब्रह्मचर्यके नियमोंको हम जानते नहीं हैं, इसलिए बड़ी आपत्ति पैदा होती है और ब्रह्मचर्य-पालनमें हम अनावश्यक कठिनाई महसूस करते हैं। अब जो आपत्ति मुझे पत्र लिखनेवालेने बताई है वह आपत्ति ही नहीं रहती है, क्योंकि सिर्फ संततिके कारण तो एक ही बार मिलन हो सकता है। अगर वह निष्फल गया तो दुबारा उन स्त्री-पुरुषोंका मिलन होना ही नहीं चाहिए। इस नियमको जाननेके बाद इतना ही कहा जा सकता है कि जब तक स्त्रीने गर्भ धारण नहीं किया तब तक प्रत्येक ऋतुकालके बाद जिस समय तक गर्भ धारण नहीं हुआ है उसी समय तक प्रतिमास एक बार स्त्री-पुरुषका मिलन क्षम्य हो सकता है और वह मिलन भोगवृत्तिके लिए किया हुआ न माना जाय। मेरा यह अनुभव है कि जो मनुष्य मनसे और कार्यसे विकार रहित होता है उसे मानसिक अथवा शारीरिक व्याधियोंका किसी प्रकारका डर नहीं होता। इतना ही नहीं बल्कि ऐसे निर्विकार व्यक्ति व्याधियोंसे भी मुक्त होते हैं, और इसमें कोई आश्चर्यकी बात नहीं है। जिस वीर्यसे मनुष्य जैसा प्राणी पैदा हो सकता है उसके अविच्छिन्न संग्रहसे अमाप शक्ति पैदा होनी ही चाहिए। यह बात शास्त्रोंमें तो कही ही गई है, लेकिन हरएक मनुष्य इस बातको सिद्ध कर सकता है। और जो नियम पुरुषोंके लिए है वही स्त्रियोंके लिए भी है। सच्ची कठिनाई सिर्फ यह है कि मनुष्य मनसे विकारमय रहते हुए भी शरीरसे विकार रहित होनेकी व्यर्थ आशा रखता है और इससे मन और शरीर दोनोंको क्षीण करता हुआ गीताकी भाषामें मूढ़ात्मा और मिथ्याचारी बनता है।

हरिजनसेवक, ११-३-३

१ पुराने इतिहासमें इसका सबसे सुन्दर उदाहरण शायद पार्वतीपुरकी रानी दुर्गावतीबाईका है। वह रानी अपने सौन्दर्य और शीलके लिए भी उतनी ही प्रसिद्ध है। किंवदन्ती उसके बारेमें कहती है कि वह केवल गर्भाधानके लिए ही अपने पतिका समागम करती थी। उसकी आशा सफल न होती तो वह दूसरे महीने फिर अपना यह प्रयोग करती थी।

— प्यारेलाल

२३

इसका कारण

अजमेरसे एक सज्जन लिखते हैं

आप कहते हैं कि विवाहित दम्पतिको तभी संभोग करना चाहिये जब दोनोंकी इच्छा सन्तान पैदा करनेकी हो। लेकिन कृपा करके यह तो बतलाइये कि सन्तान पैदा करनेकी इच्छा किसीको क्यों रखनी चाहिये? बहुतसे लोग माता-पिताकी जिम्मेदारीको पूरी तरह समझे बिना ही सन्तानोत्पत्तिकी इच्छा रखते हैं और दूसरे बहुतसे लोग अच्छी तरह यह जानते हुए भी कि वे माता पिताकी जिम्मेदारियोंको पूरा करनेमें असमर्थ हैं सन्तानकी इच्छा रखते हैं। बहुतसे ऐसे लोग भी सन्तान पैदा करना चाहते हैं जो शारीरिक और मानसिक दृष्टिसे संतानोत्पत्तिके अयोग्य हैं। क्या आप यह नहीं मानते कि ऐसे लोगोंका सन्तान उत्पन्न करना गलत है?

सन्तानकी इच्छाके पीछे मनुष्यका हेतु क्या रहा होगा यह मैं जानना चाहता हूं। बहुतसे लोग इसलिए सन्तानकी इच्छा करते हैं कि वे उनकी सम्पत्तिके उत्तराधिकारी बनें और उनके जीवनकी नीरसताको मिटाकर उसे आनन्दमय बनायें। कुछ लोग इस भयसे पुत्रकी इच्छा करते हैं कि पुत्र न हुआ तो मृत्युके बाद उनके लिए स्वर्गके द्वार नहीं खुल सकेंगे। क्या इन सबका सन्तानकी इच्छा करना गलत नहीं है?

किसी बातके कारणोंकी खोज करना अच्छा है लेकिन हमेशा उनका पता लगा लेना संभव नहीं है। संतानकी इच्छा विश्वव्यापी है। लेकिन अपने वंशजोंके द्वारा स्वयंको अमर बनानेकी मनुष्यकी इच्छा अगर पर्याप्त और संतोषजनक कारण न हो तो इसका कोई दूसरा संतोषजनक कारण मैं नहीं जानता। लेकिन संतान पैदा करनेकी इच्छाका जो कारण

मैंने बतलाया है वह अगर काफी संतोषजनक न मालूम हो तो भी मैं जिस बातका प्रतिपादन करता हूं उसमें कोई दोष नहीं आता। इस इच्छाका अस्तित्व तो मनुष्यके मनमें रहता ही है। यह स्वाभाविक मालूम होती है। मैं इस दुनियामें पैदा हुआ इसका मुझे कोई दुःख नहीं है। मुझमें जो उत्तम तत्त्व है उसकी सन्तानके रूपमें पुनरावृत्ति होनेकी इच्छा रखना मेरे लिए अधर्मकी बात नहीं है। कुछ भी हो जब तक सन्तानोत्पत्तिमें ही मुझे कोई पाप न दिखाई दे और जब तक मुझे खाली आनन्दके लिए सभोग करना भी उचित न लगे तब तक मुझे यही मानना चाहिये कि सभोग तभी उचित है जब वह संतानोत्पत्तिकी इच्छासे किया जाय। मैं समझता हू कि स्मृतिकार इस बारेमें इतने स्पष्ट थे कि मनुने प्रथम सन्तानको ही धर्मज कहा है बादमें उत्पन्न होनेवाली सन्तानको कामज कहा है। इस विषयमें अनासक्त भावसे मैं जितना अधिक सोचता हूं उतना ही अधिक मेरा इस बातमें विश्वास बढ़ता जाता है कि इस प्रश्न पर मेरी जो वृत्ति है और जिस पर मैं आचरण करता हू वही सही है। मुझे यह दिनोंदिन अधिक स्पष्ट होता जा रहा है कि इस विषयमें हमारा अज्ञान ही सारी कठिनाईकी जड है। इसके साथ अनावश्यक गुप्तता और जुड जाती है। इस विषयमें हमारे विचार स्पष्ट नहीं हैं। परिणामोंका सामना करनेसे हम डरते हैं। हम अधूरे उपायोंका उन्हें सम्पूर्ण या अन्तिम मानकर सहारा लेते हैं और इस प्रकार उन्हें आचरणके लिए बहुत कठिन बना देते हैं। अगर इस विषयमें हमारे विचार स्पष्ट हों अगर अपनी स्थितिका हमें विश्वास हो तो हमारी वाणी और हमारे आचरणमें दृढ़ता होगी।

इस प्रकार अगर मुझे इस बातका विश्वास हो कि जो भोजन मैं करता हूं उसका प्रत्येक कौर शरीरको बनाने और टिकाये रखनेके ही लिए है तो मैं जीभके स्वादके खातिर कभी खानेकी इच्छा नहीं रखूंगा इतना ही नहीं मैं यह भी समझूंगा कि अगर भूख मिटाने या शरीरको टिकाये रखनेकी दृष्टिको छोड़कर कोई चीज सुस्वादु होनेके कारण ही मैं खाना चाहू तो वह रोगकी निशानी होगी इसलिए मुझे इस रोगको मिटानेका उपचार करना चाहिये वह उचित या स्वास्थ्यप्रद वस्तु है

ऐसा मानकर उसे तृप्त करनेका मुझे विचार नहीं करना चाहिये। इ
तरह यदि मुझे इस बातका पक्का विश्वास हो कि प्रजोत्पत्तिकी स्
इच्छाके बिना संभोग करना अनुचित है और शरीर, मन तथा आत्म
लिए विनाशक है तो इस इच्छाका दमन करना मेरे लिए निरि
रूपसे आसान हो जायेगा। अगर मेरे मनमें यह बात स्पष्ट न हो
केवल विषय-वासनाकी तृप्ति उचित और हितकारी है या नहीं है
यह दमन कहीं ज्यादा कठिन होगा। यदि मुझे ऐसी इच्छाके अ
और अनुचित होनेका स्पष्ट भान हो तो म उसे एक तरहकी बीम
समझूंगा और अपनी पूरी शक्ति लगाकर उसके आक्रमणोंका साम
करूंगा। तब मैं अपनेको ऐसे विरोधके लिए अधिक शक्तिशाली अनु
करूंगा। जो लोग यह दावा करते हैं कि हमें यह बात पसन्द तो नहीं
लेकिन हम लाचार हैं वे केवल गलत ही नहीं कहते हैं बल्कि झूठ
कहते हैं और इसलिए विरोधमें वे कमजोर साबित होते हैं तथा मो
हार जाते हैं। अगर ऐसे सब लोग आत्म-निरीक्षण करें, तो उन्हें माल
होगा कि उनके अपने विचार उन्हें धोखा देते हैं। उनके विचारोंमें का
वासना रहती है और उनकी वाणी उनके विचारोंको गलत रूपमें प्र
करती है। दूसरी ओर, यदि उनकी वाणी उनके विचारोंको सच्चे रू
प्रकट करे, तो उनके भीतर कमजोरी जैसी कोई बात हो ही नहीं सकती
हार शायद हो सकती है, लेकिन कमजोरी कभी नहीं हो सकती।

इन लेखकने अस्वस्थ माता-पिताओं द्वारा की जानेवाली प्रजोत्पत्ति
लिए जो आपत्ति उठायी है वह बिलकुल ठीक है। उन्हें प्रजोत्पत्ति
कोई इच्छा नहीं हो सकती या नहीं होनी चाहिये। अगर वे यह कहें
हम प्रजोत्पत्तिके लिए ही संभोग करते हैं तो वे अपनेको और संसार
धोखा देते हैं। किसी भी विषय पर विचार करते समय सत्यका हमें
सहारा लेना पड़ता है। संभोगके सुखको छिपानेके लिए प्रजोत्पत्ति
इच्छाका बहाना कभी न लेना चाहिये।

हरिजन २४-४-३७

२४

कृत्रिम सन्तति नियमनके पक्षमें

एक पत्रलेखक लिखते हैं

अभी अभी 'हरिजन' में श्रीमती सेंगर और महात्मा गांधीकी मुलाकातका जो विवरण प्रकाशित हुआ है, उसके बारेमें मैं कुछ शब्द कहना चाहता हूं।

मैं देखता हूं कि इस बातचीतमें एक मुख्य बातकी ओर ध्यान नहीं दिया गया है। वह यह है कि मनुष्य सबसे ऊपर एक कलाकार और सर्जक है। वह जीवनकी प्राथमिक आवश्यकताओंकी पूर्तिसे ही सतोष नहीं करता बल्कि सुन्दरता रस-विरंजन और आकर्षण भी उसके लिए आवश्यक होता है। मुहम्मद साहबने कहा है कि अगर तेरे पास एक ही पैसा हो तो उससे तू रोटी खरीद ले लेकिन अगर दो पैसे हों तो एकसे रोटी और एकसे फूल खरीदना। इसमें एक महान मनोवैज्ञानिक सत्य निहित है— वह यह कि मनुष्य स्वभावतः कलाकार है। इसीलिए हम देखते हैं कि वह अपने वस्त्र केवल शरीरको ढकनेकी दृष्टिसे ही तैयार नहीं करता किन्तु उन्हें रस-विरंग और बेल-बूटेवाले भी बनाता है। उसने तो अपनी प्रत्येक आवश्यकताको कलाका रूप दे रखा है और उन कलाओंके खातिर मनों धूल बहाया है। मनुष्यकी सर्जक बुद्धि नई नई कठिनाइयों और समस्याओंको पैदा करके उनका हल निकालनेके लिए उसे प्रेरित करती रहती है। रस्किन टॉल्स्टॉय थोरो और गांधी उसे जैसा सरल और सादा बनाना चाहते हैं वैसा वह बन नहीं सकता। मुख भी उसके लिए एक आवश्यक चीज है और उसे भी उसने एक महान कलाके रूपमें परिणत कर दिया है।

कुदरतका उदाहरण देकर उससे कुछ कहना व्यर्थ है, क्योंकि उसका तो मनुष्यके जीवनसे बिल्कुल मेल नहीं खाता है। कुदरत उसकी शिक्षिका नहीं बन सकती। जो लोग कुदरतका उदाहरण

देते हैं वे यह भूल जाते हैं कि कुदरतमें केवल पर्वत उपत्यकाएं और कुसुम-क्यारियां ही नहीं हैं। बल्कि बाढ़ झंझावात और भूकम्प भी हैं। कट्टर निराकारवादी मीत्येश कहता है कि कलाकारकी दृष्टिसे कुदरत कोई आदर्श नहीं है। उसमें अतिशयता विकृति और अधूरापन है। कुदरत तो एक आकस्मिक घटना है। कुदरत से अध्ययन करना मुझे कोई अच्छा चिह्न नहीं मालूम होता क्योंकि इस प्रकार नगण्य वस्तुओंके सामने नम्र बनकर झुकना एक पूर्ण कलाकारको शोभा नहीं देता। जिस प्रकारकी कला-विरोधी — निरी यथार्थवादी वृत्तियोंके कार्यको देखनेके लिए क्या यह आवश्यक है कि मनुष्य यह जाने कि वह क्या है? हम यह जानते हैं कि जंगली जानवर अपने शरीरको बनाये रखनेकी आवश्यकताके कारण कच्चा मांस खाते हैं स्वादके लिए नहीं। यह भी हम जानते हैं कि कुदरतमें पशुओंके समयसमयकी ऋतुएं होती हैं। इन ऋतुओंके अतिरिक्त उनके बीच कभी मैथुन होता ही नहीं। लेकिन उसी दार्शनिकके कथनानुसार यह मनुष्यको जो स्वभावतः अच्छा कलाकार है शोभा नहीं देता। इसलिए जब सन्तानोत्पत्तिकी आवश्यकता न रहे तब मैथुन-कार्यको बन्द कर देना या केवल सन्तानोत्पत्तिकी स्पष्ट इच्छासे प्रेरित होकर ही मैथुन करना — इसमें इतना हिसाबीपन कुदरतकी इतनी अधीनता तथा इतनी अधिक कल्पनाहीनता है कि यह मनुष्यके कलाप्रेमी स्वभावको अपील नहीं कर सकता। इसलिए वह तो स्त्री-पुरुषके प्रेमको एक बिलकुल दूसरे पहलूसे देखता है — ऐसे पहलूसे जिसका संतान-वृद्धिसे कोई सबंध नहीं। यह बात हैवलॉक एलिस और मेरी स्टोप्स जैसे मिथ्यातोंके कथनोंसे स्पष्ट होती है। यह इच्छा यद्यपि आत्मासे उत्पन्न होती है लेकिन वह शारीरिक संयोगके बिना अपूर्ण रह जाती है। यह उस समय तक बनता रहेगा जब तक हम आत्माको स्वतंत्र रूपसे प्राप्त नहीं कर सकते और उसकी प्राप्तिके लिए शरीर-संबंधको आवश्यकताको समझते हैं। ऐसे संभोगके परिणामका सामना करना बिलकुल दूसरी समस्या है। और इसे हल करना संतति-नियमनके

आन्दोलनका काम है। लेकिन यह काम अगर बाह्य मन-नियमके द्वारा स्वयं आत्माकी पुनर्व्यवस्था पर छोड़ दिया जाय — और आत्म-संयमका अर्थ इसके अतिरिक्त दूसरा कुछ नहीं है — तो हम यह आशा नहीं रख सकते कि उससे जिन उद्देश्योंकी पूर्ति होनी चाहिये वे सब पूरे हो जायंगे। न इससे सुदृढ़ मनोवैज्ञानिक आधारके बिना सन्तति-नियमन ही हो सकता है।

अपनी बातको समाप्त करनेसे पहले मैं इतना और कहूंगा कि आत्म-संयम या ब्रह्मचर्यका महत्त्व मैं किसी प्रकार कम नहीं करना चाहता। विषय-वासनाके नियमनको पूर्णता पर ले जानेवाली कलाके रूपमें मैं हमेशा उसकी सराहना करूंगा। लेकिन जैसे अन्य कलाओंकी सम्पूर्णता हमारे जीवन-विज्ञानमें (और गीताके अनुसार) हमारे सम्पूर्ण जीवनमें जीवनके समस्त मूल्योंकी उपयुक्त योजनामें कोई हस्तक्षेप नहीं करती वैसे ही ब्रह्मचर्यके आदर्शके मूल्यको मैं दूसरे मूल्यों पर प्रमुख नहीं जमाने दूंगा — जनसंख्याकी वृद्धि जैसी समस्याएं हल करनेमें तो मैं उसका उपयोग और भी कम करूंगा। हमने इसका कैसा ढोंग बना डाला है! युद्धकालीन बच्चोंके बारेमें तो हम जानते ही हैं। जिन सैनिकोंने अपना खून बहाकर अपने देशवासियोंके लिए समरांगणमें विजय प्राप्त की उन्हें क्या हम इसीलिए विजयका श्रेय नहीं देंगे कि उन्होंने युद्धकालमें भी बच्चे पैदा कर डाले? नहीं, ऐसा कोई नहीं कहेगा। मैं समझता हूं कि इन बातोंको ध्यानमें रखकर ही शास्त्रों (प्रश्नोपनिषद्) में यह कहा गया है कि ब्रह्मचर्यमेव तद् यद् रात्रौ रत्या संयुज्यते। अर्थात् केवल रात्रिमें ही (यानी दिनके असाधारण समयको छोड़कर) सहवास किया जाय तो वह ब्रह्मचर्य ही है। यहां साधारण विषय तृप्तिके जीवनको भी ब्रह्मचर्यके ही समान बताया गया है। ब्रह्मचर्यकी कठोर कल्पना तो जीवनके विविध मूल्योंमें उलट-फेर करनेके फल-स्वरूप ही उत्पन्न हुई है।

कोई भी ऐसा पत्र जिसमें कोरा धर्माडम्बर, गाली-गलौज या आरोप आक्षेप न हो मैं सहर्ष प्रकाशित करूंगा जिससे पाठकोंके सामने समस्याके

दोनों पहलू आ जायें और वे अपने-आप किसी निर्णय पर पहुंच सकें। इसलिए इस पत्रको मैं बड़ी खुशीके साथ प्रकाशित करता हूं। खुद मैं भी यह जाननेके लिए उत्सुक हूं कि जिस बातके वैज्ञानिक और हितकारी होनेका दावा किया जाता है तथा अनेक प्रमुख व्यक्ति जिसका समर्थन करते हैं उसका उज्ज्वल पक्ष देखनेकी कोशिश करने पर भी मुझे उससे इतनी घृणा क्यों होती है?

विवाहित जीवनमें संभोगकी क्रिया अच्छी चीज है और उससे संभोग करनेवाले पति-पत्नीको लाभ होता है, यह बात मुझे संतोष हो इस प्रकार सिद्ध नहीं हो सकी है। हां अपने खुदके तथा अपने दूसरे अनेक मित्रोंके अनुभव परसे इसके विपरीत बात मैं जरूर कह सकता हूं। हममें से किसीने भी संभोगके द्वारा कोई मानसिक आध्यात्मिक और शारीरिक उन्नति की हो ऐसा मैं नहीं जानता। क्षणिक उत्तेजना और संतोष तो उससे अवश्य मिला लेकिन उसके बाद ही थकावट भी जरूर लगी। और जैसे ही उस थकावटका असर मिटा कि संभोगकी इच्छा तुरन्त ही फिर जाग्रत हो गई। यद्यपि मैं सदासे जागरूक रहा हूं फिर भी मुझे अच्छी तरह याद है कि इस विकारसे मेरे कामोंमें बड़ी बाधा पड़ी है। इस मर्यादाका भान होनेसे ही मैंने आत्म-संयमका रास्ता पकड़ा और इसमें संदेह नहीं कि दूसरोंकी तुलनामें काफी लम्बे समय तक मैं जो बीमारीसे बचा रहता हूं और इतना अधिक और विविध प्रकारका शारीरिक तथा मानसिक काम कर सकता हूं — जिसे देखनेवालोंने अद्भुत बतलाया है — उसका कारण मेरा यह आत्म-संयम या ब्रह्मचर्य-पालन ही है।

मुझे भय है कि उक्त पत्रलेखकने जो-कुछ कहा है उसका उन्होंने गलत स्थान पर उपयोग किया है। इसमें कोई शक नहीं कि मनुष्य कलाकार और सर्जक है। सुन्दरता और रंग-विन्यास भी उसे अवश्य ही चाहिये। लेकिन मनुष्यके कलात्मक और सर्जक स्वभावने अपने सर्वोत्तम रूपमें उसे यही सिखाया है कि वह आत्म-संयममें कलाका और असर्जक (जो सन्तानोत्पत्तिके लिए न हो) सहवासमें अ-सुन्दरताका दर्शन करे। मनुष्यमें कलाकी जो भावना है उसने उसे विवेकपूर्वक यह जाननेकी शिक्षा दी

है कि विविध रसोंका चाहे जैसा नियमन सौंदर्यका चिह्न नहीं है और न हर तरहका विषय-भोग अपने-आपमें कोई अच्छी वस्तु है। कलाकी और उसकी जो दृष्टि है उसने उसे यह सिखाया है कि वह उपयोगितामें ही आनन्दकी खोज करे, यानी वही आनन्दोपभोग करे जो हितकर हो। इस प्रकार अपने विकासके प्रारंभिक कालमें ही उसने यह जान लिया था कि खानेके लिए ही उसे खाना नहीं खाना चाहिये जैसा कि हममें से कुछ लोग आज भी करते हैं बल्कि इसलिए खाना चाहिये कि वह जीवित रहे। बादमें उसने यह भी जाना कि जीवित रहनेके लिए ही उसे जीवित नहीं रहना चाहिये बल्कि अपने मानव-बन्धुओंकी सेवाके लिए और उनके द्वारा परम प्रभुकी सेवाके लिए उसे जीवित रहना चाहिये। इसी प्रकार जब उसने विषय-भोगके आनन्दकी बात पर विचार किया तो उसे मालूम पड़ा कि अन्य प्रत्येक इन्द्रियकी भांति जननेन्द्रियका भी उपयोग और दुरुपयोग होता है और उसका सदुपयोग इसीमें है कि केवल सन्तानोत्पत्तिके लिए ही सहवास किया जाय। इसके सिवा और किसी प्रयोजनसे किया जानेवाला सहवास असुन्दर है और ऐसा करनेवाले व्यक्ति और उसकी जातिके लिए उसके बहुत भयंकर परिणाम हो सकते हैं। मैं समझता हूं कि अब इस दलीलको और आगे बढ़ानेकी कोई जरूरत नहीं।

उक्त पत्रलेखकका यह कहना ठीक ही है कि मनुष्य आवश्यकताओंसे कलाकी रचना करता है। इस प्रकार आवश्यकता न केवल आविष्कारकी जननी है बल्कि कलाकी भी जननी है। इसलिए जिस कलाका आधार आवश्यकता नहीं है उससे हमें सावधान रहना चाहिये।

साथ ही अपनी हरएक इच्छाको हमें आवश्यकताका प्रतिष्ठित नाम नहीं देना चाहिये। मनुष्यकी स्थिति तो एक प्रकारसे प्रयोगात्मक है। इस बीच आसुरी और दैवी दोनों प्रकारकी शक्तियां उस पर अपना प्रभुत्व जमानेका प्रयत्न करती हैं। किसी भी समय वह प्रलोभनका शिकार हो सकता है। अतः प्रलोभनोंसे लड़ते हुए उनका विरोध करते हुए उसे अपना पुरुषार्थ सिद्ध करना चाहिये। जो अपने माने हुए बाहरी शत्रुओंसे तो लड़ता है, किन्तु अपने अन्दरके विविध शत्रुओंके आगे अंगुली भी नहीं उठा सकता या उन्हें अपना मित्र समझनेकी गलती करता है, वह सच्चा

योद्धा नहीं है। उसे युद्ध तो करना ही चाहिये। लेकिन उक्त पत्र लेखकका यह कहना गलत है कि उसे भी उसने (मनुष्यने) एक महान कलाके रूपमें परिणत कर दिया है। क्योंकि युद्धकी कला तो मनुष्यने अभी शायद ही सीखी है। उसने झूठे युद्धको उसी तरह सच्चा मान लिया है जैसे हमारे पूर्वजोंने बलिदानका गलत अर्थ लगाकर अपनी दुर्वासनाओंके बजाय बेचारे निर्दोष पशुओंका बलिदान शुरू कर दिया था। आज भी अनेक लोग ऐसा करते हैं। अबिसीनियाकी सीमामें आज जो कुछ हो रहा है, उसमें निश्चय ही न तो कोई सौंदर्य है और न कोई कला। उक्त पत्रलेखकने उदाहरणके लिए जो नाम चुने हैं वे भी युद्धमेंसे उनकी ो करते क्योंकि रूसो रस्किन थोरो और टॉल्स्टॉय तो अपने समयमें प्रथम श्रेणीके कलाकार थे और हममें से अनेकोंके मरकर भुला दिये जानेके बाद भी वे लोग जीवित रहेंगे।

पत्रलेखकने 'कुदरत' शब्दका सही उपयोग किया मालूम नहीं होता। कुदरतका अनुसरण या अध्ययन करनेके लिए जब मनुष्यसे कहा जाता है तब उसका मतलब यह नहीं होता कि वह कीड़े-मकोड़ोंका या वनराज सिंहके आचरणका अनुसरण करे। उसे मनुष्यकी उत्तम प्रकृतिका अर्थात् मैं मानता हूं कि मनुष्यकी सत्कृत और परिशुद्ध उदात्त प्रकृतिका — फिर वह जैसी भी हो — अध्ययन करनेकी बात कही जाती है। शायद मनुष्यकी इस परिशुद्ध प्रकृतिको जाननेके लिए महाप्रयत्न करना आवश्यक है। मैं पत्रलेखकसे यह कहना चाहता हूं कि इस चर्चामें गीतासे या प्रश्नोपनिषद्को भी लाना जरूरी नहीं है। मेरे लिए यह प्रश्न उद्धरणोंसे सतीव प्राप्त करनेकी भूमिकासे परे पहुंच गया है। हम जिस प्रश्नकी चर्चा कर रहे हैं उस पर शुद्ध तर्कको क्या कहना है? यह कहना सही है या नहीं कि जननेन्द्रियका एकमात्र सदुपयोग यही होगा कि उसे सन्तानोत्पत्ति तक मर्यादित रखा जाय और उसका दूसरा कोई उपयोग दुरुपयोग होगा? अगर यह सही हो तो वैज्ञानिक शोधकको इस इन्द्रियका सदुपयोग करने और दुरुपयोगको टालनेमें आनेवाली बड़ीसे बड़ी कठिनाईसे भी घबराना नहीं चाहिये।

हरिजनसेवक ८–८–३६

२५

स्त्री-सुधारकोंके लिए

एक सज्जनके साथ हुई अपनी एक गंभीर चर्चामें मैंने देखा कि कृत्रिम उपायोंके उपयोगके बारेमें मेरी जो स्थिति है उसे अभी तक अच्छी तरह समझा नहीं गया है। मैं उनका विरोध इसलिए नहीं करता कि वे उपाय पश्चिमसे हमारे यहां आये हैं। जब मैं जानता हूं कि कुछ पश्चिमी वस्तुओंसे हमें उसी तरह लाभ होगा जैसे पश्चिमको हुआ है तब मैं कृतज्ञतापूर्वक उनका उपयोग करता हूं। कृत्रिम उपायोंका विरोध मैं उनके गुण-दोषके आधार पर करता हूं।

मैं मानता हूं कि कृत्रिम उपायोंके बुद्धिमानसे बुद्धिमान हिमायती भी उनके उपयोगको ऐसी विवाहित स्त्रियों तक ही मर्यादित रखना चाहते हैं जो अपनी और अपने पतियोंकी विषय-वासना तो तृप्त करना चाहती हैं परन्तु उसके फलस्वरूप उत्पन्न होनेवाली सन्तान नहीं चाहतीं। मैं इस इच्छाको मनुष्यमें अप्राकृतिक मानता हूं और इसकी पूर्तिको मानव-समाजकी आध्यात्मिक प्रगतिके लिए बाधक समझता हूं।

इसके खिलाफ अन्य अनेक प्रमाणोंके साथ पेन (इंग्लैण्ड) के प्रसिद्ध डॉक्टर लॉर्ड डॉसनका यह प्रमाण भी पेश किया जाता है:

> स्त्री-पुरुषोंका प्रणय दुनियाकी दुर्दम और प्रभावशाली शक्तियोंमें से एक है। यह वृत्ति मानव-स्वभावके साथ इस तरह जुड़ी हुई है और इतनी प्रबल है कि मनुष्य पर इसके असरको एक सत्य वस्तु स्वीकार किये बिना हमारा काम नहीं चल सकता। आप उसको दबा नहीं सकते। आप उसको अच्छे मार्ग पर मोड़ सकते हैं परन्तु बाहर निकलनेका मार्ग तो वह अवश्य ही खोजेगी और यदि वह मार्ग अपर्याप्त हुआ अथवा उसमें अनुचित रूपसे विघ्न डाले गये तो वह मजबूर होकर गलत मार्ग पर चली जायगी। आत्म-संयमकी भी एक मर्यादा होती है उस मर्यादाके बाहर जानेका प्रयत्न हो तो वह संयम टूट जाता है। और यदि किसी समाजमें विवाह कठिन हो अथवा देरसे होता हो तो स्त्री-पुरुषके बीच

अलौकिक संबंध कायम हुए बिना नहीं रहेंगे। इतना तो सब कोई स्वीकार करते हैं कि शरीरके संबंधके साथ हृदय और आत्माका संबंध भी होना चाहिये। यह भी सब स्वीकार करते हैं कि बाल-कोंका पालन-पोषण प्रमुख हेतु है। क्या संभोग बार बार प्रजोत्पत्तिके विचार अथवा इरादेके बिना हमारे प्रेमकी शारीरिक अभिव्यक्ति नहीं बना है? क्या हम सब गलत मार्ग पर ही चले हैं? क्या धर्म (धर्मसंघ) जीवनकी वास्तविक स्थितियोंके साथ अपना संबंध तोड़ बैठा है जिसकी वजहसे उसके और लोगोंके बीच बहुत चौड़ी खाई पैदा हो गई है? सत्ता — और सत्ताके अन्तर्गत मैं धर्मको भी शामिल करता हूं — जब तक अधिक स्पष्टवादी अधिक साहसी और जीवनकी वास्तविकताओंके साथ अधिक मेल साधनेवाली नहीं बनेगी तब तक नौजवानोंकी वफादारी उसे नहीं मिलेगी।

प्रजोत्पत्तिके अलावा स्त्री-पुरुषके संभोगका एक स्वतंत्र प्रयोजन भी है। वह विवाहित जीवनमें स्वास्थ्य और सुखकी प्राप्तिके लिए एक आवश्यक वस्तु है। यदि संभोग ईश्वरकी एक देन हो तो उसका उपयोग करनेकी कला हमें सीखनी ही चाहिये। उसके अपने क्षेत्रमें उसका ऐसा विकास करना चाहिये जिससे किसी एकको ही नहीं परन्तु स्त्री-पुरुष दोनोंको शारीरिक तृप्ति मिले। पति-पत्नीके संबंधमें परस्पर आनन्दकी प्राप्तिसे उनके बीचका प्रेम अधिक दृढ़ होता है और उनका विवाह-संबंध दीर्घ काल तक टिका रहता है। अधिकतर विवाह-संबंध अतिशय प्रणयके कारण नहीं परन्तु अपर्याप्त और भद्दे प्रणयके कारण असफल सिद्ध होते हैं। काम-वासना मनुष्यकी एक कीमती निधि है। अधिकतर मनुष्य जिनमें थोड़ी भी शक्ति है काम-वासना रखते हैं। काम-वासनाके अभावमें प्रेम एक निःसत्व तथा निर्जीव वस्तु है। दूसरी ओर, लम्पटता एक पेटूपन जैसा दुर्गुण है शारीरिक अत्याहारके समान हानिकर है। हमारी प्रार्थना-पुस्तकमें सुधार करनेकी बात सोची जा रही है इसलिए मैं अत्यन्त आदरके साथ यह सुझाना चाहूंगा कि विवाहके समयकी प्रार्थनामें विवाहके उद्देश्यसे संबंध

रखनेवाला या हिस्सा है उसमें इतनी बात जोड़ दी जाय — इस पुरुष और इस स्त्रीके परस्पर प्रेमकी संपूर्ण सिद्धि।

अब हम सन्तति-नियमनके अत्यन्त महत्त्वपूर्ण प्रश्नका विचार करें। अब उसका विचार शुरू हो गया है। वह अच्छा हो या बुरा उसने स्थापित मान्यता रूप ले लिया है। इसलिए हमें उसे स्वीकार करना ही होगा। हम उसकी चाहे जितनी निन्दा करें वह नष्ट होनेवाला नहीं है। माता-पिता जिन कारणोंसे सन्तानकी संख्या पर मर्यादा लगाना चाहते हैं वे कभी कभी स्वार्थपूर्ण होते हैं परन्तु अकसर प्रशंसनीय और प्रशंसनीय होते हैं। विवाह करके सन्तान पैदा करनेकी इच्छा तथा सन्तान जीवन-संग्राममें सफलतासे जूझ सके इस प्रकार पाल-पोस कर उसे तैयार करनेकी इच्छा सीमित आय जीवन-निर्वाहका खर्च करोंका बोझ — ये सब ऐसे कारण हैं जो सन्तति-नियमनका मार्ग अपनानेके लिए दम्पतीको मजबूर कर देते हैं। इसके सिवा शिक्षित वर्गोंकी स्त्रियां सार्वजनिक जीवनमें और अपने पतियोंके कार्यमें भाग लेनेकी इच्छा रखती हैं इस इच्छाका बार बार होनेवाली प्रसूतियोंके साथ मेल नहीं बैठता। सन्तति-नियमनके अभावका अर्थ है बड़ी उमरमें विवाह। और बड़ी उमरमें यदि विवाह हुए तो स्त्री-पुरुषोंके बीच काम-वासनाको तृप्त करनेके लिए अनुचित संबंध कायम होंगे जिनके हानिकारक परिणाम आये बिना नहीं रहेंगे। अनुचित संबंधोंकी निन्दा करना और विवाहोंमें रुकावट डालना दोनों बातें एकसाथ नहीं चल सकती। परन्तु बहुतसे लोग कहते हैं — सन्तति-नियमन आवश्यक हो सकता है परन्तु स्वेच्छापूर्ण संयम द्वारा किया हुआ सन्तति-नियमन ही उचित माना जायगा। ऐसा संयम या तो परिणामकारी सिद्ध नहीं होगा और यदि हुआ भी तो अव्यावहारिक तथा स्वास्थ्य और सुखके लिए हानिकारक सिद्ध होगा। परिवारके बढ़ानेकी मर्यादा यदि चार बालकों तक बांध दी जाय तो इसका मतलब होगा विवाहित दंपती पर ऐसा संयम लादना जो लम्बी अवधियों तक बदरन् ब्रह्मचर्य पालने जैसा ही होगा और जब हम इस बातको याद करते हैं कि

मार्मिक कारणोंकी वजहसे यह संयम विवाहित जीवनके प्रारंभिक वर्षोंमें — जब नवदंपतीकी काम-वासना अधिकसे अधिक तीव्र होती है — कैसे कड़ा होना चाहिये तब मैं कहूंगा कि यह एक ऐसी मांग है, जिसे आम लोगोंके लिए पूरा करना असंभव है। मैं यह भी कहूंगा कि इस मांगको पूरा करनेका प्रयत्न लोगोंकी संयम-शक्ति पर ऐसा जोर डालेगा जो स्वास्थ्य और सुखके लिए हानिकारक साबित होगा तथा समाजकी नीतिको भारी खतरेमें डाल देगा। यह मांग तर्कसंगत नहीं है। यह प्रयत्न वैसा ही है जैसा प्यासेके सामने पानी रखकर उसे पीनेसे रोकना। यहां संयम द्वारा संतति-नियमन असफल सिद्ध होता है अथवा यदि सफल भी हो तो हानिकारक सिद्ध होता है।

कहा जाता है कि यह अप्राकृतिक है और इसके मूलमें ही अनीति निहित है। कुदरती शक्तियोंको वशमें करना और मनुष्यकी इच्छाके अनुसार उनका उपयोग करना सभ्यताका एक अंग है। जब प्रसूतिके समय नशकी दवाका पहले-पहल उपयोग किया गया था तब लोगोंने ऐसा शोरगुल मचाया था कि उसका उपयोग अप्राकृतिक और पापपूर्ण है क्योंकि भगवान चाहता है कि प्रसूतिके समय स्त्रीको कष्ट भोगना ही चाहिये। कृत्रिम उपायोंसे सन्तति-नियमन करना उसके इलाजसे थोड़ा भी ज्यादा अप्राकृतिक नहीं है। सन्तति नियमनका उपयोग अच्छा है उसका दुरुपयोग बुरा है। अंतमें मैं आपसे यह प्रार्थना करना चाहता हूं कि वह अन्य कुछ प्रश्नोंकी तरह इस प्रश्न पर भी निकम्मी हो चुकी प्राचीन प्रथाओंकी दृष्टिसे विचार न करके आधुनिक ज्ञानकी और नई दुनियाकी आवश्यकताओंकी दृष्टिसे विचार करें।

लॉर्ड डॉसनकी ख्यातिसे कोई इनकार नहीं कर सकता। परन्तु एक डॉक्टरके नाते उनकी महत्ताका उचित आदर करते हुए भी उनके प्रमाणकी कीमत पर शंका उठानेका प्रलोभन मुझे होता है खासकर उस समय जब वह ऐसे स्त्री-पुरुषोंके अनुभवके खिलाफ पेश किया जाता है जिन्होंने किसी तरहकी नैतिक अथवा शारीरिक हानि उठाये बिना बहुत

ब्रह्मचर्यका जीवन बिताया है। डॉक्टर सामान्यतः ऐसे लोगोंके सम्पर्कमें आते हैं जो स्वास्थ्यके नियमोंका उल्लंघन करके किसी रोगके शिकार हो जाते हैं। इसलिए वे यह तो सफलतापूर्वक बता देते हैं कि रोगियोंको अच्छा होनेके लिए क्या क्या करना चाहिये, परन्तु वे हमेशा यह नहीं जान सकते कि स्वस्थ पुरुष और स्त्रियां अमुक दिशामें क्या क्या कर सकते हैं। इसलिए डॉ. डीमनने विवाहित लोगों पर संयम अथवा ब्रह्मचर्यके प्रभावका जो प्रमाण दिया है, उस पर अधिकसे अधिक सावधानीसे विचार करना चाहिये। इसमें शंका नहीं कि विवाहित लोगोंकी वृत्ति विषय-वासनाकी तृप्तिको अपने आपमें उचित माननेकी रहती है। परन्तु आधुनिक युगमें जब किसी भी बातको गृहीत मान कर नहीं चला जाता और हर बातकी भली-भांति छानबीन की जाती है, इसे गृहीत मानकर चलना निश्चित ही गलत होगा कि चूंकि अभी तक हम विवाहित जीवनमें विषय-वासनाकी तृप्तिमें फंसे रहे, इसलिए यह वस्तु उचित है या स्वास्थ्यप्रद है। अनेक पुराने रिवाजोंको हमने छोड़ दिया है और उसके परिणाम अच्छे आये हैं। तब इस एक रिवाजको ही परीक्षाके क्षेत्रसे बाहर क्यों रखा जाय, विशेषतः जब ऐसे लोगोंका अनुभव हमारे सामने है जो विवाहित स्त्री-पुरुषोंके रूपमें भी संयमका जीवन बिता रहे हैं और उससे दोनोंको शारीरिक और नैतिक लाभ हुआ है?

परन्तु मैं भारतमें सन्तति-नियमनके कृत्रिम उपायोंका विरोध भी खास कारणोंसे करता हूं। भारतके नवयुवक नहीं जानते कि विषय-वासनाका संयम क्या चीज है। यह उनका दोष नहीं है। उनका विवाह कम उमरमें कर दिया जाता है। यह एक रिवाज ही बन गया है। कोई उन्हें विवाहित जीवनमें संयम पालनेकी बात नहीं कहता। माता-पिता नाती-पोते देखनेके लिए अधीर हो जाते हैं। बेचारी बालवधुओंसे आसपासके लोग ऐसी आशा रखते हैं कि वे अधिकसे अधिक पतिसे सन्तान उत्पन्न करें। ऐसे वातावरणमें कृत्रिम साधनोंका उपयोग केवल इस बुराईको बढ़ानेका ही काम कर सकता है। इन बालवधुओंसे जिनसे अपने पतियोंकी काम-वासनाके अधीन होनेकी आशा रखी जाती है, अब यह सिखाया होगा कि सन्तान उत्पन्न करनेकी इच्छा रखे बिना विषय-वासनाकी तृप्ति चाहना

अच्छी बात है और इस दोहरे हेतुको पूरा करनेके लिए उन्हें कृत्रिम साधनोंका सहारा लेना होगा!!!

इसे मैं विवाहित स्त्रियोंके लिए अत्यन्त हानिकारक शिक्षा मानता हूं। मैं यह नहीं मानता कि स्त्री काम-विकारकी उतनी ही शिकार बनती है जितना पुरुष। पुरुषके बनिस्बत स्त्रीके लिए आत्म-संयम पालना ज्यादा आसान होता है। मैं मानता हूं कि इस देशमें स्त्रीको दी जाने लायक सच्ची शिक्षा यह होगी कि उसे अपने पतिको भी 'नहीं' कहनेकी कला सिखायी जाय। उसे यह सिखाया जाय कि पतिके हाथोंमें केवल विषय भोगका साधन या खिलौना बनकर रहना उसका कर्तव्य बिलकुल नहीं है। यदि स्त्रीके कर्तव्य हैं तो उसके अधिकार भी हैं। जो लोग सीताको रामकी स्वेच्छासे बनी हुई दासी समझते हैं वे सीताकी स्वतंत्रताकी ऊंचाईको या हर बातमें राम द्वारा किये जानेवाले सीताके विचार और आदरको नहीं समझते। सीता ऐसी लाचार और निर्बल स्त्री नहीं थी जो अपनी रक्षा या अपने सतीत्वकी रक्षा करनेमें असमर्थ हो। भारतकी स्त्रियोंसे संतति-नियमनके कृत्रिम साधन अपनानेको कहनेका अर्थ यदि अधिक नहीं तो घोड़ेके सामने गाड़ी रखने जैसा जरूर है। पहली बात है उन्हें मानसिक गुलामीसे मुक्त करना, उन्हें अपने शरीरको पवित्र माननेकी शिक्षा देना और राष्ट्र तथा मानव-जातिकी सेवाकी प्रतिष्ठा और गौरव सिखाना। यह मान लेना अनुचित होगा कि भारतकी स्त्रियां इस गुलामीसे कभी छूट ही नहीं सकतीं और इसलिए प्रजोत्पत्तिको रोकने तथा अपनी बची-खुची तन्दुरुस्तीकी रक्षा करनेके लिए उन्हें कृत्रिम साधनोंका उपयोग सिखानेके सिवा दूसरा कोई मार्ग ही नहीं है।

जिन बहनोंका पुण्य-प्रकोप ऐसी स्त्रियोंके कष्टोंको देखकर जागृत हुआ है — जिन्हें इच्छा या अनिच्छासे बच्चे पैदा करने पड़ते हैं वे उतावली न बनें। कृत्रिम साधनोंके पक्षमें किया जानेवाला प्रचार भी वांछित हेतुको एक दिनमें सिद्ध नहीं कर देगा। हर पद्धतिके लिए लोगोंको शिक्षा देना जरूरी होगा। मेरा कहना इतना ही है कि वह शिक्षा उन्हें सही मार्ग पर ले जानेवाली होनी चाहिये।

हरिजन २-१-३६

२६

फिर वही संयमका विषय

एक पत्रलेखक लिखते हैं

> इन दिनों आपने आत्म-संयम पर जो लेख लिखे हैं उनमें लोगोंमें हलचल-सी मच गई है। जिनकी आपके विचारोंके साथ सहानुभूति है उन्हें भी लम्बे अरसे तक संयम रख पाना मुश्किल जान पड़ रहा है। उनकी यह दलील है कि आप अपना ही अनुभव और अभ्यास सारी मानव जाति पर लागू कर रहे हैं परन्तु स्वयं आपने भी स्वीकार किया है कि आप संपूर्ण ब्रह्मचारीकी शर्तें पूरी नहीं कर सकते क्योंकि आप स्वयं विकारसे खाली नहीं हैं। और चूंकि आप यह भी मानते हैं कि दम्पतीको सन्तानकी संख्या सीमित रखनी चाहिए इसलिए अधिकांश मनुष्योंके लिए तो एक यही व्यावहारिक उपाय है कि वे सन्तति-नियमनके कृत्रिम साधन काममें लायें।

मैं अपनी मर्यादाएं स्वीकार कर चुका हूं। आत्म-संयम बनाम सन्तति-नियमनके कृत्रिम साधनोंके इस विवादमें तो ये ही मर्यादायें मेरे गुण बन जाती हैं। कारण मेरी मर्यादाओंसे यह स्पष्ट हो जाता है कि मैं भी अधिकांश मनुष्योंकी भांति दुनियावी आदमी हूं और मैं असाधारण शक्ति रखनेका दावा नहीं कर सकता। मेरे संयमका हेतु भी बिलकुल मामूली था। मैं तो देश या मनुष्य-समाजकी सेवाके खयालसे सन्तान वृद्धिको रोकना चाहता था। देश या समाजकी सेवाकी बात तो दूर की है। इसकी अपेक्षा बड़े कुटुम्बका पालन न कर सकना सन्तति-नियमनके लिए अधिक प्रेरक और प्रबल कारण होना चाहिये। प्रस्तुत चर्चाकी दृष्टिसे इस पैंतीस वर्षके संयममें मुझे सफलता मिली है। फिर भी मेरा विकार नष्ट नहीं हुआ है और उसके विषयमें मुझे आज भी जागरूक रहनेकी जरूरत है। इससे यह भलीभांति सिद्ध होता है कि मैं बहुत-कुछ साधारण

अच्छी बात है और इस दोहरे हेतुको पूरा करनेके लिए उन्हें कृत्रिम साधनोंका सहारा लेना होगा!!!

इसे मैं विवाहित स्त्रियोंके लिए अत्यन्त हानिकारक शिक्षा मानता हूं। मैं यह नहीं मानता कि स्त्री काम-विकारकी उतनी ही शिकार बनती है जितना पुरुष। पुरुषके बनिस्बत स्त्रीके लिए आत्म-संयम पालना ज्यादा आसान होता है। मैं मानता हूं कि इस देशमें स्त्रीको दी जाने लायक सच्ची शिक्षा यह होगी कि उसे अपने पतिको भी 'नहीं' कहनेकी कला सिखायी जाय उसे यह सिखाया जाय कि पतिके हाथोंमें केवल विषय भोगका साधन या खिलौना बनकर रहना उसका कर्तव्य बिलकुल नहीं है। यदि स्त्रीके कर्तव्य हैं तो उसके अधिकार भी हैं। जो लोग सीताको रामकी स्वेच्छासे बनी हुई दासी समझते हैं वे सीताकी स्वतन्त्रताकी ऊंचाईको या हर बातमें राम द्वारा किये जानेवाले सीताके विचार और आदरको नहीं समझते। सीता ऐसी लाचार और निर्बल स्त्री नहीं थी जो अपनी रक्षा या अपने सतीत्वकी रक्षा करनेमें असमर्थ हो। भारतकी स्त्रियोंसे सन्तति नियमनके कृत्रिम साधन अपनानेको कहनेका अर्थ यदि अधिक नहीं तो घोड़के सामने गाड़ी रखने जैसा जरूर है। पहली बात है उसे मानसिक गुलामीसे मुक्त करना उसे अपने शरीरको पवित्र माननेकी शिक्षा देना और राष्ट्र तथा मानव-जातिकी सेवाकी प्रतिष्ठा और गौरव सिखाना। यह मान लेना अनुचित होगा कि भारतकी स्त्रियां इस गुलामीसे कभी छूट ही नहीं सकतीं और इसलिए प्रजोत्पत्तिको रोकने तथा अपनी रही-सही तन्दुरुस्तीकी रक्षा करनेके लिए उन्हें कृत्रिम साधनोंका उपयोग सिखानेके सिवा दूसरा कोई मार्ग ही नहीं है।

जिन बहनोंका पुण्य-प्रकोप ऐसी स्त्रियोंके कष्टोंको देखकर जाग्रत हुआ है — जिन्हें इच्छा या अनिच्छासे बच्चे पैदा करने पड़ते हैं वे उतावली न बनें। कृत्रिम साधनोंके पक्षमें किया जानेवाला प्रचार भी वांछित हेतुको एक दिनमें सिद्ध नहीं कर देगा। हर पद्धतिके लिए जनताको शिक्षा देना जरूरी होगा। मेरा कहना इतना ही है कि यह शिक्षा उन्हें सही मार्ग पर ले जानेवाली होनी चाहिये।

हरिजन २-५-३६

इस ग्रंथमें स्त्री-हृदयकी पीड़ा भरी हुई है। जो कुटुम्ब बच्चोंकी अधिकाधिक बढ़ती हुई संख्याके कारण दरिद्र रहते हैं उनके लिए इस बहनका हृदय दयासे भर गया है। यह सभी जानते हैं कि मानवीय दुःखकी पुकार पत्थरके दिलोंको भी पिघला देती है। तब भला यह पुकार उच्चात्मा बहनोंको प्रभावित किये बिना कैसे रह सकती है? परन्तु यदि हम भावावेशमें बह जायं और डूबनेवालेकी तरह किसी भी तिनकेका सहारा ढूंढ़ने लगें तो ऐसी पुकार हमें आसानीसे गुमराह भी कर सकती है।

हम ऐसे जमानेमें रहते हैं जिसमें जीवनके मूल्य बहुत जल्दी जल्दी बदल रहे हैं। धीरे धीरे होनेवाले परिवर्तनोंसे हमें सन्तोष नहीं होता। हमें अपने सजातीय लोगोंकी बल्कि केवल अपने ही देशकी भलाईसे सन्तोष नहीं होता। हम सारे मानव-समाजके साथ प्रेम और सहानुभूति अनुभव करते हैं या करना चाहते हैं। यह सब मनुष्य जातिके अपने लक्ष्यकी तरफ होनेवाले कूचमें अत्यन्त बड़ी सफलता कही जायगी।

लेकिन मानवीय दुःखोंका इलाज धीरज छोड़नेसे नहीं होगा और न सब पुरानी बातोंको सिर्फ पुरानी होनेके कारण छोड़ देनेसे ही होगा। हमारे पूर्वजोंने भी वे ही सपने देखे थे जो आज हमें उत्साहसे अनुप्राणित कर रहे हैं। शायद उन सपनोंमें इतनी स्पष्टता न रही हो। यह भी संभव है कि एक ही प्रकारकी बुराइयोंका जो उपाय उन्होंने बताया वह हमारे जमानेके आधुनिक रूपमें विकास बन जाने पर भी उतना ही उपयोगी हो।

और मेरा दावा तो निश्चित अनुभवके आधार पर यह है कि जिस तरह सत्य और अहिंसा मुट्ठीभर लोगोंके लिए ही नहीं हैं बल्कि सारे मानव-समाजके लिए दैनिक जीवनमें आचरणमें उतारनेकी चीजें हैं ठीक उसी तरह संयम केवल थोड़ेसे महात्माओंके लिए नहीं बल्कि सब मनुष्योंके लिए है। और जिस तरह बहुतसे आदमियोंके झूठे और हिंसक होने पर भी मानव-समाजको अपना आदर्श नीचा नहीं करना चाहिये उसी प्रकार यदि बहुमत या अधिकांश लोग भी संयमका संदेश स्वीकार न कर सकें तो भी इस विषयमें हम अपना आदर्श नीचा नहीं करना चाहिये।

मनुष्य ही हूँ। इसीलिए मेरा कहना है कि जो बात मेरे लिए संभव है वही दूसरे किसी भी आवश्यक प्रयत्न करनेवाले मनुष्यके लिए संभव हो सकती है।

कृत्रिम साधनोंके समर्थकोंके साथ मेरा झगड़ा इस बात पर है कि वे यह मानकर चलते हैं कि साधारण मनुष्य संयम रख ही नहीं सकते। उनमें से कुछ लोग तो यहां तक कहते हैं कि यदि वे संयम रख सकें तो भी उन्हें संयम नहीं रखना चाहिये। ये लोग अपने अपने क्षेत्र में कितने भी बड़े आदमी क्यों न हों मैं अत्यन्त नम्रता किन्तु पूर्ण विश्वासके साथ कहता हूं कि उन्हें इस बातका अनुभव नहीं है कि संयम क्या क्या हो सकता है। उन्हें मानवीय आत्माकी क्षमताको मर्यादित करनेका कोई अधिकार नहीं है। ऐसे मामलोंमें मेरे जैसे एक आदमी निश्चित गवाही भी यदि वह विश्वस्त हो न केवल अधिक मूल्यवान बल्कि निर्णायक भी है। सिर्फ इसी वजहसे कि मुझे लोग महात्मा समझते हैं मेरी गवाहीको पहली बातके इस कार्यमें निकम्मी कहना वैसा उचित नहीं है।

परन्तु एक बहनकी दलील और भी जोरदार है। उनके कहने का मतलब यह है हम कृत्रिम साधनोंके समर्थक तो हालमें ही आये हैं। आप संयमके समर्थकोंके हाथमें यह क्षेत्र पीढ़ियोंसे — हजारों वर्षोंसे रहा है। तो आप लोगोंने क्या सफलता प्राप्त की? दुनियाने आत्म-संयमका सबक सीख लिया है? बच्चोंकी भारसे दबे परिवारोंकी दुर्दशाको रोकनेके लिए आप लोगोंने क्या किया है? माताओंकी पुकार आप लोगोंने कभी सुनी है? आइये अब भी आप लोगोंके लिए खुला है। आप संयमका समर्थन करते रहिये इसकी चिन्ता नहीं है। और अगर आप पतियोंके अनचाहे आक्रमण स्त्रियोंको बचा सकें तो हम आपकी सफलताकी भी कामना करते हैं। परन्तु आप हमारे तरीकोंकी निन्दा क्यों करते हैं? हमारे ये तरीके मनुष्यकी साधारण कमजोरियों और आदतोंके लिए गुंजाइश रखकर हैं और उनका यदि ठीक ठीक प्रयोग किया जाय तो वे करीब करीब अचूक साबित होते हैं।

२७

संयम द्वारा संतति नियमन

निम्नलिखित पत्र मेरे पास बहुत दिनोंसे पड़ा है

आजकल सारी ही दुनियामें सन्तति-नियमनका समर्थन हो रहा है। हिन्दुस्तान भी उससे बाहर नहीं है। आपके संयम सबंधी लेखोंको मने बड़े ध्यानसे पढ़ा है। संयममें मेरा विश्वास है। अहमदाबादमें थोड़े दिनों पहले एक सन्तति-नियमन मंडल स्थापित हुआ है। ये लोग दवा टिकिया टपूब वगैराका समर्थन और प्रचार करके स्त्रियोंको हमेशाके लिए बांझ बनाना चाहते हैं।

"मुझे आश्चर्य होता है कि जीवनके आखिरी किनारे पर बैठे हुए लोग किसलिए प्रजाके जीवनको निचोड़ डालनेकी हिमायत करते हैं? इसके बजाय आत्म-संयम मंडल स्थापित किया होता तो कितना अच्छा होता? आप गुजरातमें पधार रहे हैं इसलिए मेरी ऊपरकी प्रार्थनाको ध्यानमें रखकर आप गुजरातके नारी-तेजको प्रकाशमें लाइए।

आजके डॉक्टर और वैद्य मानते हैं कि रोगियोंको संयमका पाठ सिखानेसे उनकी कमाई मारी जायेगी और उन्हें भूखों मरना पड़ेगा। इस प्रकारके सन्तति नियमनसे समाज बहुत गहरे और अंधेरे गढ्ढेमें गिर जायेगा। उसे अगर ऊपर और प्रकाशमें रहना है तो संयमको अपनाये सिवा दूसरा कोई चारा नहीं है। संयमके बिना मनुष्य कभी ऊंचा नहीं चढ़ सकेगा। कृत्रिम सन्तति नियमनसे तो जितना व्यभिचार आज है उससे भी अधिक बढ़ जायेगा। और फिर रोगोंका तो पूछना ही क्या?

इस बीच मैं अहमदाबाद हो आया हूं। उपर्युक्त विषय पर मुझे वहां अलग विचार प्रकट करनेका अवसर मिला नहीं। परन्तु लेखकके इस कथनको मैं अवश्य मानता हूं कि सन्तति-नियमन केवल संयमसे ही

बुद्धिमान न्यायाधीश तो वह है जो विकट मुकदमा सामने होने पर भी गलत निर्णय नहीं करता। लोगोंकी नजरोंमें वह अपनेको कठोर हृदय बन जाने देगा, क्योंकि वह जानता है कि कानूनको कलुषित करनेमें सच्ची दया नहीं है।

हमें मांसवान शरीर या इन्द्रियोंकी दुर्बलताको अपने भीतर विराजमान अविनाशी आत्माकी दुर्बलता नहीं समझ लेना चाहिये। हमें तो आत्माके नियमोंके अनुसार शरीरका नियमन करना चाहिये। मेरी विनम्र सम्मतिमें ये नियम थोड़ेसे और अटल हैं और इन्हें सभी मनुष्य समझ सकते हैं और पाल सकते हैं। इन नियमोंके पालनमें कम-ज्यादा सफलता मिल सकती है, पर ये लागू तो सभी पर होते हैं। अगर हममें श्रद्धा है तो उसे सिर्फ इसीलिए हमें नहीं छोड़ देना चाहिये कि मानव-समाजको अपने ध्येयकी प्राप्तिमें या उसके निकट पहुंचनेमें लाखों वर्ष लगेंगे। जगद्गुरुओंकी भाषामें हमारी विचार-सरणी शुद्ध और सत्य होनी चाहिये।

लेकिन इस बहसकी दलीलोंका जवाब देना तो बाकी ही रह गया है। संयमवादी हाथ पर हाथ धरे नहीं बैठे हैं। उनका प्रचार-कार्य जारी है। जैसे कृत्रिम साधनोंसे उनके साधन भिन्न हैं वैसे ही उनके प्रचारका तरीका भी अलग है और होना चाहिये। संयमवादियों को चिकित्सालयोंकी जरूरत नहीं है। वे अपने उपायोंका विज्ञापन भी नहीं कर सकते क्योंकि वे कोई बेचने या दे देनेकी चीजें तो हैं नहीं। कृत्रिम साधनोंकी टीका करना और उनके उपयोगसे लोगोंको सावधान करते रहना इस प्रचार-कार्यका अंग है। उसके कार्यका रचनात्मक पहलू तो सदा रहा ही है। किन्तु वह स्वभावतः ही अदृश्य होता है। संयमका समर्थन कभी बन्द नहीं किया गया है। और इसका सबसे प्रभावोत्पादक समर्थन अपना उदाहरण लोगोंके सामने रखना है। संयमका सफल अभ्यास करनेवाले सच्चे लोग जितने अधिक होंगे उतना ही यह प्रचार-कार्य अधिक परिणामकारी होगा।

हरिजनसेवक १-९-३६

सिद्ध किया जा सकता है। दूसरी रीतिसे सन्तति-नियमन करनेमें अनेक दोष उत्पन्न होनेकी संभावना है। जहां कृत्रिम साधनों द्वारा किये जानेवाले सन्तति-नियमनने घर कर लिया है वहां इसके दोष साफ दिखाई दे रहे हैं। इसमें कोई आश्चर्य नहीं कि संयम-रहित नियमनके समर्थक इन दोषोंको नहीं देख सकते क्योंकि संयम-रहित नियमनने समाजमें नीतिके नाशको प्रवेश किया है।

अहमदाबादमें जो मंडल बनाया गया है उसका हेतु लेखकने जैसा लिखा वैसा ही है यह कहना ज्यादती होगी। परन्तु उसका हेतु चाहे जैसा हो तो भी उसकी प्रवृत्तिका परिणाम तो विषय-भोगको बढ़ानेमें ही आनेवाला है। पानीका अगर नीचे गिरायें तो वह नीचे ही जायगा। इसी तरह यदि विषय-भोगको बढ़ानेवाली युक्तियां रची जायेंगी तो उनसे वह भोग बढ़ना ही घटनेवाला नहीं है।

इसी प्रकार डॉक्टर और वैद्य संयमका पाठ सिखायें तो उनकी कमाई मारी जायगी — इस कारणसे वे संयम नहीं सिखाते ऐसा मानना भी ज्यादती होगी। संयमका पाठ सिखानेको डॉक्टर-वैद्योंने अपना क्षेत्र आज तक माना ही नहीं। लेकिन डॉक्टर और वैद्य इस तरफ मुड़ते जा रहे हैं इस बातके चिह्न जरूर नजर आते हैं। उनका काम रोगोंके कारण जानने और रोग मिटानेका है। यदि वे रोगोंके कारणोंमें असंयम — स्वच्छन्दता — को अग्रस्थान न देंगे तो यह कहना होगा कि उनका दिवाला निकलनेका समय आ गया है। ज्यों ज्यों जन-समाजकी समझ-शक्ति बढ़ती है त्यों त्यों रोग यदि जड़मूलसे नष्ट नहीं हुए तो उसे संतोष होनेवाला नहीं है। और जब तक जन-समाज संयमकी ओर नहीं मुड़ेगा रोगोंको रोकनेके नियमोंका पालन नहीं करेगा तब तक आरोग्यकी रक्षा करना असंभव है। यह बात इतनी स्पष्ट है कि अन्तमें सभी कोई इस पर ध्यान देंगे और प्रामाणिक डॉक्टर संयमके मार्ग पर अधिकसे अधिक जोर देंगे। संयम-रहित सन्तति-नियमन विषय-भोगको बढ़ानेमें अधिकसे अधिक हाथ बटायेगा इस विषयमें मुझे तो कोई शंका है ही नहीं। इसलिए अहमदाबादका मंडल अधिक गहरे उतरकर असंयमके भयंकर परिणामों पर विचार करे, नियमोंको संयमकी सरलता और आवश्यकताका ज्ञान

करानेमें अपने समयका उपयोग करे, तो आवश्यक परिणाम प्राप्त हो सकेगा ऐसा मेरा नम्र मत है।

हरिजनसेवक १२-१२-३६

२८
कैसी नाशकारी चीज है!

डॉ. सोले और डॉ. मंगलदास मेहताके बीच हालमें ही जो इस बारह मासी विषय अर्थात् सन्तति-नियमन पर वाद-विवाद हुआ था उससे मेरी आदरणीय डॉ. भन्डारीका मत प्रकट करनेकी हिम्मत हो रही है, या डॉ. मंगलदासके मतका समर्थन करता है। लगभग एक सालकी बात है मैंने स्वर्गीय डॉ. साहबको लिखा था कि एक डॉक्टरकी दृष्टिसे आप इस विवादग्रस्त विषयमें मेरे मतका समर्थन कर सकते हैं या नहीं? मुझे यह जानकर आश्चर्य और आनन्द हुआ कि उन्होंने हृदयसे मेरा समर्थन किया। पिछली बार जब मैं दिल्ली गया था तब इस विषयमें उनसे मेरी प्रत्यक्षमें बातचीत हुई थी। और मेरे अनुरोध करने पर उन्होंने अपने तथा अपने अन्य डॉक्टर बन्धुओंके अनुभवोंके आधार पर कृत्रिम साधनोंका उपयोग करनेवालोंको कितनी जबरदस्त हानि पहुंच रही है, इसके बारेमें प्रमाणों और आंकड़ों सहित एक लम्बामोटा लिखनेका वचन दिया था। उनकी पत्नियां अथवा अन्य स्त्रियां सन्तति-निग्रहके कृत्रिम साधनोंका उपयोग करती हैं यह जानकर उनके साथ संभोग करनेवाले पुरुषोंकी कुछ समयके बाद कैसी दुर्दशा हो जाती है, इसका हूबहू बयान डॉक्टर साहबने किया था। संभोगके स्वाभाविक परिणामके भयसे मुक्त होने पर वे अमर्यादित भोग-विलास पर टूट पड़े। नित्य नई नई औरतोंसे मिलनेकी उनमें अदम्य लालसा बनी रहने लगी और आखिरमें वे पागल हो गये। बड़े दुःखकी बात है कि डॉक्टर साहब अपनी उस लम्ब मालाको शुरू करने ही वाले थे कि वे चल बसे!

कहा जाता है कि बर्नार्ड शॉने भी यही कहा है कि सन्तति नियमनके साधनोंका उपयोग करनेवाले स्त्री-पुरुषोंका समागम प्रकृति-विरुद्ध

वीर्यनाशक किसी प्रकार कम नहीं है। एक क्षणके लिए सोचनेसे ही पता चल जायगा कि उनका कथन कितना यथार्थ है।

इसी बुरी टवके शिकार बनकर और धीरे धीरे अपने पौरुषसे हाथ धो बैठनेवाले विद्यार्थियोंके कलेजाजनक पत्र तो मुझे करीब करीब रोज ही मिलते हैं। कभी कभी शिक्षकोंके पत्र भी मिलते हैं। हरिजनसेवक में लाहौरके सनातन धर्म कॉलेजके आचार्यका जो पत्र-व्यवहार प्रकाशित हुआ था वह भी पाठकोंको याद होगा।* उसमें उन्होंने उन शिक्षकोंके विरुद्ध बड़ी बुरी तरह शिकायत की थी जो अपने विद्यार्थियोंके साथ अप्राकृतिक व्यभिचार करते थे। इससे उनके शरीर और चरित्रकी जो दुर्गति हुई थी उसका भी उल्लेख आचार्यजीने अपने पत्रमें किया था। इन उदाहरणोंसे तो मैं यही नतीजा निकालता हूं कि यदि पति-पत्नीके बीच भी संभोगके स्वाभाविक परिणामसे मुक्त होनेकी संभावनाको लेकर संभोग होगा तो उसका भी वही घातक परिणाम होगा जो प्रकृति-विरुद्ध मैथुनके कारण निश्चित रूपसे होता है।

निस्सन्देह कृत्रिम साधनोंके बहुतसे समर्थक परोपकारकी भावनासे प्रेरित होकर इन चीजोंका अन्धाधुन्ध प्रचार कर रहे हैं पर यह परोपकार अस्थायी है। मैं इन भले भावमियोंसे अनुरोध करता हूं कि वे इसके परिणामोंका तो ख्याल करें। वे गरीब लोग कभी पर्याप्त मात्रामें इन साधनोंका उपयोग नहीं कर सकेंगे जिन तक ये उपकारी पुरुष पहुंचना चाहते हैं और जिन्हें इनका उपयोग नहीं करना चाहिये वे जरूर इनका उपयोग करेंगे और अपना तथा अपने साथियोंका नाश करेंगे। परन्तु अगर यह पूरी तरहसे सिद्ध हो जाता कि शारीरिक या नैतिक आरोग्यकी दृष्टिसे इन कृत्रिम साधनोंका उपयोग लाभदायक है, तो इसकी कोई परवाह नहीं की जाती। इनके और भावी सुधारकोंके लिए मेरी अल्पज्ञकी राय — अगर उसके विषयमें मेरे शब्दोंको कोई प्रमाणभूत माने — एक गंभीर चेतावनी है।

हरिजनसेवक १२-१ -३६

* इस पुस्तकका ३१ और ३४वां अध्याय देखिये।

२९

अमरीकाका एक प्रमाण

मिस मार्बेल ई. सिम्पसन मोन्टाना (अमरीका) से 'हरिजन' के सम्पादकको लिखती हैं :

> मैं आपके पत्रके लिए अपना आदर व्यक्त करना चाहती हूं। आकारमें वह छोटा है परन्तु उसके गुण इस कमीको बहुत बड़े अंशमें पूरा कर देते हैं। वस्तुकी आत्मा तक पहुंचनेवाली गांधीजीकी सदाकी स्पष्ट दृष्टिवाला सन्तति-नियमन पर लिखा हुआ उनका लेख मुझे बहुत पसन्द आया। बीस वर्ष पूर्व जब अमरीका कृत्रिम साधनों द्वारा सन्तति-नियमन करना पसन्द नहीं करता था उन्होंने यहांकी स्थिति आकर देखी होती और आज जब कि इन साधनोंका अन्धाधुन्ध उपयोग हो रहा है वे आकर यहांकी स्थिति देखें तो उन्हें पता चलेगा कि इन साधनोंसे कैसी नैतिक अधोगति होती है। लेकिन वे किसीको इस नैतिक अधोगतिका विश्वास नहीं करा सकेंगे क्योंकि इन साधनोंके उपयोगसे मनुष्यकी नैतिक तथा आध्यात्मिक दृष्टि अंधी हो जाती है। इसकी वजहसे इन साधनोंका प्रयोग करनेवाले लोगोंके लिए उच्च नैतिक और आध्यात्मिक दृष्टिसे इस प्रश्न पर हृदयपूर्वक विचार करना असम्भव हो जाता है। अगर इस विषयमें भारतने पश्चिमका अनुसरण किया तो वह निश्चित रूपसे अपने दो अमूल्य और सुन्दर रत्नोंको खो बैठेगा : १ छोटे बालकोंके लिए प्रेम और
>
> मातृत्व तथा पितृत्वके लिए आदर। अमरीकाने ये दोनों रत्न खो दिये हैं। परन्तु वह इस बातको नहीं जानता। क्या आप ब्रह्मचर्यका अर्थ बतानेवाला लेख अपने पत्रमें प्रकाशित करेंगे? मुझे इसके बारेमें पूछा गया है। ब्रह्मचर्यके अर्थकी कल्पना तो मुझे है परन्तु मैं विश्वासपूर्वक दूसरोंको उसे समझा नहीं सकती। मैं आपका आभार मानती हूं।

पाठक इस प्रमाणकी जो कीमत करना चाहें कर सकते हैं। परन्तु मैं यह कहना चाहता हूँ कि कृत्रिम साधनोंके उपयोगके विरुद्ध ऐसा प्रमाण उन लोगोंके प्रमाणसे कहीं अधिक मूल्यवान है, जो इन साधनोंके उपयोगसे लाभ उठानेका दावा करते हैं। इसका कारण बिलकुल स्पष्ट है। इन साधनोंके उपयोगसे सन्तानकी उत्पत्ति अवश्य रुक जाती है इस अर्थमें इसके बारेमें कोई इनकार नहीं करता। विशेषका मुद्दा तो यह है कि इन कृत्रिम साधनोंके उपयोगसे अपार नैतिक हानि होती है। मिस विम्प सबने हमें कुछ अंशमें ऐसी हानिकी झांकी कराई है।

अब ब्रह्मचर्यकी परिभाषा या अर्थका विचार करें। उसका मूल अर्थ इस प्रकार दिया जा सकता है: ब्रह्मचर्यका अर्थ ऐसा आचरण है जो साधकको ईश्वरसे अनुसन्धान करा दे।

इस आचरणका अर्थ है समूची इन्द्रियों पर पूर्ण संयम। यह ब्रह्मचर्य शब्दका सच्चा और प्रस्तुत अर्थ है।

सामान्यतः लोगोंमें ब्रह्मचर्यका रूढ़ अर्थ केवल जननेन्द्रिय पर स्थूल नियमन प्राप्त करना ही बना है। इस संकुचित अर्थने ब्रह्मचर्यकी महिमाको घटाया है और उसके पालनको असंभव-सा बना दिया है। जननेन्द्रियका नियमन समस्त इन्द्रियोंके समुचित नियंत्रणके बिना असम्भव है। ये सब इन्द्रियाँ आपसमें एक-दूसरे पर निर्भर करती हैं। भिन्न भूमिका पर मनका समावेश भी इन्द्रियोंमें होता है। मनको वशमें किये बिना केवल इन्द्रियोंका स्थूल नियंत्रण — कुछ समयके लिए वह सिद्ध किया जा सके तो भी — बहुत कम उपयोगी अथवा सर्वथा निरुपयोगी है।

हरिजन १३-६-३६

'अरण्य रोदन'

अभी हाल ही सन्तति-नियमनकी प्रचारिका श्रीमती सेंगरके साथ आपकी मुलाकात पर एक समालोचना मैंने पढ़ी। उसका मुझ पर इतना गहरा असर हुआ कि आपके दृष्टिबिन्दुके लिए आपको धन्यवाद देनेके लिए मैं यह पत्र लिखने बैठा हूं। आपके साहसके लिए ईश्वर सदा आपका कल्याण करे।

पिछले तीस सालोंसे मैं लड़कोंको पढ़ानेका काम करता आया हूं। मैंने हमेशा उन्हें देह-संयमकी और निःस्वार्थ जीवन बितानेकी तालीम दी है।

जब श्रीमती सेंगर हमारे आसपासके प्रदेशमें प्रचार-कार्य कर रही थीं तब हाईस्कूलके लड़के-लड़कियां उनकी दी हुई सूचनाओंका उपयोग करने लग गये थे और परिणामका डर दूर हो जानेसे उनमें अतिशय व्यभिचार फैल पड़ा था। यदि श्रीमती सेंगरकी शिक्षा व्यापक हो गई, तो सारी दुनिया विषय-सेवनके पीछे पड़ जायेगी और शुद्ध प्रेमका दुनियासे नामोनिशान तक मिट जायेगा। मैं मानता हूं कि जनताको उच्च आदर्शोंकी शिक्षा देनेमें सदियां लग जायेंगी, लेकिन यह काम शुरू करनेके लिए अनुकूलसे अनुकूल समय आज ही है। मुझे डर है कि श्रीमती सेंगर विषय-विकारको ही प्रेम समझ बैठी हैं। परन्तु यह भूल है, क्योंकि प्रेम एक आध्यात्मिक वस्तु है। भोग-विलाससे इसकी उत्पत्ति कभी नहीं हो सकती।

डॉ. एलेक्सिस कारेल भी आपके साथ इस बातसे सहमत हैं कि काम-वासनाका संयम कभी हानिकारक सिद्ध नहीं होता सिवा उन लोगोंके जो कि मनमें विषयका सेवन करते रहते हों और पहलेसे ही अपने मन पर काबू खो चुके हों। अधिकांश डॉक्टर

यह मानते हैं कि ब्रह्मचर्य-पालनसे हानि होती है श्रीमती सेंगरका यह कथन बिलकुल गलत है। मैं तो देखता हूं कि यहां कई बड़े बड़े डॉक्टर तथा अमेरिकन सौस्यल हाईजीन (सामाजिक आरोग्य शास्त्र) एसोसियेशनके विज्ञानशास्त्री ब्रह्मचर्य-पालनको लाभदायक मानते हैं।

आप एक बड़ा उदात्त कार्य कर रहे हैं। मैं आपके जीवन-संग्रामके सभी चढ़ाव-उतारोंका अत्यन्त रसपूर्वक अध्ययन करता रहा हूं। आप जगतमें उन इने-गिने व्यक्तियोंमें से हैं, जिन्होंने स्त्री-पुरुष-संबंधके प्रश्न पर इस तरह उच्च आध्यात्मिक दृष्टिकोणसे विचार किया है। मैं आपको यह बताना चाहता हूं कि महासागरके इस पार भी आपके आदर्शोंके साथ सहानुभूति रखनेवाला आपका एक साथी है।

इस उदात्त नैतिक कार्यको आप जारी रखें ताकि नवयुवक वर्ग सच्ची बातको जान ले क्योंकि भविष्य इसी वर्गके हाथोंमें है।

"अपने विद्यार्थियोंके साथ हुए मेरे संवादमें से छोटासा उद्धरण मैं यहां देना चाहता हूं

सर्जन करो हमेशा सर्जन करो। सर्जनकी प्रवृत्तिमें से तुम्हें श्रेय मिलेगा उन्नति मिलेगी उत्साह मिलेगा उल्लास मिलेगा लेकिन तुम अपनी सर्जन-शक्तिको आज विषय-तृप्तिका साधन बना लोगे तो तुम अपनी सर्जन-शक्तिको खोता रोगे और तुम्हारे भीतरकी सारी आध्यात्मिक शक्तियोंका नाश कर डालोगे।

सर्जन — शारीरिक मानसिक और आध्यात्मिक — का नाम जीवन है यही मानव है। यदि तुम सन्तानोत्पत्तिके हेतुके बिना सिर्फ इन्द्रिय-सुख प्राप्त करनेका प्रयत्न करोगे अथवा कभी सर्जन न होने देनेका विचार रखोगे तो तुम प्रकृतिके नियमका भंग करोगे और आध्यात्मिक शक्तियोंका नाश करोगे।

इसका परिणाम क्या होगा? निरंकुश विषयासक्ति बढ़ने लगेगी और आखिर उसका अन्त अकाल निराशा तथा असफलतामें होगा। इससे उन उच्च गुणोंका विकास कभी नहीं हो सकेगा

जिनके बल पर हम आध्यात्मिक स्त्री-पुरुषोंकी एक नई जाति खड़ी कर सकेंगे।

"मैं जानता हूँ कि यह सब पूर्वकालके पैगम्बरोंके अरण्य रोदन जैसी बात है। लेकिन मेरा दृढ़ विश्वास है कि यही सच्चा रास्ता है और मुझसे अधिक कुछ चाहे न भी बन पड़े परन्तु कमसे कम रास्ता दिखाकर तो मैं अपना सन्तोष कर ही सकता हूँ।"

सन्तति-नियमनके कृत्रिम साधनोंका विरोध करनेवाले जो पत्र मुझे कभी कभी अमेरिकासे मिलते रहते हैं उन्हींमें से यह भी एक है। लेकिन सुदूर पश्चिमसे प्रत्येक सप्ताह हिन्दुस्तानमें जो सामयिक साहित्य आता रहता है उससे तो पढ़नेवालेके हृदय पर बिलकुल दूसरा ही प्रभाव पड़ता है। उससे ऐसा मालूम होता है कि अमेरिकामें मूर्खों और पौरुषहीन मनुष्योंके सिवा कोई भी इन आधुनिक साधनोंका विरोध नहीं करते जो मनुष्यको उस अन्धविश्वाससे मुक्ति प्रदान करते हैं जो शरीरको गुलाम बनाकर संसारके सर्वश्रेष्ठ ऐहिक सुखसे उसे वंचित रखता है और उसे कुचल डालता है। यह साहित्य हमें जो कर्म उसके सामान्य परिणामकी चिन्ता किये बगैर करनेकी प्रेरणा और प्रोत्साहन देता है उस कर्ममें जैसी उत्तेजना पैदा होती है वैसी ही उत्तेजना इस साहित्यको पढ़नेमें भी होती है। पश्चिमसे आनेवाले उन पत्रोंको मैं 'हरिजन' के पाठकोंके सामने पेश नहीं करता जिनमें केवल व्यक्तिगत रूपसे इन साधनोंकी निन्दा की जाती है। वे साधककी दृष्टिसे मेरे लिए तो उपयोगी हैं परन्तु साधारण पाठकोंके लिए उनका मूल्य बहुत कम है। लेकिन इस पत्रका एक निश्चित महत्त्व है क्योंकि यह एक ऐसे विचारकका है जिसे तीस वर्षका अनुभव है। यह पत्र हिन्दुस्तानके उन विचारकों और जनता — स्त्री-पुरुष — के लिए खास तौर पर मार्गदर्शकका काम करता है जो कृत्रिम साधनोंके इस प्रचारके प्रबल प्रवाहमें बह जा रहे हैं। सन्तति-नियमनके कृत्रिम साधनोंके प्रयोगमें शायद अत्यन्त पुष्ट प्रबल प्रमाणमें होता है। लेकिन इन मारक प्रयोगोंके कारण वह उस सफलताकी अपेक्षा अधिक आदरणीय नहीं बन जाता। और चूंकि इन साधनोंका

प्रचार बढ़ता ही जा रहा है इस कारणसे निराश होकर इनका विरोध करना भी नहीं छोड़ा जा सकता। यदि इनके विरोधियोंको अपने कार्यकी पवित्रतामें श्रद्धा है तो उन्हें उसे बराबर जारी रखना चाहिये। ऐसे अरण्य-रोदनमें भी वह बल होता है जो मूढ़ जन-समुदायके सुरमें सुर मिलानेवालेकी आवाजमें नहीं हो सकता। क्योंकि जहां अरण्यमें रोने-वालेकी आवाजमें चिन्तन और मननके साथ अटूट श्रद्धा होती है वहां सर्व-साधारणके इस घोरमुखकी जड़में विषय भोगका व्यक्तिगत अनुभव और अनचाही संतति तथा दुखिया माताओंके प्रति झूठी और गिरी भावुक सहानुभूतिके सिवा और कुछ नहीं होता। और इस मामलेमें व्यक्तिगत अनुभवकी दलीलमें उतना ही बल है, जितना कि एक शराबीके किसी कार्यमें होता है। और सहानुभूतिवाली दलील एक धोखेकी टट्टी है, जिसके अन्दर पैर भी रखना खतरनाक है। अनचाहे बच्चोंकि तथा अन चाहे मातृत्वके कष्ट तो कल्याणकारी प्रकृति द्वारा नियोजित सजायें और चेतावनियां हैं। जो आत्म-संयम और इन्द्रिय-नियमनके कानूनकी परवाह नहीं करेगा वह तो अपनी आत्महत्या ही कर लेगा। यह जीवन तो एक परीक्षा है। यदि हम इन्द्रियोंका नियमन नहीं कर सकते तो हम असफलताको स्वीकार देते हैं कायरोंकी तरह हम युद्धसे मुंह मोड़कर जीवनके एकमात्र आनन्दसे अपने-आपको वंचित करते हैं।

हरिजनसेवक २७-३-१७

और शरीर इन्द्रिय-निग्रह करे, तो इससे प्रायश्चित्तका इतना भमकर नाश होगा कि शरीरमें कुछ भी सत्त्व बच नहीं रहेगा। खानसाहब मान गये कि मेरा यह अनुमान ठीक है। उन्होंने कहा जहां तक मैं इसकी जांच कर सका हूं मुझे लगता है कि ये लोग संयमके इतने ज्यादा आदी हो गये हैं कि नौजवान मर्दों और औरतोंका शादीसे पहले विषय-वृत्ति करनेका कभी मन ही नहीं होता। खानसाहबने मुझसे यह भी कहा कि इन कबीलोंकी औरतें कभी परदा नहीं करतीं यहां घूंघट करना नहीं है वहांकी औरतें निडर हैं वे चाहे जहां आजादीसे घूमती हैं और अपनी संभाल खुद कर सकती हैं अपनी इज्जत-आबरू वे खुद बचा सकती हैं किसी मर्दसे वे अपनी रक्षा नहीं करवाना चाहतीं उन्हें इसकी जरूरत भी नहीं रहती।

लेकिन खानसाहब यह मानते हैं कि उनका यह संयम बुद्धि या जीती-जागती श्रद्धा पर आधार नहीं रखता इसलिए जब ये पहाड़ोंमें रहनेवाले मर्द और औरतें सभ्य या सुकुमार जीवनके सम्पर्कमें आते हैं तो उनका यह संयम टूट जाता है क्योंकि उस जीवनमें समाजके रीति-रिवाजोंको तोड़नेकी कोई सजा नहीं मिलती और बेवफाई, व्यभिचार अथवा परस्त्री-गमनके विषयमें लोकमत उदासीन होता है। इससे ऐसे विचार सामने आ जाते हैं जिनकी मुझे फिलहाल चर्चा नहीं करनी चाहिये। अभी तो मैं यह इसी हेतुसे लिखता हूं कि खानसाहबकी ही तरह जो लोग इन कबीलोंके आदमियोंके बारेमें जानकारी रखते हों और उनके कथनका समर्थन करते हों उनसे इस पर और भी रोशनी डलवाई जाय और मैदानोंमें रहनेवाले युवकों और युवतियोंको यह बतलाया जाय कि संयमका पालन यदि इन पहाड़ी कबीलोंके लिए सचमुच स्वाभाविक चीज है — जैसा कि खानसाहबका खयाल है — तो हम लोगोंके लिए भी उसे उतना ही स्वाभाविक होना चाहिये। शर्त इतनी ही है कि शुद्ध विचारोंको हम अपने विचार-जगतमें बसा लें और बरबस घुस आनेवाले कुविचारों या विषय-विकारोंको जगह न दें। बेशक अगर सद्‌विचार काफी बड़ी तादादमें हमारे मनमें बस जायें तो कुविचार वहां ठहर ही नहीं सकते। अवश्य ही इसके लिए साहसकी जरूरत है। परन्तु दुर्बल

कठिन बन जाता है जब इसका असर बालकोंके संरक्षकों पर भी पड़ता है — और शिक्षक बालकोंके संरक्षक ही हैं। प्रश्न होता है कि यदि प्राणदाता ही प्राणहारक हो जाय तो फिर प्राण कैसे बचें? मेरी समझ जो बुराइयां प्रकट हो चुकी हैं उनके संबंधमें तो विभागकी ओरसे विधिवत् कार्रवाई करना जरूरी है। परन्तु इस बुराईके प्रतिकारके लिए इतना काफी न होगा। सर्व-साधारणके मतको इस संबंधमें शिक्षित और जाग्रत बनाना ही इस बुराईका सामना करनेका एकमात्र उपाय है। लेकिन इस देशमें अधिकांश बातोंके बारेमें प्रभावशाली लोकमत जैसी कोई चीज है ही नहीं। राजनीतिक जीवनमें असहायता और विवशताकी जिस भावनाका एकछत्र राज्य है, उसने देशके जीवनके सभी क्षेत्रों पर अपना असर डाल रखा है। अतएव जो बुराइयां हमारी आंखोंके सामने होती रहती हैं उन्हें भी हम टाल जाते हैं।

जो शिक्षा-प्रणाली केवल साहित्यिक योग्यता पर ही जोर देती है वह इस बुराईको रोकनेके लिए असमर्थ ही नहीं है बल्कि उसमें उलटे इस बुराईको उत्तेजना मिलती है। जो बालक सार्वजनिक पाठशालामें दाखिल होनेसे पहले निर्दोष और निर्मल थे वे ही शालाके पाठ्यक्रमके समाप्त होते होते दूषित स्त्रैण और दुर्बल बनते देखे गये हैं। बिहार-समितिने बालकोंके मन पर धार्मिक आदरके संस्कार जमानेकी सिफारिश की है लेकिन बिल्लीके गलेमें घंटी कौन बांधे? केवल शिक्षक ही विद्यार्थियोंमें धर्मके प्रति आदरकी भावना पैदा कर सकते हैं। लेकिन वे स्वयं इससे शून्य हैं। अतएव प्रश्न शिक्षकोंके योग्य चुनावका प्रतीत होता है। परन्तु शिक्षकोंके योग्य चुनावका अर्थ होता है या तो आज दिये जानेवाले वेतनसे कहीं अधिक वेतन या फिर शिक्षणके ध्येयका कायापलट — अर्थात् शिक्षाको पवित्र कर्तव्य मानकर शिक्षकोंका उसके लिए जीवन अर्पण कर देना। रोमन कैथोलिकोंमें यह प्रथा आज भी विद्यमान है। पहला उपाय तो स्पष्ट ही हमारे जैसे गरीब देशके लिए असंभव है। मेरे विचारमें एकमात्र दूसरा मार्ग ही हमारे लिए खुला है। लेकिन यह मार्ग भी हमारे लिए उस शासन-प्रणालीके अधीन खुला नहीं है जिसमें हर चीजकी कीमत पैसोंमें आंकी जाती है और जो कीमत दुनियामें सबसे ज्यादा होती है।

अपने बालकोंके नैतिक सुधारके प्रति माता-पिताओंकी लापरवाहीके कारण इस बुराईका रोकना और भी कठिन हो जाता है। वे तो बालकोंको स्कूल भेजकर अपने कर्तव्यकी इतिश्री मान लेते हैं। इस तरह हमारे सामनेकी स्थिति बहुत ही निराशापूर्ण है। लेकिन इस अंधेरेमें आशाका प्रकाश भी दिखाई देता है कि तमाम बुराइयोंका एक रामबाण उपाय है और वह है — सर्व-साधारणकी आत्मशुद्धि। बुराईकी भयंकरतासे घबरा जानेके बजाय हममें से हरएकको पूरा प्रयत्न करके अपने आसपासके वातावरणका सूक्ष्म निरीक्षण करते रहना चाहिये और अपने-आपको इस निरीक्षणका प्रथम और मुख्य केन्द्र बनाना चाहिये। हमें यह कहकर संतोष नहीं कर लेना चाहिये कि हमारे भीतर दूसरोंके जैसी बुराई नहीं है। अस्वाभाविक दुराचारका कोई स्वतंत्र अस्तित्व नहीं है। यह तो एक ही रोगका भयंकर लक्षण है। यदि हममें अपवित्रता भरी है, यदि हम विषय भोगकी दृष्टिसे पतित हैं, तो पहले हमें आत्म-सुधार करना चाहिये और उसके बाद पड़ोसियोंके सुधारकी आशा रखनी चाहिये। आजकल हम दूसरोंके दोष देखनेमें बहुत पटु हो गये हैं और अपने-आपको अत्यन्त निर्दोष मानकर आत्म-संतोष कर लेते हैं। इसका परिणाम दुराचारके प्रसारमें आता है। जो इस बातके सत्यको समझते हैं वे इस रोगसे छूटें तो उन्हें पता चलेगा कि यद्यपि सुधार और उन्नति कभी आसान नहीं होंगे तथापि वे संभव जरूर हैं।

यंग इंडिया २७–९–२

बढ़ता हुआ दुराचार?

सनातन धर्म कॉलेज, लाहौरके प्रिन्सिपाल लिखते हैं :

इसके साथ मैं जो अखबारकी कतरनें और विज्ञप्तियाँ वगैरा भेज रहा हूँ उन्हें देखनेकी मैं आपसे प्रार्थना करता हूँ। इनसे ही आपको सारी बातका पता चल जायेगा। यहाँ पंजाबमें युवक हितकारी संघ बहुत उपयोगी काम कर रहा है। शिक्षित समाज तथा अधिकारी-वर्गका ध्यान इसकी ओर आकृष्ट हुआ है और बालकोंके दुर्भाग्य माता-पिताओंकी भी सक्रिय दिलचस्पी इसने प्राप्त की है। बिहारके पंडित सीतारामदासजी इस आन्दोलनके प्रणेता हैं और इस आन्दोलनके आश्रयदाताओंमें यहाँके अनेक प्रतिष्ठित सज्जनोंके नाम गिनाये जा सकते हैं।

इसमें तनिक भी संदेह नहीं कि कोमल वयके बालकोंको फँसानेका यह दुराचार भारतके दूसरे भागोंकी अपेक्षा इधर पंजाब और उत्तरी-पश्चिमी सीमाप्रान्तमें ज्यादा है।

क्या मैं आपसे प्रार्थना करूँ कि 'हरिजन' में अथवा किसी दूसरे अखबारमें लेख या पत्र लिखकर आप इस बुराईकी तरफ देशका ध्यान आकर्षित करें?

बहुत दिन हुए इसी अत्यन्त नाजुक प्रश्नके संबंधमें युवक-संघके मंत्रीने भी मुझे लिखा था। उनका पत्र आने पर मैंने डॉ. गोपीचन्दके साथ पत्र-व्यवहार शुरू किया और उनसे मुझे यह मालूम हुआ कि संघके मंत्रीने जो बातें अपने पत्रमें लिखी हैं वे सब सच्ची हैं। लेकिन मुझे यह स्पष्ट नहीं सूझ रहा था कि इस प्रश्नकी 'हरिजन' में या किसी दूसरे पत्रमें चर्चा करूँ या न करूँ। इस दुराचारका मुझे पता था परन्तु मुझे इस बातका विश्वास नहीं था कि अखबारोंमें इसकी चर्चा करनेसे कोई लाभ हो सकेगा या नहीं। यह विश्वास मुझे अब भी नहीं है।

किन्तु कॉलिजके प्रिन्सिपाल साहबने जो प्रार्थना की है उसकी मैं अवहेलना नहीं करना चाहता।

यह दुराचार नया नहीं है। यह देशमें व्यापक रूपसे फैला हुआ है। चूंकि उसे गुप्त रखा जाता है, इसलिए वह आसानीसे पकड़में नहीं आ सकता। वह विलासी जीवनके साथ ही जुड़ा रहता है। प्रिन्सिपाल साहबके बताये हुए किस्सेसे तो यह प्रकट होता है कि अध्यापक ही अपने विद्यार्थियोंको भ्रष्ट करनेके दोषी हैं। बाड़ जब खुद ही खेतको चर जाय तो फिर वह बेचारा किससे रक्षाकी आशा करे? बाइबलमें कहा गया है नमक जब खुद अलौना हो जाय तब कौनसी चीज उसे नमकीन बना सकती है?

यह एक एसा प्रश्न है जिसे न तो कोई जांच-कमेटी ही हल कर सकती है और न सरकार हल कर सकती है। यह तो नैतिक सुधारकका काम है। माता-पिताओंके दिलमें उनके उत्तरदायित्वका भान पैदा करना चाहिये। विद्यार्थियोंको शुद्ध और स्वच्छ जीवनके निकट संसर्गमें लाना चाहिये। सदाचार और शुद्ध निर्विकार जीवन ही सच्ची शिक्षाका आधार स्तंभ है इस मान्यताका गंभीरताके साथ प्रचार करना चाहिये। शिक्षण संस्थाओंके ट्रस्टियोंको अध्यापकोंके चुनावमें बहुत ही सावधानी रखनी चाहिये और अध्यापकोंके चुनावके बाद भी उन्हें इस बातका ध्यान रखना चाहिये कि उनका आचरण ठीक है या नहीं? ये तो मैंने थोड़ेसे उपाय बताये हैं। इन उपायोंके सहारे यह भयंकर दुराचार निर्मूल भले न हो परन्तु कमसे कम नियंत्रणमें तो आ ही सकता है।

हरिजनसेवक १–५–१५

३४

सुधारकोंका कर्तव्य

लाहौरके सनातन धर्म कॉलेजके प्रिंसिपालका निम्नलिखित पत्र मैं सहर्ष यहाँ प्रकाशित कर रहा हूँ :

बालकों पर जो अप्राकृतिक अत्याचार हो रहे हैं उनकी ओर मैं अधिकसे अधिक जोर देकर आपका ध्यान आकर्षित करना चाहता हूँ।

"आपको यह तो मालूम ही होगा कि इनमें से बहुत ही थोड़े मामलोंकी रिपोर्ट पुलिसमें लिखाई जाती है या उन्हें अदालतमें ले जाते हैं। इधर कुछ दिनोंसे पंजाबमें ऐसे मामले इतने ज्यादा होने लगे हैं कि जिनकी कोई हद नहीं। इस पत्रके साथ आपके अवलोकनार्थ अखबारोंकी कुछ कतरनें भेज रहा हूँ। अदालतोंमें कभी कभी जो इने-गिने मामले आते हैं उनमें से अत्यन्त बीभत्स किस्से ही अखबारोंमें प्रकाशित होते हैं। इन्हें पढ़कर आपको यह पूरी तरहसे मालूम हो जायेगा कि हमारे कोमल वयके बालक-बालिकाओं पर यह भय किस कदर झूल रहा है। कुछ महीने पहले लाहौरमें गुंडोंने दिन-दहाड़े कुछ स्कूलोंके फाटकों पर छोटे बच्चोंको उठा ले जानेके साहसिक प्रयत्न किये थे। आज भी बालकोंके स्कूलमें जाने और स्कूलसे आते समय खास इन्तजाम रखना पड़ता है। अदालतोंमें जो मामले गये हैं उनकी रिपोर्टोंमें बालकोंके ऊपर किये गये जिन आक्रमणोंका वर्णन आया है वे अत्यन्त क्रूरता और साहस पूर्ण हैं। ऐसे राक्षसी काम तो विरले ही मनुष्य कर सकते हैं।

साधारण जनता या तो इस विषयमें उदासीन है या वह इस तरहकी लाचारी महसूस करती है कि इन अपराधोंको संगठित होकर कुचल देनेका उसमें आत्म-विश्वास नहीं है।

पंजाब सरकार द्वारा जारी किये गये सरक्यूलरकी जो नकल इसके साथ मैं भेज रहा हूँ उससे आपको यह पता चल जायगा

कि जनता और सरकारी अफसरोंकी उदासीनताके कारण सरकार भी इस विषयमें अपनेको किस तरह लाचार अनुभव करती है।

"आपने यंग इंडिया के ९ सितम्बर, १९२९ के तथा २७ जून १९२९ के अंकमें ठीक ही कहा था कि इस प्रकारके अप्राकृतिक व्यभिचारके अपराधोंके संबंधमें सार्वजनिक चर्चा करनेका समय आ गया है और यह कि इस विषयमें सारे देशमें लोकमत जाग्रत करनेके लिए अखबारों द्वारा इन अपराधोंका प्रकाशन ही एकमात्र प्रभावोत्पादक उपाय है।

मैं आपको अत्यन्त आदरके साथ यह बतलाना चाहता हूं कि मामलेकी भयंकर स्थितिमें कमसे कम इतना तो हमें करना ही चाहिये। मेरी आपसे प्रार्थना है कि इस दुराचारके विरुद्ध जोरदार अखबारी आन्दोलन चलानेके लिए आप अपनी प्रभावशाली आवाज उठाकर दूसरे अखबारोंको रास्ता दिखायें।"

इस बुराईके खिलाफ हमें अविराम लड़ाई लड़नी चाहिये इस विषयमें तो शंका हो ही नहीं सकती। इस पत्रके साथ जो अत्यन्त घृणोत्पादक रिपोर्टें भेजी गई थीं उन्हें मैंने पढ़ डाला है। सनातन धर्म कॉलेजके आचार्यने मेरे जिन लेखोंका उल्लेख किया है उनमें जिस प्रकारके मामलोंकी मैंने चर्चा की थी उससे ये मामले अलग ही प्रकारके हैं। वे मामले केवल अध्यापकोंकी अनीतिके थे जिनमें उन्होंने बालकोंको फुसलाया था। और इन रिपोर्टोंमें अधिकतर जिन मामलोंका वर्णन आया है, उनमें तो गुंडोंने कोमल वयके बालकों पर अप्राकृतिक व्यभिचार करके उनका खून किया है। अप्राकृतिक व्यभिचार और उसके बाद खून किये जानेके मामले हालांकि और भी अधिक घृणा पैदा करनेवाले मालूम होते हैं, तो भी मेरा यह विश्वास है कि जिन मामलोंमें बालक स्वेच्छासे अपने अध्यापकोंकी विषय-वासनाके शिकार होते हैं उनकी अपेक्षा इस प्रकारके मामलोंका इलाज करना ज्यादा आसान है। दोनों ही मामलोंमें सुधारकोंके अनन्य आत्म त्याग और इस बीभत्स कार्यके सम्बन्धमें लोगोंकी अन्तरात्माको जगानेकी आवश्यकता है। पंजाबमें चूंकि इस प्रकारके अपराध सब जगहोंसे ज्यादा होते जान पड़ते हैं इसलिए वहांके अखबारोंका यह कर्तव्य है कि वे जाति

और बर्मशा मेव एक तरफ रखकर एक जगह एकत्र हों और बालकोंको फुसलाकर या उन्हें उठा ले जाकर उनके साथ अप्राकृतिक बलात्कार करके उनका खून करनेवाले अपराधियोंके पंजेसे इस पंचनद प्रदेशके कोमल वयके किशोरोंको बचानेके उपाय खोजें। अपराधियोंकी निन्दा करनेवाले प्रस्ताव पास करनेसे कुछ भी होनेवाला नहीं है। सारे ही अपराध भिन्न-भिन्न प्रकारके रोग हैं और उन्हें ऐसे रोग समझकर ही सुधारकोंको उनका इलाज करना चाहिये।

इसका अर्थ यह नहीं कि पुलिस इन मामलोंको सार्वजनिक अपराध समझनेका अपना कार्य स्थगित रखेगी। किन्तु पुलिस जो कार्रवाई करती है उसका उद्देश्य इन सामाजिक अपराधोंके मूल कारण ढूंढकर उन्हें दूर करनेका होता ही नहीं। यह तो सुधारकोंका विशेष अधिकार है। और अगर समाजकी सदाचार-सम्बन्धी भावना और आग्रह न बढ़ा तो अखबारोंमें दुनिया भरके लेख लिखने पर भी ऐसे अपराध बढ़ते ही जायेंगे। इसका सीधा-सादा कारण यही है कि इस उल्टे रास्ते पर जानेवाले लोगोंकी नैतिक भावना कुंठित हो जाती है और वे अखबारोंको — खासकर उन भागोंको जिनमें ऐसे दुराचारोंके विरुद्ध जोशीली लिखावट की जाती है — शायद ही कभी पढ़ते हैं। इसलिए मुझे तो एक यही परिणामकारी मार्ग सूझ रहा है कि सनातन धर्म कॉलेजके प्रिंसिपाल जैसे कुछ उत्साही सुधारक यदि वे उनमें से एक हों तो दूसरे सुधारकोंको एकत्रित करें और इन बुराईको दूर करनेके लिए कोई सामूहिक उपाय हाथमें लें।

हरिजनसेवक २–११–४५

३५

नवयुवकोंसे

आजकल कहीं कहीं नवयुवकोंमें यह प्रवाह चल पड़ा है कि बड़े बूढ़े जो कुछ कहें उसमें विश्वास न किया जाय। मैं यह तो नहीं कहना चाहता कि उनके ऐसा माननेका बिलकुल कोई उचित कारण ही नहीं है। लेकिन मैं देशके युवकोंको इस बातसे आगाह जरूर करना चाहता हूँ कि बड़े-बूढ़े स्त्री-पुरुषों द्वारा कही हुई हरएक बातको वे सिर्फ इसी कारण माननेसे इनकार न करें कि उसे बड़े-बूढ़ोंने कहा है। अकसर बुद्धिकी बात जैसे बच्चोंके मुँहसे निकल जाती है उसी तरह बहुधा वह बूढ़ोंके मुँहसे भी वह निकलती है। स्वर्ण-नियम तो यही है कि हरएक बातको बुद्धि और अनुभवकी कसौटी पर कसा जाय फिर वह किसीकी भी कही या बताई हुई क्यों न हो।

अब कृत्रिम साधनोंसे सन्तति-नियमन करनेकी बात पर मैं आता हूँ। हमारे अन्दर यह बात जमा दी गई है कि अपनी विषय-वासनाकी पूर्ति करना भी हमारा वैसा ही कर्तव्य है जैसा वैध रूपमें लिए हुए कर्जको चुकाना हमारा कर्तव्य है और यदि हम ऐसा न करें तो उसके दण्डके रूपमें हमारी बुद्धि कुण्ठित हो जायगी। इस विषयेच्छाको सन्तानोत्पत्तिकी इच्छासे अलग माना जाता है और सन्तति-नियमनके लिए कृत्रिम साधनोंके समर्थकोंका कहना है कि गर्भाधान एक आकस्मिक क्रिया है; जबतक सहवास करनेवाले स्त्री-पुरुषको बच्चे पैदा करनेकी इच्छा न हो तब तक उन्हें गर्भ-धारण नहीं होने देना चाहिये। मैं बड़े साहसके साथ यह कहता हूँ कि यह एक ऐसा सिद्धान्त है जिसका कहीं भी प्रचार करना बड़ा खतरनाक है और हिन्दुस्तान जैसे देशके लिए तो जहां मध्यम श्रेणीके पुरुष अपनी जननेन्द्रियका दुरुपयोग करके अपना पुरुषत्व खो रहे हैं यह प्रचार और भी ज्यादा बुरा है। अगर विषयेच्छाकी पूर्ति कर्तव्य हो। तब तो जिस अप्राकृतिक व्यभिचारका

बारेमें कुछ समय पहले मैंने लिखा था यह तथा विषय-तृप्तिके कुछ अन्य उपाय भी प्रशंसनीय माने जायंगे।

पाठकोंको यह याद रखना चाहिये कि बड़े बड़े आदमी भी उस क्रियाका समर्थन करते पाये गये हैं जिसे सामान्यतः अप्राकृतिक विषय सेवन कहा जाता है। संभव है कि इस कथनसे पाठकोंको कुछ ठेस लगे लेकिन अगर किसी तरह इस पर प्रतिष्ठाकी छाप लग जाय तो लड़कों और लड़कियोंमें अपनी ही जातिके सदस्यों द्वारा काम-वासना तृप्त करनेकी अप्राकृतिक वृत्ति बढ़ जायगी। मेरे लिए तो कृत्रिम साधनोंके उपयोगमें और उन उपायोंमें कोई खास फर्क नहीं है जिन्हें लोगोंने अभी तक अपनी विषयेच्छाकी पूर्तिके लिए अपनाया है और जिनके कुपरिणामोंसे बहुत कम लोग परिचित हैं। मुझे मालूम है कि गुप्त पापने पाठशालाके लड़के-लड़कियोंका कैसा भयंकर विनाश किया है। विज्ञानके नाम पर कृत्रिम साधनोंके प्रचलित होने और समाजके प्रसिद्ध नेताओंकी उस पर मुहर लग जानेसे समस्या और बढ़ गई है और जो सुधारक सामाजिक जीवनकी शुद्धिका काम करते हैं उनका कार्य आज असंभव-सा हो गया है। मैं पाठकोंको यह बताते हुए किसीके साथ विश्वासघात नहीं कर रहा हूं कि ऐसी कुमारी लड़कियां मौजूद हैं जिन पर आसानीसे किसी भी बातका प्रभाव पड़ सकता है और जो स्कूल-कालेजोंमें पढ़ती हैं परन्तु जो बड़ी उत्सुकतासे संतति-निग्रहके साहित्य और पत्रिकाओंका अध्ययन करती हैं और जिनके पास उसके साधन भी मौजूद हैं। इन साधनोंके प्रयोगको विवाहित स्त्रियों तक सीमित रखना असंभव है। जब विवाहके उद्देश्य और उच्चतम उपयोगकी कल्पना ही पाशविक विकारकी तृप्ति हो और यह विचार तक न किया जाय कि इस प्रकारकी तृप्तिका कुदरती नतीजा क्या होगा तब विवाहकी सारी पवित्रता नष्ट हो जाती है।

मुझे इसमें जरा भी शंका नहीं है कि जो विद्वान पुरुष और स्त्रियां धर्म प्रचारके लिए आवश्यक उत्साहके साथ कृत्रिम साधनोंके पक्षमें आन्दोलन कर रहे हैं वे देशके युवक-युवतियोंकी अपार हानि कर रहे हैं। उनका यह विश्वास झूठा है कि ऐसा करके वे उन गरीब स्त्रियोंको संकटसे बचा लेंगे जिन्हें अपनी इच्छाके विरुद्ध मजबूरन् बच्चे पैदा करने पड़ते हैं।

जिन्हें बच्चोंकी संख्या मर्यादित करनेकी जरूरत है उनके पास तो इनकी आसानीसे पहुंच नहीं होगी। हमारी गरीब स्त्रियोंके पास न तो वह ज्ञान होता है और न वह तालीम होती है जो पश्चिमकी स्त्रियोंके पास होती है। अवश्य ही यह आन्दोलन मध्यम श्रेणीकी स्त्रियोंकी तरफसे नहीं किया जा रहा है, क्योंकि उन्हें इस ज्ञानकी उतनी जरूरत नहीं है जितनी कि निर्धन वर्गोंकी स्त्रियोंको है।

परन्तु सबसे बड़ी हानि जो यह आन्दोलन कर रहा है यह है कि पुराना आदर्श छोड़कर यह उसके स्थान पर एक ऐसा आदर्श स्थापित कर रहा है जिस पर यदि अमल हुआ तो मानव-जातिका नैतिक और शारीरिक विनाश निश्चित है। वीर्यके व्यर्थ व्ययको प्राचीन साहित्यमें जो इतना भयंकर कृत्य माना गया है, वह कोई अज्ञानजन्य अन्धविश्वास नहीं था। कोई किसान अगर अपने पासका बढ़ियासे बढ़िया बीज पथरीली जमीनमें बोये या कोई खेतका मालिक बढ़िया जमीनवाले अपने खेतमें ऐसी परिस्थितियोंमें अच्छा बीज डाले जिसमें उसका उगना असंभव हो तो उसके लिए क्या कहा जायगा? भगवानने पुरुषको ऊंचीसे ऊंची शक्ति वाला बीज प्रदान किया है और स्त्रीको ऐसा क्षेत्र (खेत) दिया है जिसके बराबर उपजाऊ धरती इस दुनियामें और कहीं नहीं है। अवश्य ही पुरुषकी यह भयंकर मूर्खता है कि वह अपनी इस सबसे कीमती सम्पत्तिको व्यर्थ जाने देता है। उसे अपने अत्यन्त मूल्यवान जवाहरात और मोतियोंसे भी अधिक सावधानीसे साथ इस सम्पत्तिकी रक्षा करनी चाहिये। इसी तरह वह स्त्री भी असम्य मूर्खता करती है जो अपने जीवोत्पादक क्षेत्रमें बीजको नष्ट हो जाने देनेके इरादेसे ही ग्रहण करती है। ये दोनों ईश्वर प्रदत्त प्रतिभाके दुरुपयोगके अपराधी माने जायंगे और जो चीज उन्हें दी गई है वह उनसे छीन ली जायगी। कामकी प्रेरणा एक सुन्दर और उदात्त वस्तु है। उसमें लज्जित होनेकी कोई बात नहीं है। परन्तु वह सन्तानोत्पत्तिके लिए ही बनाई गई है। उसका और कोई उपयोग करना ईश्वर और मानवता दोनोंके प्रति पाप है। सन्तति-निग्रहके कृत्रिम साधन पहले भी थे और आगे भी रहेंगे। परन्तु पहले उनके काममें लेना पाप समझा जाता था।

'सिला

है। मेरे खयालमें कृत्रिम साधनोंके हिमायती भारतके युवकोंकी सबसे बड़ी कुसेवा यह कर रहे हैं कि उनके दिमागोंमें वे गलत विचारधारा भर रहे हैं। भारतके युवा स्त्री-पुरुषोंको जिनके हाथमें देशका भविष्य है, इस झूठे देवतासे सावधान रहना चाहिये। ईश्वरने उन्हें जो खजाना दिया है उसकी रक्षा करनी चाहिये और इच्छा हो तो उसका उसी काममें उपयोग करना चाहिये जिसके लिए वह बनाया गया है।

हरिजन २८-३-१६

३६
स्वेच्छाचारकी दिशामें

एक युवकने लिखा है

संसारका कायाकल्प करनेके लिए आप चाहते हैं कि प्रत्येक मनुष्य सदाचारी हो जाय। परन्तु आपकी बात ठीक ठीक मेरी समझमें नहीं आ रही है। आखिर इस सच्चरित्रतासे आपका क्या अभिप्राय है? यह केवल स्त्री-पुरुषके संबंध तक ही सीमित है या इसमें मनुष्यके समस्त व्यवहारका समावेश होता है? मुझे तो शक है कि सदाचारकी आपकी बात केवल स्त्री-पुरुषोंके संबंध तक ही सीमित है क्योंकि आप अपने पूंजीपति और जमींदार दोस्तोंको तो कभी यह बतानेका कष्ट नहीं करते कि वे कैसे अन्यायपूर्वक मजदूरों और किसानोंका पेट काट-काटकर अपनी जेबें भरते रहते हैं। बचारे युवक और युवतियोंकी चारित्रिक खामियों पर उनकी निन्दा और ताड़ना करते हुए आप कभी थकते नहीं और सदा उनके सामने ब्रह्मचर्य-पालनका आदर्श उपस्थित करते रहते हैं। आप भारतीय युवकोंका मानस समझनेका दावा करते हैं। मैं किसीका प्रतिनिधि होनेका दावा नहीं करता। अतः किसी वर्गके प्रतिनिधिके रूपमें नहीं किन्तु एक स्वतंत्र युवकके नाते मैं आपके इस दावेको चुनौती देनेका साहस करता हूं। आजके मध्यम वर्गका युवक-समुदाय

जिन परिस्थितियोंसे गुजर रहा है, लंबी बेकारी जीवनको कुचलने-वाले सामाजिक रीति-रिवाज और सह-शिक्षण द्वारा उत्पन्न प्रलोभन उसकी कैसी दुर्दशा कर रहे हैं — इसकी सही और पूरी जानकारी आपको है, ऐसा मालूम नहीं होता। यह सब पुराने और नये विचारोंके बीच चल रहे संघर्षका परिणाम है और इसमें युवकोंके पल्ले केवल दुःख और पराजय ही आयी है।

मैं आपसे नम्रतापूर्वक अनुरोध करता हूं कि आप युवकोंके प्रति दयाभाव रखें और उन्हें नीतिकी अपनी अतिशय शुद्धतावाली कसौटी पर न कसें। मैं तो ऐसा मानता हूं कि यदि भोगतृप्ति दोनोंकी सहमतिसे और पारस्परिक प्रेमके साथ की जाय तो वह नैतिक ही है, भले वह विवाहके दायरेमें यानी अपनी पत्नीके साथ हो या उसके बाहर। सन्तति-नियमनके कृत्रिम उपायोंकी खोजके बाद विवाहकी प्रथामें रहा हुआ संभोग-मर्यादाका आधार नष्ट हो गया है। अब तो उस प्रथाकी उपयोगिता इतनी ही रह गयी है कि उससे सन्तानकी रक्षा और उसके कल्याणका ध्येय सधता है। ये बातें सुनकर शायद आपके दिलको चोट पहुंचेगी, पर मैं आपसे यह प्रार्थना करता हूं कि आजकलके युवकोंको भला-बुरा कहनेसे पहले कृपया अपनी तरुणाईको आप न भूलियेगा। आप स्वयं क्या कम कामी थे? आप कितना विषय-भोग करते थे? संभोगके प्रति आपकी यह घृणा शायद आपकी इस अतिका ही परिणाम है। इसलिए अब आप ऐसे सन्यासी बन रहे हैं और इसमें आपको पाप ही पाप नजर आता है। अगर तुलना ही करने लगें तो मेरा खयाल है कि आजकलके कई युवक इस विषयमें जरूर आपसे ज्यादा अच्छे साबित होंगे।

इस तरहके अनेक पत्र मेरे पास आते हैं। इस युवकसे मेरा परिचय हुए लगभग तीन महीने हुए होंगे, परन्तु इतने थोड़े समयमें ही जहां तक मुझे पता है इसके भीतर कई परिवर्तन हो चुके हैं। अब भी यह एक गंभीर परिस्थितिसे ही गुजर रहा है। उसके और भी पत्र मेरे पास हैं जिन्हें अगर मैं चाहूं तो प्रकाशित कर सकता हूं और इसमें उसे

प्रसन्नता ही होगी। लेकिन मैंने ऊपर जो अंश दिया है, वह कितने ही युवकोंके विचारों और प्रवृत्तियोंको प्रगट करता है।

बेशक युवकों और युवतियोंसे मुझे सहानुभूति अवश्य है। अपनी जवानीके दिनोंकी भी मुझे अच्छी तरह याद है। मुझे देशके युवकों और युवतियों पर श्रद्धा है। इसीलिए तो उनकी समस्याओं पर विचार करते हुए मैं कभी थकता नहीं।

मेरे लिए तो नीति सदाचार और धर्म एक ही बात है। आदमी अगर पूरी तरहसे सदाचारी हो परन्तु धार्मिक न हो तो उसका जीवन बालू पर खड़े किये गये मकानकी तरह समझिये। इसी तरह नीतिहीन धर्माचरण भी दूसरोंको दिखाने भरके लिए होता है और साम्प्रदायिक उपद्रवोंका कारण बनता है। नीतिमें सत्य अहिंसा और ब्रह्मचर्य भी आ जाता है। मनुष्य-जातिने आज तक सदाचारके जितने नियमोंका पालन किया है वे सब इन तीन सर्वप्रधान गुणोंसे संबंधित हैं या उन्हींसे प्राप्त हुए हैं। अहिंसा तथा ब्रह्मचर्यकी उत्पत्ति सत्यसे होती है और सत्य मेरे लिए प्रत्यक्ष ईश्वर ही है।

संयम-पालनके बिना स्त्री या पुरुष अपना नाश ही करेगा। इंद्रियों पर कोई नियंत्रण न होना बिना पतवारकी नावमें सवार होने जैसा है। ऐसी नाव अपने रास्तेकी पहली ही चट्टानसे टकराकर टूट जाती है। इसीलिए मैं संयम पर इतना जोर देता हूं। पत्रलेखकका यह कहना ठीक है कि सन्तति-नियमनके कृत्रिम उपायोंके आ जानेसे विषय-भोग संबंधी विचारोंमें परिवर्तन हो गया है। यदि पारस्परिक सम्मतिसे संभोग — फिर भले वह विवाहके दायरेमें हो या उसके बाहर और इसी दलीलको थोड़ा और बढ़ा दिया जाय तो ऐसा भी कह सकते हैं कि भले वह पुरुष और पुरुष अथवा स्त्री और स्त्रीके बीच ही क्यों न हो — नीतियुक्त बन जाता है तब तो स्त्री-पुरुष-संबंध विषयक नीतिकी बुनियाद ही नष्ट हो जाती है और युवकोंके लिए फिर सचमुच दुःख और पराजय के सिवा और कुछ बाकी नहीं रहता। भारतमें ऐसे अनेक युवक और युवतियां मिलेंगी जो भोग-वासनाके जिस पाशमें वे अपनेको बंधा पाती हैं उससे छूटना चाहती हैं। यह वासना मनुष्यको गुलाम बनानेवाली प्रबलतम बंधोंसे

भी ज्यादा प्रबल है। यह आशा रखना व्यर्थ है कि सन्तति-नियमनके कृत्रिम उपायोंका उपयोग केवल सन्तानकी संख्या मर्यादित करनेके लिए ही होगा। नीतिमय जीवनकी आशा तभी तक है जब तक कि भोगेच्छाकी तृप्तिका संबंध स्पष्टतः बहुमूल्य नये जीवनके निर्माणसे है। यह सिद्धान्त विकृत भोगतृप्तिको और उससे कुछ कम मात्रामें स्व-पर-स्त्रीका भेद न करनेवाली स्वेच्छाचारपूर्ण भोगतृप्तिको निषिद्ध ठहराता है। भोगेच्छाकी तृप्तिको उसके कुदरती परिणामसे विच्छिन्न कर दिया जाय तो दूषित स्वेच्छाचार तथा अप्राकृतिक पापके लिए नहीं तो उसकी उपेक्षाके लिए तो रास्ता खुल ही जाता है।

स्त्री-पुरुष-संबंधकी समस्या पर विचार करते समय अपने व्यक्तिगत अनुभव कहना भी अनुचित न होगा। जिन पाठकोंने मेरी आत्मकथा नहीं पढ़ी है वे मेरी विषय-लोलुपताके बारेमें कहीं इस पत्रलेखककी तरह ही अपना विचार न बना लें इसलिए उन्हें सावधान कर देना ठीक होगा। सबसे पहली बात तो यह है कि मैं चाहे कितना ही विषयी रहा होऊं, परन्तु मेरी विषय-वासना अपनी पत्नी तक ही सीमित थी। फिर मैं एक बहुत बड़े सम्मिलित परिवारमें रहता था जिससे रातके कुछ घंटोंको छोड़कर हमें एकान्त कभी मिलता ही नहीं था। दूसरे, तेईस वर्षकी अवस्थामें ही मैं इतना समझने लायक जाग्रत हो गया था कि केवल भोगके लिए समागम करना निरी मूर्खता है। और सन् १८९९ में यानी जब मैं तीस सालका था मैं पूर्ण ब्रह्मचर्यकी प्रतिज्ञा लेनेका निश्चय कर चुका था। मुझे सन्यासी कहना गलत होगा। मेरे जीवनके नियामक आदर्श तो सारी मनुष्य-जातिके ग्रहण करने योग्य हैं। मैंने उन्हें अपने क्रमिक जीवन-विकासके साथ प्राप्त किया है। हरएक कदम मैंने पूरी तरह सोच-समझकर गहरे मननके बाद उठाया है। ब्रह्मचर्य और अहिंसा दोनों मेरे व्यक्तिगत अनुभवसे मुझे प्राप्त हुए हैं और मेरे सार्वजनिक कर्तव्योंको पूरा करनेके लिए उनका पालन नितान्त आवश्यक था। दक्षिण अफ्रीकामें एक गृहस्थ एक बैरिस्टर, एक समाज-सुधारक अथवा एक राजनीतिज्ञकी हैसियतसे मुझे जो एकाकी जीवन व्यतीत करना पड़ा है उस जीवनमें अपने उपर्युक्त कर्तव्योंके पालनार्थ मेरे लिए यह जरूरी हो गया

कि मैं कठोर संयमका पालन करूं तथा अपने देशबन्धुओं और यूरोपियनोंके साथ व्यवहार करते हुए सत्य और अहिंसाका उतनी ही कड़ाईसे पालन करूं।

मैं एक मामूली आदमीसे अधिक ऊंचा होनेका दावा नहीं करता। सामान्य मनुष्यमें हो उससे भी कम योग्यता मुझमें है। मेरे इस अहिंसा और ब्रह्मचर्य-व्रतके पालनमें भी कोई बड़ाई देने लायक बात नहीं, क्योंकि वे तो वर्षोंके निरन्तर प्रयाससे मेरे लिए साध्य हुए हैं। मुझे तो इसमें जरा भी सन्देह नहीं कि मैंने जो सिद्धि प्राप्त की है उसे हर मनुष्य और हर स्त्री प्राप्त कर सकती है बशर्ते वह भी मेरे जैसी आशा और श्रद्धासे चले। श्रद्धाहीन कार्य अगाध समुद्रकी थाह लेनेका प्रयत्न करने जैसा है।

हरिजनसेवक १-१ –११

५७

श्रद्धा बनाम बुद्धि

मैं वैद्योंसे कुछ अतिशय आधुनिक तथा तर्कवादी नौजवान अधिकारियोंके बीच काम कर रहा हूं। ये आधुनिक नौजवान सदा मेरा मजाक उड़ाया करते हैं मुझे शरमिन्दा करते हैं और मुझे मूर्ख समझते हैं। इसका कारण यह है कि मैं उनकी पंक्तिमें खड़ा नहीं होता भले-बुरे और गुण-दुर्गुणके बीच भेद करता हूं और उन्हें केवल सामाजिक व्यवहारकी चीज नहीं मानता। मेरे भीतरसे कोई मुझसे सदा यह कहता रहता है कि ये लोग उल्टे रास्ते पर हैं और मैं सीधे रास्ते पर चल रहा हूं। मैं अभी भी यह मानता हूं कि परम भेद के आधार पर रचे हुए नीति-सिद्धान्त जैसी कोई वस्तु अवश्य है। मेरे साथी मेरे गले यह बात उतारनेके लिए दलीलें करते हैं कि शराब पीना उतना ही बुरा है जितना कि

चाय या कॉफी पीना — उससे ज्यादा बुरा नहीं। वे लोग यह कहते हैं कि मनुष्य क्या खाता है अथवा क्या पीता है इस पर नीति अथवा सदाचारका आधार नहीं हो सकता।

"इसके सिवा — और इसी बात पर मैं खास तौरसे आपकी सलाह चाहता हूँ — उन लोगोंका यह भी कहना है कि स्त्री-पुरुष संबंधके बारेमें लगाई गई मर्यादायें केवल समाजकी व्यवस्थाकी रक्षाके लिए ही लगाई गई हैं। वैसे उनके कथनानुसार स्वेच्छासे होनेवाले स्त्री-पुरुष समागमसे किसीका कोई नुकसान नहीं होता और समाजमें कोई मुसीबत खड़ी नहीं होती। यह समागम बिलकुल स्वाभाविक और इसलिए नैतिक भी है। अतिभोग अथवा अनियम अतिभोजनके जितना ही हानिकारक है, उससे ज्यादा नहीं। जो नियम अपनी पत्नीके सम्बन्धमें निर्दोष है वह दूसरी स्त्रीके साथके व्यवहारमें सदा दोषपूर्ण नहीं हो सकता। इसमें केवल परिस्थितिके अनुसार कम या अधिक मात्राका ही सवाल होता है। निरपेक्ष नीति-नियम जैसी कोई वस्तु है ही नहीं।

मेरी श्रद्धाको इन बातोंसे आघात पहुँचता है और इन लोगोंकी दलीलसे मुझे कुछ दर्द मालूम होता है। फिर भी वाद-विवादमें वे मुझे हमेशा परेशान कर डालते हैं और मुझे अनिच्छित वस्तुका आश्रय लेना पड़ता है। इस से मेरा अविश्वास बढ़ता है।

"वस्तुतः उन लोगोंने इस विषयमें मेरे नैतिक आत्मबलकी परीक्षा उड़ा दी है और मेरी बात सच्ची होनेके बारेमें मेरे मनमें शंका उठने लगी है। फिर भी मैंने उनसे कहा है कि उनके साथ रह हारकर स्वर्गका आनन्द भोगनेकी अपेक्षा आपके जैसे पुरुषोंके साथ रहकर नरकमें जाना मैं अधिक पसन्द करूँगा।

इसलिए महात्माजी आप दूसरा अलग विचार बताकर मेरी बुद्धि और आत्माको इस संकटसे उबार लीजिए। मुझे पूरी आशा है कि आप मुझे निराश नहीं करेंगे।"

यह एक नौजवान सरकारी अधिकारीका पत्र है। लगभग पूरा पत्र मैंने यहाँ दे दिया है। मगर उदाहरणोंमें से यह एक है। जिन लोगोंने

मेरी आत्मकथा पढ़ी है वे जानते हैं कि मैं स्वयं भी ऐसे अनुभवोंके भंवरमें कैसा फंस गया था। जो लोग इस पत्रलेखकके जैसी कठिनाईमें फंसे हों उन सबसे मैं सिफारिश करता हूं कि वे मेरी आत्मकथाके ऐसे प्रसंगोंसे संबंधित प्रकरण पढ़ें। प्रलोभनसे घिरे हुए मनुष्यकी बुद्धि कोई काम नहीं पहुंचाती। अकेली श्रद्धा ही मनुष्यका उद्धार कर सकती है। बुद्धि निरंकुश मद्यपान तथा संभोगका ऊपरसे समर्थन करती जरूर मालूम होती है, परन्तु सच्ची बात तो यह है कि ऐसे प्रसंगों पर बुद्धि जड़ हो जाती है। वह कुदरती प्रेरणाके पीछे अनजाने ही घसिटती चली जाती है। परस्पर-विरोधी दो पक्षोंके वकील जब अदालतमें बुद्धिके घोड़े सरपट दौड़ाने लगते हैं तब दोनोंके बारेमें ऐसा लगने लगता है मानो न्याय उन्हींकी ओर है। और फिर भी हम जानते हैं कि एक पक्ष — या दोनों पक्ष — झूठा होना चाहिये। इसलिए अपनी नैतिक भूमिका सही होनेके विषयमें मनुष्यकी जो श्रद्धा होती है वही बुद्धिके आक्रमणसे उसकी रक्षा कर सकती है।

मेरे पत्रलेखकको बहकानेवाले लोगोंने जो दलीलें उसके सामने रखी हैं वे ऊपरसे सच्ची लगती हैं। बेशक चिरकालके लिए स्थायी रहने वाला कोई अटल नीति-सिद्धान्त नहीं है। परन्तु सापेक्ष नीति-नियम तो हैं ही जो हमारे जैसे अपूर्ण मनुष्योंके लिए तात्कालिक परिस्थितियोंमें तो अटल और चिरस्थायी ही माने जाने चाहिये। इस दृष्टिसे देखने पर डॉक्टरी सलाहके अनुसार डॉक्टर द्वारा बतायी हुई मात्रामें दवाके रूपमें ली जानेवाली शराबके सिवा दूसरी हर प्रकारकी शराबखोरी निरी अनीति है। इसी प्रकार अपनी पत्नीके सिवा अन्य किसी भी स्त्रीके सामने विकारपूर्ण नजरसे देखना भी उतना ही बुरा है। ये दोनों भूमिकायें पूर्ण रूपसे [illegible] द्वारा सिद्ध हो चुकी हैं। इसके विरुद्ध दलीलें तो सदा होती ही आई हैं। जगतमें व्याप्त ईश्वरकी हस्तीके विरुद्ध भी तो दलीलें दी ही जाती हैं। श्रद्धा ही हमारा एकमात्र आश्रय-स्थान है जो बुद्धिके ऊपर है। इस नौजवान अविवाहित जैसी कठिनाईमें जो लोग हों उन सबको मैं यही आश्रय-स्थान बताता हूं। मेरी श्रद्धाने सदा भयस्थानोंसे मेरी रक्षा की है और आज भी वह मेरी रक्षा कर रही है। उसने कभी जीवनमें

मेरे साथ धोखा नहीं किया किसीको भी कभी उसने धोखा दिया हो ऐसा मैंने जाना नहीं।

हरिजनबन्धु २४-१२-१९

९८

एक युवककी कठिनाई

नवयुवकोंके लिए मैंने हरिजन में जो लेख लिखा था उस पर एक नवयुवक जिसने अपना नाम गुप्त ही रखा है अपने मनमें उठे एक प्रश्नका उत्तर चाहता है। यों गुमनाम पत्रों पर कोई ध्यान न देना ही सबसे अच्छा नियम है लेकिन जब कोई सारयुक्त बात पूछी जाय — जैसी कि इस पत्रमें पूछी गई है — तो कभी कभी मैं इस नियमको तोड़ भी देता हू।

पत्र हिन्दीमें है और कुछ लम्बा है। उसका सारांश यह है

> आपके लेखोंको पढ़कर मुझे सन्देह होता है कि आप युवकों-के स्वभावको कहा तक समझते है। जो बात आपके लिए संभव हो गई है वह सब युवकोंके लिए समव नही है। मेरा विवाह हो चुका है। फिर भी मैं स्वयं तो संयम रख सकता हूं लेकिन मेरी पत्नी एसा नहीं कर सकती। बच्चे पैदा हों यह तो वह नहीं चाहती लेकिन विषय-भोग करना चाहती है। ऐसी हालतमें मैं क्या करूं? क्या यह मेरा कर्तव्य नही है कि मैं उसकी मानेच्छाको तृप्त करूं? दूसरे मार्गसे वह अपनी यह इच्छा पूरी करे, इतनी उदारता तो मुझमें नहीं है। फिर अखबारोंमें मैं जो पढ़ता रहता हू उससे मालूम पड़ता है कि विवाह-संबंध कराने और नव दम्पतियोंको आशीर्वाद देनेमें भी आपको कोई आपत्ति नही है। यह तो आप अवस्य जानते होंगे या आपको जानना चाहिये कि सब विवाह उस ऊचे उद्देश्यसे ही नहीं होते जिसका आपने उल्लेख किया है।

पत्रलेखकका कहना ठीक है। विवाहके लिए उमर, आर्थिक स्थिति आदिकी एक कसौटी मैंने बना रखी है। उसको पूरा करके जो विवाह होते हैं ऐसे बहुतसे विवाहोंको मैं आशीर्वाद देता हूं। इससे संभवतः यही प्रकट होता है कि देशके युवकोंको इस हद तक मैं जानता हूं कि यदि वे मेरा पथ-प्रदर्शन चाहें तो मेरा वैसा करना योग्य माना जायगा।

इस भाईका मामला एक उदाहरण-रूप है जिसके कारण वह सहानुभूतिका पात्र है। स्त्री-पुरुष-संयोगका एकमात्र उद्देश्य प्रजनन ही है, यह मेरे लिए एक प्रकारसे नई खोज है। इस नियमको जानता तो मैं पहलेसे ही था लेकिन जितना महत्त्व देना चाहिये उतना महत्त्व इसे मैंने पहले कभी नहीं दिया था। अभी तक मैं इसे केवल एक पवित्र इच्छामात्र समझता था। लेकिन अब तो मैं इसे विवाहित जीवनका एक मौलिक नियम मानता हूं और यदि इसके महत्त्वको पूरी तरह स्वीकार कर लिया जाय तो इसका पालन कठिन नहीं है। जब समाजमें इस नियमको उपयुक्त स्थान मिल जायेगा तभी मेरा उद्देश्य सिद्ध होगा क्योंकि मेरे लिए तो यह एक जीता-जागता नियम है। हम इसे हमेशा भंग करते हैं और इस भंगके फलस्वरूप भारी दंड चुकाते हैं। पत्रप्रेषक युवक यदि इसके अमूल्य महत्त्वको समझ जाय और यदि उसे आत्म-विश्वास तथा अपनी पत्नीके लिए प्रेम हो तो वह अपनी पत्नीको भी अपने विचारोंकी बना लेगा। उसका यह कहना क्या सच है कि मैं स्वयं संयम रख सकता हूं? क्या उसने अपनी विषय-वासनाको जनसेवा जैसी किसी ऊंची भावनामें परिणत कर लिया है? क्या स्वभावतः वह ऐसी कोई बात नहीं करता जिससे उसकी पत्नीकी विषय-वासनाको प्रोत्साहन मिले? उसे जानना चाहिये कि हिन्दू कामशास्त्रके अनुसार आठ तरहके सहवास माने गये हैं जिनमें मनसा द्वारा विषय-वृत्तिको प्रेरित करना भी शामिल है। क्या पत्रलेखक इनसे मुक्त है? यदि वह मुक्त हो और सच्चे दिलसे यह चाहता हो कि उसकी पत्नीमें भी विषय-वासना न रहे, तो वह पत्नीको अपना गहनतम प्रेम प्रदान करे उसे विवाहका नियम समझावे सन्तानोत्पत्तिकी इच्छाके बिना सहवास करनेसे जो शारीरिक हानि होती है वह

भी उसे समझावे और वीर्यरक्षाका महत्त्व बतलावे। इसके अलावा उसे चाहिये कि अपनी पत्नीको अच्छे कामोंकी ओर मोड़ कर उनमें उस क्याय रस और उसकी विषय-वासनाको शान्त करनेके लिए उसके भोजन व्यायाम वगैरको नियमित करनेका प्रयत्न करे। और इन सबसे बढ़कर यदि वह धर्मनिष्ठ व्यक्ति है तो अपनी उस जीवित श्रद्धाको अपनी सहचरी पत्नीमें भी उत्पन्न करनेकी कोशिश करे। क्योंकि मुझे यह बात कहनी ही होगी कि ब्रह्मचर्य-व्रतका पालन तब तक नहीं हो सकता जब तक हमारा ईश्वरमें — जो कि जीता जागता सत्य है — अटूट विश्वास न हो। आजकल तो जीवनमें ईश्वरका कोई स्थान न माननेका तथा जीते-जागते ईश्वरमें जीवित श्रद्धा रखनेकी आवश्यकताको स्वीकार किये बिना ही सर्वोच्च जीवन तक पहुंचने पर जोर देनेका एक फैशन बन गया है। मैं अपनी यह असमर्थता स्वीकार करता हूं कि जो लोग अपनेसे ऊंची किसी दैवी शक्तिमें विश्वास नहीं रखते या जीवनमें उसकी जरूरत नहीं समझते उन्हें मैं अपनी यह बात समझा नहीं सकता। मेरा अपना अनुभव तो मुझे इसी बात पर ले जाता है कि जिस जीवित नियमके अनुसार सारे विश्वका संचालन होता है उस शाश्वत नियममें अचल विश्वास रखे बिना पूर्णतम जीवन संभव नहीं है। इस श्रद्धासे विहीन व्यक्ति समुद्रमें अलग जा पड़नेवाली उस बूंदके समान है जो नष्ट होकर ही रहती है। परन्तु जो बूंद समुद्रमें ही रहती है वह समुद्रकी भव्यताका अनुभव करती है और हमारे जीवनके लिए प्राणप्रद वायु पहुंचानेका सम्मान उसे प्राप्त होता है।

हरिजनसेवक २५-४-३६

३१

संयमके लिए किस बातकी जरूरत है?

एक भाई जिनका विवाह कुछ समयमें होनेवाला है लिखते हैं

आप लिखते हैं कि संयमके पालनमें एक साथीको दूसरे साथीकी अनुमतिकी जरूरत नहीं है। क्या यह अतिशयोक्ति नहीं है? पत्नीको भी पति अपने कामोंमें भागीदार बना सके वहां तक तो राह देखना उसके लिए जरूरी है न? जिस हिन्दुस्तानमें अज्ञान कूट कूट कर भरा है और उसमें भी जहां स्त्रियोंके लिए अध्ययनके द्वार बन्द हैं वहां सब लोग अच्छी बातको समझ कर उसके अनुसार आचरण करेंगे ऐसा मान लेने भरसे काम कैसे चल सकता है? पतिका कर्तव्य के सम्बन्धमें बार बार पढ़नेके बाद भी स्पष्टीकरणकी आवश्यकता है। मैं अभी अविवाहित हूं। पर कुछ समय बाद मेरा विवाह होनेवाला है। आपसे इतना स्पष्टीकरण कराना जरूरी लगनेके कारण ही यह पत्र लिख रहा हूं।

मेरा यह अनुभव है कि जिस संयमके लिए दूसरे साथीकी अनुमतिकी जरूरत हो वह संयम टिक नहीं सकता। संयमको जरूरत केवल अन्तर्नादकी होती है। संयमकी शक्ति हृदय-बल पर आधार रखती है। और जो संयम ज्ञानमय तथा प्रेममय होता है, उसका असर आसपासके वातावरण पर पड़े बिना रहता ही नहीं। अन्तमें विरोध करनेवाला भी अनुकूल बन जाता है। यही बात पति-पत्नीके विषयमें भी होती है। यदि पत्नीके तैयार न होने तक पतिको रुकना पड़े और पतिके तैयार न होने तक पत्नीको रुकना पड़े तो बहुत संभव है कि दोनों भोगपाशसे कभी छूट ही नहीं सकेंगे। अनेक उदाहरणोंमें संयमके लिए एक-दूसरे पर आधार रखनेसे अन्तमें जो संयम टूट जाता है उसका कारण यह शिथिलता ही है। अधिक गहराईमें उतर कर हम इस प्रश्नकी जांच करें तो पता चलेगा कि जब एक-दूसरेकी अथवा दूसरे साथीकी अनुमतिकी

पाई ऐसी जाती है तब या तो दोनोंमें संयम-पालनकी सच्ची तैयारी नहीं होती या संयमकी सच्ची लगन नहीं होती। इसलिए भक्तकवि निष्कुलानन्दने कहा है कि 'त्याग न टके रे वैराग बिना' — वैराग्यके बिना जीवनमें त्याग स्थायी नहीं हो सकता। वैराग्यको यदि रागकी आवश्यकता हो सकती हो तो ही संयम-पालनकी इच्छा रखनेवालेको संयम न पालनेकी इच्छा रखनेवालेकी अनुमतिकी आवश्यकता हो सकती है।

इन पत्रलेखकका मार्ग तो सीधा है। वे अभी अविवाहित हैं और यदि ब्रह्मचर्य-पालनका उनका निश्चय सच्चा हो तो उन्हें विवाह करना ही क्यों चाहिये? माता-पिता और दूसरे सगे-सम्बन्धी तो अपने अनुभवसे यही कहेंगे कि किसी युवकका ब्रह्मचर्य-पालनकी बात करना समुद्र-मन्थन करने जैसा है। और वे ऐसा कहकर, धमकी देकर, लोभ दिखाकर और सजा देकर भी किसी युवकको ब्रह्मचर्य-पालनकी शुभ इच्छासे डिगानेका प्रयत्न करेंगे। परन्तु जिसकी दृष्टिमें ब्रह्मचर्यका भंग ही बड़ेसे बड़ा दंड हो और जो साम्राज्य मिलनेके प्रलोभनसे भी ब्रह्मचर्यका भंग करनेको तैयार न हो वह किसीकी भी धमकीसे डरकर विवाह नहीं करेगा। ब्रह्मचर्यका जिसका आग्रह इतना तीव्र नहीं है और जिसने ब्रह्मचर्य आदि संयमकी बड़ी कीमत नहीं आंकी है उसके लिए मेरा वह लेख नहीं था जिसमें से मेरा वाक्य लेकर ऊपरके पत्रमें उद्धृत किया गया है।

४०

विकाररूपी बिच्छू

कलकत्तेसे एक विद्यार्थी लिखता है :

"क्या कोई पुरुष अपनी पत्नीके साथ शुद्ध सम्बन्ध रखकर — अर्थात् ब्रह्मचर्यका पालन करके — दंपती-जीवनको सुखी बना सकता है? ऐसा पति अपनी अशिक्षित पत्नीको ब्रह्मचर्यकी महिमा कैसे समझा सकता है? उसे संयमका धर्म कैसे सिखा सकता है? और इस प्रयत्नमें वह किस हद तक सफलता प्राप्त कर सकता है? समाजके वर्तमान दूषित वातावरणमें कब तक वह पत्नीको भ्रष्ट होनेसे रोक सकता है?

मेरा और मेरे साथियोंका यह अनुभव है कि अगर पति-पत्नी स्वेच्छासे ब्रह्मचर्यका पालन करें, तो वे सुखतम सुख प्राप्त कर सकते हैं और नित्य ही सुखकी वृद्धिका अनुभव करते हैं। अशिक्षित पत्नीको ब्रह्मचर्यकी महिमा समझानेमें कठिनाई नहीं होती अथवा यह कहा जा सकता है कि ब्रह्मचर्य शिक्षित और अशिक्षितका भेद नहीं जानता। ब्रह्मचर्य केवल हृदय-बलकी चीज है। मेरी जानी हुई अशिक्षित स्त्रियां विवाहित होते हुए भी ब्रह्मचर्यका पालन कर रही हैं। समाजके दूषित वातावरणमें भी ब्रह्मचर्यका पालन करनेवाला पति अपनी पत्नीके शीलकी रक्षा करनेमें अधिक समर्थ होता है। ब्रह्मचर्यका अभाव पत्नीको भ्रष्ट होनेसे नहीं बचाता परन्तु वह पत्नीके भ्रष्टाचारको आमन्त्रणका कारण बनता है। ऐसे उदाहरण दिये जा सकते हैं।

ब्रह्मचर्यकी शक्तिकी कोई सीमा ही नहीं है। अनेक उदाहरणोंमें मेरा अनुभव यह है कि ब्रह्मचर्यका पालन करनेवाला स्वयं विकारोंसे मुक्त नहीं होता इसीलिए वह अपने प्रयत्नका असर पत्नी पर नहीं डाल पाता। विकार बड़ा चतुर है इसलिए अपने भाई-बन्धुओंको पहचाननेमें उसे जरा भी देर नहीं लगती। जो पत्नी विकाररहित नहीं हुई है जो विकारोंको छोड़नेके लिए अभी तैयार भी नहीं हुई है वह पत्नी पतिके

हृदयमें छिपे हुए विकारको तुरन्त पहचान लेती है और उसके विविध तथा निष्कल प्रयत्नका मनमें मजाक उड़ाकर स्वयं निर्भय रहती है। इस विषयमें कोई शंका नहीं कि जो ब्रह्मचर्य अचल और अटल है और जिसके साथ शुद्ध प्रेम जुड़ा हुआ है वह ब्रह्मचर्य साथीके विकारको जलाकर भस्म कर डालता है।

बेलूरमें मैंने अनेक सुन्दर मूर्तियां देखी थीं। एक मूर्ति उनमें ऐसी है जिसके शिल्पकारने कामको बिच्छूकी उपमा दी है। उस बिच्छूने एक कामिनीको डंक मारा है। डंकके तापसे उस कामिनीको वह नग्न कर देता है। इसके बाद वह कामरूपी बिच्छू अपने डंकको टेढ़ा करके अपनी विजयके अभिमानमें कामिनीके पैरके पास पड़ा पड़ा उसके सामने हंस रहा है। उस बिच्छू पर जिस पतिने विजय प्राप्त की है उसकी आंखोंमें उसके स्पर्शमें तथा उसकी वाणीमें ब्रह्मचर्यकी शीतलता होती है। वह अपने पास रहनेवाले लोगोंके विकारोंको एक क्षणमें ठंडा करके शान्त कर देता है।

४१

विद्यार्थियोंके लिए

"हरिजन के पिछले एक अंकमें आपने एक युवककी कठिनाई नामक एक लेख लिखा है जिसके संबंधमें मैं नम्रतापूर्वक आपको यह पत्र लिख रहा हूं। मुझे ऐसा लगता है कि आपने उस विद्यार्थीके साथ न्याय नहीं किया है। यह प्रश्न आसानीसे हल होनेवाला नहीं है। उसके सवालका आपने जो जवाब दिया है, वह अस्थिर और सामान्य ढंगका है। आपने विद्यार्थियोंसे यह कहा है कि वे झूठी प्रतिष्ठाका खयाल छोड़कर साधारण मजदूरोंकी तरह बन जायं। यह सारी सिद्धान्तकी बात आदमीको बहुत रास्ता नहीं बताती और न आप जैसे अत्यन्त व्यावहारिक आदमीको यह बात शोभा देती है। इस प्रश्न पर आप अधिक विस्तारके साथ विचार करनेकी कृपा करें और नीचे मैं जो उदाहरण दे रहा हूं

उसमें क्या रास्ता निकाला जाय इसका विस्तृत व्यावहारिक और व्यापक उत्तर दें।

मैं लखनऊ विश्वविद्यालयमें एम ए का विद्यार्थी हूं। प्राचीन भारतीय इतिहास मेरा विषय है। मेरी उमर लगभग २१ सालकी है। म विद्याका प्रेमी हूं और मेरी इच्छा है कि जीवनमें जितनी भी विद्या प्राप्त कर सकूं उतनी करूं। आपका बताया हुआ जीवनका आदर्श भी मुझे प्रिय है। एकाध महीनेमें मैं एम ए फाइनलकी परीक्षा दे दूंगा और मेरी पढ़ाई पूरी हो जायेगी। इसके बाद मुझे जीवनमें प्रवेश करना पड़ेगा।

मुझे अपनी पत्नीके अलावा चार भाइयों (वे सब मुझसे छोटे हैं और एककी शादी भी हो चुकी है) दो बहनों (दोनों शायद वर्षसे छोटी हैं) और माता-पिताका पोषण करना है। हमारे पास कोई पूंजीका साधन नहीं है। जमीन है लेकिन वह बहुत ही थोड़ी है।

“अपने भाई-बहनोंकी शिक्षाके लिए मैं क्या करूं? फिर बहनोंकी शादी भी तो जल्दी करनी है। इस सबके अलावा सारे परिवारके लिए अन्न और वस्त्रका खर्च कहांसे जुटाऊंगा? मुझे मौज-शौक और टीमटामसे रहनेका मोह नहीं है। मैं और मेरे आश्रित जन अच्छा नीरोग जीवन बिता सकें और वक्त जरूरतका काम अच्छी तरह निकल जाय तो इतनेसे मुझे संतोष होगा। दोनों समय स्वास्थ्यकर आहार और साफ-सुथरे कपड़े मिल जायं बस इतना ही मेरे सामने सवाल है।

पैसेके बारेमें मैं ईमानदारीके साथ रहना चाहता हूं। भारी सूद लेकर या गरीबको चूसकर मुझे रोजी नहीं कमानी है। देशसेवा करनेकी भी मेरी इच्छा है। अपने उस लेखमें आपने जो शर्त रखी है, उन्हें पूरा करनेके लिए मैं तैयार हूं।

लेकिन मुझे यह नहीं सूझ रहा है कि मैं क्या करूं? शुरुआत कहांसे और कैसे की जाय? शिक्षा मुझे केवल किताबी और अव्यावहारिक मिली है। कभी कभी मैं सूत कातनेका विचार

करता हूं। परन्तु कातना सीखूं कैसे और उस सूतका क्या होगा इसका भी मुझे पता नहीं।

जिन परिस्थितियोंमें मैं पड़ा हुआ हूं उनमें आप मुझे क्या सन्तति-नियमनके कृत्रिम साधन काममें लानेकी सलाह देंगे? संयम और ब्रह्मचर्यमें मेरा विश्वास है, पर ब्रह्मचारी बननेमें मुझे अभी कुछ समय लगेगा। मुझे भय है कि पूर्ण संयमकी सिद्धि प्राप्त होनेके पूर्व यदि मैं कृत्रिम साधनोंका उपयोग नहीं करूंगा तो मेरी स्त्रीके कई बच्चे पैदा हो जायंगे और इस तरह बैठे-ठाले मैं आर्थिक बरबादी मोल ले लूंगा। और फिर मुझे ऐसा लगता है कि अपनी स्त्रीसे उसके स्वाभाविक भावना-विकासके खातिर कड़े संयमका पालन कराना बिलकुल ही उचित नहीं होगा। आखिर कार साधारण स्त्री-पुरुषोंके जीवनमें विषय भोगके लिए तो स्थान है ही। मैं उसमें अपवाद-रूप नहीं हूं। और मेरी पत्नीको आपके ब्रह्मचर्य विषय-सेवनके बारेमें आदि विषयोंके महत्त्वपूर्ण लेख पढ़ने व समझनेका मौका नहीं मिला इसलिए वह संयमके लिए मुझसे भी कम तैयार है।

मुझे खेद है कि पत्र अधिक लम्बा हो गया है परन्तु मैं संक्षेपमें लिखकर इतनी स्पष्टतासे आप अपने विचार प्रकट नहीं कर सकता था। इस पत्रका आपको जो उपयोग करना हो वह आप खुशीसे कर सकते हैं।

यह पत्र मुझे फरवरीके अन्तमें मिला था लेकिन इसका जवाब मैं अब लिख पाया हूं। इसमें ऐसे महत्त्वके प्रश्न उठाये गये हैं कि हरएककी चर्चा करनेके लिए हरिजन के दो दो कालम चाहिए परन्तु मैं संक्षेपमें ही जवाब दूंगा।

इन विद्यार्थीने जो कठिनाइयां बताई हैं वे देखनेमें गंभीर मालूम होती हैं। परन्तु वे उनकी खुदकी पैदा की हुई हैं। इन कठिनाइयोंके साथ निपटनेसे ही जान लेना चाहिये कि इन विद्यार्थीकी और अपने देशकी शिक्षा-पद्धतिकी स्थिति कितनी बुरी है। यह पद्धति शिक्षाको बाजार भाव बेचकर पैसा पैदा करनेकी चीज बना देती है। मेरी दृष्टिमें शिक्षाका

उद्देश्य बहुत ऊंचा और पवित्र है। यह विद्यार्थी अगर अपनको करोड़ों आदमियोंमें से एक मान तो देखगा कि वह अपनी स्थितिमें जो आशा रखता है, उस करोड़ों युवक और युवतियां पूरा नहीं कर सकतीं। अपने वर्गमें उसने जिन सम्बन्धियोंका जिक्र किया है, उनके पालन-पोषणके लिए वह क्यों जवाबदार बने? क्यों उसके आदमी अच्छे मजबूत शरीरके हों तो वे अपनी आजीविकाके लिए मेहनत-मजदूरी क्यों न करें? एक अकेली मधुमक्खीके पीछे — भले ही वह नर हो — बहुतसी आलसी मधुमक्खियोंका लगे रहना गलत है।

इस विद्यार्थीको उलझनका इलाज उसने जो बहुतसी चीजें सीखी हैं उनके भूल जानेमें है। उस शिक्षा-संबंधी अपने विचार बदल देने चाहिये। अपनी बहनोंको वह एसी शिक्षा क्यों दे जिस पर बहुत ज्यादा पैसा खर्च करना पड़े? वे कोई उद्योग-धंधा वैज्ञानिक रीतिसे सीखकर अपनी बुद्धिका विकास कर सकती हैं। जिस क्षण वे ऐसा करेंगी उसी क्षण वे शरीरके विकासके साथ साथ मनका विकास भी कर लेंगी। और अगर वे अपनको समाजका शोषण करनेवाली नहीं किन्तु समाजकी सेविकाएं समझना सीखेंगी तो उनके हृदयका अर्थात् आत्माका भी विकास होगा और वे अपने भाईके साथ आजीविकाके लिए काम करनेमें समान हिस्सा लेंगी।

पत्र लिखनेवाले विद्यार्थीने अपनी बहनोंकी शादीका उल्लेख किया है। उसकी भी यहां चर्चा कर लूं। शादी बरबादी होगी ऐसा लिखनेका क्या अर्थ है यह मैं नहीं जानता। बीस सालकी उमर न हो जाये तब तक उनकी शादी करनेकी जरूरत ही नहीं और अगर वह अपने जीवनका सारा क्रम बदल लेगा तो वह अपनी बहनोंको अपना-अपना वर खुद ढूंढ लेने देगा। और विवाह-संस्कारमें कुछ खर्च हो भी तो वह ५ रुपयेसे अधिक होना ही नहीं चाहिये। मैं ऐसे कितने ही विवाहोंमें उपस्थित रहा हूं और उनमें उन लड़कियोंके पति या उनके बड़े-बूढ़े काफी सुखी स्थितिके ग्रेज्युएट थे।

इस विद्यार्थीको इस बातका भी पता नहीं कि कातना कहां और कैसे सीखा जा सकता है। उसकी यह लाचारी देखकर मुझे दया आती है। लखनऊमें वह प्रयत्नपूर्वक तलाश करे तो कातना सिखानेवाले कई

युवक उसे वहाँ मिल सकते हैं। लेकिन उसे केवल कातना सीखकर बैठे रहनेकी जरूरत नहीं हालांकि सूत कातना भी पूरे समयका धंधा होता जा रहा है और वह ग्राम-वृत्तिवाले स्त्री-पुरुषोंको पर्याप्त आजीविका दे सकनेवाला उद्योग बनता जा रहा है। मुझे आशा है कि मैंने जो कहा है उसके बाद बाकीका सब यह विद्यार्थी खुद समझ लेगा।

अब संतति-नियमनके कृत्रिम साधनोंके संबंधमें। यहाँ भी उसकी कठिनाई काल्पनिक ही है। यह विद्यार्थी अपनी स्त्रीकी बुद्धिको जिस तरह आँक रहा है वह ठीक नहीं है। मुझे तो जरा भी शंका नहीं कि अगर वह साधारण स्त्रियोंकी तरह है तो पतिके संयमके अनुकूल वह सहज ही बन जायेगी। विद्यार्थी खुद अपने मनसे पूछकर देखे कि उसके मनमें संयम है या नहीं? मेरे पास जितने प्रमाण हैं वे तो सब यही बताते हैं कि संयम-शक्तिका अभाव स्त्रीकी अपेक्षा पुरुषमें ही अधिक होता है। परन्तु इस विद्यार्थीको अपनी संयम रखनेकी असमर्थताको कम समझकर उसे हिसाबमें से निकाल देनेकी जरूरत नहीं। उसे बड़े कुटुम्बकी संभावनाका पौरुषके साथ सामना करना चाहिये और परिवारका पालन-पोषण करनेका अच्छेसे अच्छा जरिया ढूँढ़ लेना चाहिये। उसे जानना चाहिये कि करोड़ों आदमियोंको इन कृत्रिम साधनोंका पता ही नहीं है। इन साधनोंको काममें लानेवालोंकी संख्या बहुत-बहुत होगी तो कुछ हजारकी ही होगी। उन करोड़ोंको इस बातका भय नहीं हुआ कि वे बच्चोंका पालन किस तरह करेंगे यद्यपि ये सब बच्चे माँ-बापकी इच्छासे पैदा नहीं होते। मैं चाहता हूँ कि मनुष्य अपने कर्मके परिणामका सामना करनेसे इनकार न करे। ऐसा करना कायरता है। जो लोग कृत्रिम साधनोंको काममें लाते हैं वे संयमका गुण नहीं सीख सकते। उन्हें उसकी जरूरत नहीं पड़ेगी। कृत्रिम साधनोंके साथ भोगा हुआ विषय भोग बच्चोंका आना तो रोकेगा लेकिन पुरुष और स्त्री दोनोंकी — स्त्रीकी अपेक्षा पुरुषकी अधिक — जीवन-शक्तिको वह चूस लेगा। आसुरी वृत्तिके खिलाफ युद्ध करनेसे इनकार करना नामर्दी है। यह लड़का अगर अनचाहे बच्चोंको रोकना चाहता है तो उसके सामने एकमात्र अचूक और सम्मानित मार्ग यही है कि वह संयम-पालनका निश्चय कर ले। सौ बार भी अगर उसके प्रयत्न निष्फल

जायें तो भी क्या हुआ? सच्चा आनन्द यह युद्ध करनेमें है। उसका परिणाम तो ईश्वरकी कृपासे ही आता है।

हरिजनसेवक २४-४-३७

४२

धर्म-संकट

एक सज्जन लिखते हैं :

"करीब ढाई साल हुए, हमारे शहरमें एक घटना हो गई थी जो इस प्रकार है।

एक वैश्य गृहस्थकी १६ बरसकी एक कुमारी कन्या थी। इस लड़कीका मामा जिसकी उम्र लगभग २१ वर्षकी थी तालीम कॉलेजमें पढ़ता था। यह तो मालूम नहीं कि कबसे इन मामा और भानजीमें प्रेम था, पर जब बात खुल गई तो इन दोनोंने आत्महत्या कर ली। लड़की तो फौरन ही जहर खानेके बाद मर गई, पर लड़का दो रोज बाद अस्पतालमें मरा। लड़कीको गर्भ भी था। इस बातकी शुरू-शुरूमें तो खूब चर्चा चली। यहां तक कि बेचारे मा-बापको शहरमें रहना भारी हो गया। पर वक्तके साथ-साथ यह बात भी दब गई और लोग भूलने लगे। कभी कभी जब ऐसी मिलती-जुलती बात सुननेको मिलती है तब पुरानी बातोंकी भी चर्चा होती है और यह घटना भी दोहरा दी जाती है। पर उस जमानेमें जब सभी करीब-करीब लड़कीको और लड़केको भी बुरा-भला कह रहे थे मैंने यह राय जाहिर की थी कि ऐसी हालतमें समाजको विवाह कर लेनेकी इजाजत दे देनी चाहिये। इस बातसे समाजमें खूब बवण्डर उठा था। आपकी इस विषयमें क्या राय है?"

मैंने स्थान और लेखकका नाम नहीं दिया है, क्योंकि लेखक नहीं चाहते कि उनका अथवा उनके शहरका नाम प्रकाशित किया जाय। तो

भी इस प्रश्नकी खुली चर्चा आवश्यक है। मेरी तो यह राय है कि ऐसे संबंध जिस समाजमें त्याज्य माने जाते हैं वहां विवाहका रूप ले एका एक नहीं ले सकते। लेकिन किसीकी स्वतंत्रता पर समाज या संबंधी आक्रमण क्यों करें? ये मामा और भानजी सयानी उम्रके थे अपना हित अहित समझ सकते थे। उन्हें पति-पत्नीके संबंधसे रोकनेका किसीको अधिकार नहीं था। समाज भले ही इस संबंधको अस्वीकार करता पर उन्हें आत्महत्या करने तक जाने देना तो उसका बहुत बड़ा अत्याचार था।

उक्त प्रकारके संबंधका प्रतिबन्ध सर्वमान्य नहीं है। ईसाई, मुसलमान पारसी इत्यादि कौमोंमें ऐसे संबंध त्याज्य नहीं माने जाते — हिन्दुओंमें भी प्रत्येक वर्णमें वे त्याज्य नहीं हैं। एक ही वर्णमें भी भिन्न प्रान्तमें भिन्न प्रथा है। दक्षिणमें उच्च माने जानेवाले ब्राह्मणोंमें ऐसे संबंध त्याज्य नहीं बल्कि स्तुत्य भी माने जाते हैं। मतलब यह है कि ऐसे प्रतिबन्ध रूढ़िसे बने होते हैं। यह देखनेमें नहीं आता कि ये प्रतिबन्ध किसी धार्मिक या तात्त्विक निर्णयसे बने हैं।

लेकिन समाजके सब प्रतिबन्धोंको बलपूर्वक छिन्न-भिन्न करके फेंक दें यह भी नहीं होना चाहिये। इसलिए मेरा यह अभिप्राय है कि किसी समाजमें रूढ़िका त्याग करवानेके लिए लोकमत तैयार करनेकी आवश्यकता है। इस बीचमें व्यक्तियोंको धैर्य रखना चाहिये। धैर्य न रख सकें तो उन्हें बहिष्कारादिको सहन करना चाहिये।

दूसरी ओर समाजका यह कर्तव्य है कि जो लोग समाजके बंधन तोड़ें उनके साथ निर्दयताका बरताव न किया जाय। बहिष्कारादि भी अहिंसक होने चाहिये। उक्त आत्महत्याओंका दोष जिस समाजमें वे हुई उस पर अवश्य है ऐसा ऊपरके पत्रसे सिद्ध होता है।

हरिजनसेवक १–५–३७

विवाहकी मर्यादा

श्री हरिभाऊ उपाध्याय लिखते हैं

हरिजनसेवक के इसी अंकमें 'धर्म-संकट' नामक आपका लेख पढ़ा। उसमें आपने लिखा है कि उक्त प्रकारके (अर्थात् मामा-भानजीके संबंध जैसे) संबंधका प्रतिबन्ध सर्वमान्य नहीं है। ऐसे प्रतिबंध रूढ़ियोंसे बने होते हैं। यह देखनेमें नहीं आता कि ये प्रतिबन्ध किसी धार्मिक या तात्त्विक निर्णयसे बने हैं।

मेरा अनुमान यह है कि ये प्रतिबन्ध शायद सन्तानोत्पत्तिकी दृष्टिसे लगाये गये हैं। इस शास्त्रके ज्ञाता ऐसा मानते हैं कि विजातीय तत्त्वोंके मिश्रणसे संतति अच्छी होती है। इसलिए सगोत्र और सपिण्ड कन्याओंका पाणि-ग्रहण नहीं किया जाता।

यदि यह माना जाय कि यह केवल रूढ़ि है तो फिर सगी और चचेरी बहनोंके संबंध पर भी कैसे आपत्ति उठाई जा सकती है? यदि विवाहका हेतु सन्तानोत्पत्ति ही है और सन्तानोत्पत्तिके ही लिए दम्पतिका संयोग करना योग्य है तो फिर वर-कन्याके चुनावके औचित्यकी कसौटी सुप्रजननकी क्षमता ही होनी चाहिये। क्या और कसौटियां गौण समझी जायं? यदि हां तो किस क्रमसे यह प्रश्न सहज उठता है। मेरी रायमें यह क्रम इस प्रकार होना चाहिये

(१) पारस्परिक आकर्षण और प्रेम
( ) सुप्रजननकी क्षमता
(३) कौटुम्बिक और व्यावहारिक सुविधा
(४) समाज और देशकी सेवा
( ) आध्यात्मिक उन्नति।

आपका इस संबंधमें क्या मत है?

"हिन्दू शास्त्रोंमें पुत्रोत्पत्ति पर जोर दिया गया है। सबका कोंको आशीर्वाद दिया जाता है अष्टपुत्रा सौभाग्यवती भव। आप जो यह प्रतिपादन करते हैं कि दम्पति सन्तानके लिए संयोग करें, तो क्या इसका यही अर्थ है कि वे सिर्फ एक ही संतान उत्पन्न करें फिर वह लड़का हो या लड़की? वंश-वर्धनकी इच्छाके साथ ही पुत्रसे नाम चलता है यह इच्छा भी जुटी हुई मालूम होती है। केवल लड़कीसे इस इच्छाका समाधान कैसे हो सकता है? बल्कि अभी तक समाजमें लड़कीके जन्म का उतना स्वागत नहीं होता जितना कि लड़केके जन्मका होता है। इसलिए यदि इन इच्छाओंको स्वाभाविक माना जाय तो फिर एक लड़का और एक लड़की—इस तरह दो सन्तति पैदा करनेकी छूट देना क्या अनुचित होगा?

केवल सन्तानोत्पादनके लिए संयोग करनेवाले दम्पति ब्रह्मचारी जैसे ही समझे जाने चाहिये—यह ठीक है। यह भी सही है कि समस्त जीवनमें एक ही बारके संयोगका मर्म रह जाता है। पहली बातकी पूर्तिमें एक कथा प्रचलित है वसिष्ठकी कुटियाके सामने एक नदी बहती थी। दूसरे किनारे पर विश्वामित्र तप करते थे। वसिष्ठ गृहस्थ थे। जब भोजन पक जाता तो पहले अरुन्धती थाल परोस कर विश्वामित्रको खिलाने जाती बादको वसिष्ठके घर पर सब लोग भोजन करते। यह नित्यक्रम था। एक रोज बारिश हुई और नदीमें बाढ़ आ गई। अरुन्धती उस पार नहीं जा सकी। उसने वसिष्ठसे इसका उपाय पूछा। उन्होंने कहा जाओ नदीसे कहना मैं सदा निराहारी विश्वामित्रको भोजन देने जा रही हूं मुझे रास्ता दे दो। अरुन्धतीने इसी प्रकार नदीसे कहा और नदीने रास्ता दे दिया। तब अरुन्धतीके मनमें बड़ा आश्चर्य हुआ कि विश्वामित्र रोज तो खाना खाते हैं फिर निराहारी कैसे हुए? जब विश्वामित्र खाना खा चुके तब अरुन्धतीने उनसे पूछा मैं वापिस कैसे जाऊं, नदीमें तो बाढ़ है? विश्वामित्रने उलटकर पूछा तो तुम आई कैसे? अरुन्धतीने उत्तरमें वसिष्ठकी युक्तिका सुझाव बतलायी। तब

विश्वामित्रने कहा, अच्छा तुम नदीसे कहना सदा-ब्रह्मचारी वसिष्ठके यहाँ लौट रहा हूँ, नदी मुझे रास्ता दे दो। अरुन्धतीने ऐसा ही किया और उसे रास्ता मिल गया। अब तो उसके अचरजका ठिकाना न रहा। वसिष्ठके सौ पुत्रोंकी तो वह स्वयं ही माता थी। उसने वसिष्ठसे इसका रहस्य पूछा कि विश्वामित्रको सदा-निराहारी और आपको सदा-ब्रह्मचारी कैसे मानूँ? वसिष्ठने बताया, जो केवल शरीर रक्षणके लिए ही ईश्वरार्पण बुद्धिसे भोजन करता है, वह नित्य भोजन करते हुए भी निराहारी है, और जो केवल स्वधर्म पालनके लिए अनासक्तिपूर्वक सन्तानोत्पादन करता है, वह संभोग करते हुए भी ब्रह्मचारी ही है।

परन्तु इसमें और मेरी समझमें तो शायद हिन्दू शास्त्रोंमें भी केवल एक सन्तति — फिर वह कन्या हो या पुत्र — का विधान नहीं है। अतएव यदि आपको एक पुत्र और एक पुत्रीका नियम मान्य हो तो मैं समझता हूँ कि बहुतेरे दम्पतियोंको समाधान हो जाना चाहिये। अन्यथा मुझे तो ऐसा लगता है कि बिना विवाह किये एक बार ब्रह्मचारी रह जाना सहज हो सकता है, परन्तु विवाह करने पर केवल सन्तानोत्पादनके लिए और वह भी प्रथम सन्ततिके लिए ही संयोग करके फिर आजन्म संयमसे रहना उससे कहीं ज्यादा कठिन है। मेरा तो ऐसा मत बनता जा रहा है कि काम मनुष्यमें स्वाभाविक प्रेरणा है। उसमें संयम सुसंस्कारका सूचक है। सन्ततिके लिए संयोग का नियम बना देनेसे सुसंस्कार, संयम या धर्मकी तरफ मनुष्यकी गति होती है, इसलिए वह वांछनीय है। सन्तानोत्पत्तिके ही लिए संयोग करनेवाले संयमीका मैं आदर करूँगा। कामवासनाकी तृप्ति करनेवालेको मैं भोगी कहूँगा, पर मैं उसे पतित नहीं मानना चाहता। न ऐसा वातावरण ही पैदा करना ठीक होगा कि पतित समझकर लोग उसका तिरस्कार करें। इस विचारमें मेरी कहीं गलती हो तो आप बताये।

विवाहकी जो मर्यादा बाँधी गई है, उसका शास्त्रीय कारण मैं नहीं जानता। संभवतः ही यह मर्यादाकी वृद्धिके लिए बनाई जाती है, नैतिक

कारण माननेमें कोई आपत्ति नहीं है। संतान-हितकी दृष्टिसे ही अगर भाई-बहनके संबंधका प्रतिबन्ध योग्य है तो चचेरी बहन इत्यादि पर भी प्रतिबन्ध होना चाहिये। लेकिन भाई-बहनके संबंध या एस संबंधके अति रिक्त कोई प्रतिबन्ध धर्ममें नहीं माना जाता। इसलिए रूढ़िका जो प्रतिबंध जिस समाजमें हो उसका अनुसरण करना उचित मालूम होता है। नैतिक विवाहके लिए जो पांच मर्यादाएं हरिभाऊजीने रखी हैं उनका क्रम बदलना चाहिए। पारस्परिक आकर्षण और प्रेमको अन्तिम स्थान देना चाहिए। अगर उसे प्रथम स्थान दिया जाय तो दूसरी सब शर्तें उसके आश्रयमें जानसे निरर्थक बन सकती हैं। इसलिए उक्त क्रममें आध्यात्मिक उन्नतिको प्रथम स्थान देना चाहिये। समाज और देशसेवाको दूसरा स्थान दिया जाय। कौटुम्बिक और व्यावहारिक सुविधाको तीसरा। पारस्परिक आकर्षण और प्रेमको चौथा। इसका अर्थ यह हुआ कि जिस जगह इन प्रथम तीन शर्तोंका अभाव हो वहां पारस्परिक प्रेमको स्थान नहीं मिल सकता। अगर प्रेमको प्रथम स्थान दिया जाय तो वह सर्वोपरि बनकर दूसरोंकी अव गणना कर सकता है और करता है ऐसा आजकलके व्यवहारमें देखनेमें आता है। प्राचीन और अर्वाचीन उपन्यासोंमें भी यह पाया जाता है। इसलिए यह कहना होगा कि उपर्युक्त तीन शर्तोंका पालन होते हुए भी जहां पारस्परिक आकर्षण नहीं है वहां विवाह त्याज्य है। सुप्रजननकी क्षमताको बात न माना जाय क्योंकि यही एक वस्तु विवाहका कारण है, विवाहकी शर्त नहीं।

हिन्दू शास्त्रोंमें पुत्रोत्पत्ति पर अवश्य जोर दिया गया है। यह उस कालके लिए ठीक था जब समाजमें सम्यग्युद्धका अनिवार्य स्थान मिला हुआ था और पुरुषवर्गकी बड़ी आवश्यकता थी। उसी कारणसे एकसे अधिक पत्नियोंकी भी इजाजत थी और अधिक पुत्रोंने अधिक बल माना जाता था। धार्मिक दृष्टिसे देखें तो एक ही सन्तति धर्मज या समझा है। मैं पुत्र और पुत्रीके बीच भेद नहीं करता हूं दोनों एक समान स्वागतके योग्य हैं।

वसिष्ठ विश्वामित्रका दृष्टान्त शास्त्रमें अच्छा है। उसे सम्पूर्ण सत्य अथवा पालन माननेकी आवश्यकता नहीं। उसमें इतना सार निकालना

काफी है कि सन्तानोत्पत्तिके ही अर्थ किया गया संयोग ब्रह्मचर्यका विरोधी नहीं है। कामाग्निकी तृप्तिके कारण किया हुआ संयोग त्याज्य है। उसे निन्द्य माननेकी आवश्यकता नहीं। असंयम स्त्री-पुरुषोंका मिलन भोगके ही कारण होता है, और होता रहेगा। उसके जो दुष्परिणाम आते हैं वे उन्हें भोगने पड़ेंगे। जो मनुष्य अपने जीवनको धार्मिक बनाना चाहता है जो जीवमात्रकी सेवाको आदर्श समझकर संसार-यात्रा समाप्त करना चाहता है उसके लिए ही ब्रह्मचर्यादि मर्यादाका विचार किया जा सकता है। और ऐसी मर्यादा आवश्यक भी है।

हरिजनसेवक १५–५–१७

४४

विवाह और उसकी विधि

इस विषयमें एक परम मित्रके साथ मेरा पत्र-व्यवहार हुआ था। उसमें से एक पत्र मैंने अपने समयसे रख छोड़ा था। उसका मुख्य भाग आज मैं पाठकोंके सामने रखता हूं।

> विवाहके मन्त्रसे संबंधित आपका पत्र मिला। विवाहकी कल्पनाके बारेमें कोई मतभेद नहीं है। प्रश्न तो दो ही हैं: शास्त्र वचनोंका अर्थात् मन्त्रोंका अर्थ क्या किया जाय? और विवाह करनेवाले स्त्री-पुरुषके सामने प्रतिज्ञाके रूपमें कौनसा आदर्श रखा जाय? मेरी कल्पनाके अनुसार तो विवाहके उद्देश्योंका क्रम इस प्रकार है:
>
> १ परस्पर प्राकृतिक आकर्षण २ विषयवासना ३ वह जीवन और उसमें उत्पन्न होनेवाला परस्परावलम्बन ४ धर्माचरणमें सहयोग प्रजाप्राप्ति ६ आत्मोन्नति या मोक्ष-भावनामें एक दूसरेकी सहायता और ७ हृदयकी एकता।
>
> विवाहका मुख्य स्वरूप एक-दूसरेके प्रति अनन्य निष्ठा ही है और उसका मुख्य सबब विषय-भोग और उसके फलस्वरूप होने

वाली प्रजोत्पत्तिके साथ है। इस उद्देश्यके अभावमें ब्रह्मचर्यकी स्थिति ही स्वाभाविक है। विषयेच्छा विवाहका मूक प्रेरक कारण भले हो परन्तु विवाहकी सार्थकता तो धर्म्य प्रजोत्पादनमें ही है। सन्ततिकी इच्छा जिस दिन मिट जाती है उस दिन विवाह-संबंध भी नहीं रह जाता। या तो वह नीचे गिर कर व्यभिचारका रूप ले लेता है अथवा ऊपर चढ़कर असाधारण आत्मिक संबंध बन जाता है। यह आत्मिक संबंध ही यदि पहलेसे एकमात्र प्रेरक कारण हो तो ऐसे स्त्री-पुरुष विवाह नहीं करेंगे। विवाह करनेका कारण न हो तो विवाह करनेका अधिकार भी नहीं रहता। प्रजोत्पत्तिकी इच्छा रहे तब तक दोनोंका संबंध धर्म्य है, उदात्त है परन्तु शुद्ध आध्यात्मिक नहीं है। सन्ततिकी वासना न रह जानेके कारण विवाह-संबंध मिट जानेके बाद भी पति-पत्नीका सहजीवन अनिष्ट नहीं होता। अब दोनोंके बीच मित्रताका पवित्र आध्यात्मिक संबंध बनता है। इस संबंधमें स्वार्थ मोह या जड़ताके न होनेसे इसमें अनन्य निष्ठाका महत्त्व नहीं रहता। व्यभिचारके लिए तो उसमें कोई स्थान ही नहीं होता क्योंकि आध्यात्मिक संबंधमें व्यतिरेक जैसी कोई वस्तु होती ही नहीं।

यह विचारसरणी यदि ठीक हो तो विवाहके मुख्य और एकमात्र निर्णायक हेतु प्रजोत्पादनको विवाहकी प्रतिज्ञामें मान्यता प्राप्त होनी ही चाहिये। हमारे पूर्वजोंने सन्ततिके बिना गृहस्थाश्रमको जो अधम और अस्वर्ग्य कहा है उसके विषयमें हम भले ही उदासीन रहें परन्तु विवाहके मुख्य उद्देश्यको अमान्य न रखें।

सप्तपदीकी प्रत्येक प्रतिज्ञा स्वाभाविक सादी और हर मनुष्य समझ सके ऐसी है। प्रतिज्ञाके प्रत्येक शब्दका आध्यात्मिक अर्थ करनेसे और उसके व्यावहारिक अर्थको उड़ा देनेसे न तो हम सत्यका पालन करते हैं और न समाजको ऊंचा उठाते हैं। बेशक संकुचित अर्थको हम व्यापक बनायें। यह सत्य है, उचित भी है। सप्तपदीमें कितना सीधा-सादा अर्थ भरा है! पति-पत्नी दोनों मिलकर अन्न प्राप्त करें और साथमें उसका सेवन करें। दोनोंके

सहयोगसे सब प्रकारकी शक्ति बढ़े। बरका धन-धान्य आदि ऐहिक सम्पत्ति तथा धार्मिक सम्पत्ति बढ़े। दोनों पति-पत्नी और घरके सब लोग सुख और सन्तोषसे रहें। सन्तति हो बादमें दोनोंके जीवनमें परिवर्तन आये और अंतमें परम आप्तजनों परम मित्रोंका शुद्ध, स्वच्छ और आध्यात्मिक संबंध ही दोनोंमें स्थापित हो।

कन्या किसे दी जाय और किसे न दी जाय इस प्रश्नकी चर्चा करते हुए शास्त्रकारोंने १ दोनोंसे बचनेकी बात कही है। जो युवक विवाहके विमुख है जो मुमुक्षु है और साहसी वीर है उसे कन्या न दी जाय — ऐसा शास्त्रोंमें कहा गया है। तब यदि प्रजोत्पादनका उद्देश्य ही न हो तो कन्या किसी पुरुषसे किसलिए विवाह करे? पुत्रकी इच्छा न रहनेके बाद विवाहका स्वरूप बदल जाता है। इसलिए 'प्रजाम्य' वाली प्रतिज्ञाका भंग नहीं होता। इतना स्पष्ट कर दिया जाय तो काफी है। और यह बात 'ऋतुम्य' वाली प्रतिज्ञामें आ जाती है। धर्मे च अर्थे च कामे च नातिचरामि इस प्रतिज्ञामें मोक्षकी इच्छाके बारेमें मर्यादा बनाई गई है। विवाह-संबंध आमरण बना रहना चाहिये ऐसी बात नहीं है परन्तु मोक्षकी इच्छा उत्पन्न होने तक बना रहना चाहिये। यह इच्छा तीव्र शुद्ध और स्थिर हो जाय उसके पश्चात् विवाह-संबंधका विवाहके रूपमें अन्त आया समझना चाहिये।

इसलिए सप्तपदीकी प्रतिज्ञामें प्रजोत्पत्तिका उल्लेख न होता तो भी आपकी विवाहकी कल्पनाको संपूर्णतया स्वीकार करनेके बावजूद मैं आग्रह करता कि प्रजोत्पत्तिकी बात प्रतिज्ञामें जोड़ देनी चाहिये। पुत्रैषणा (पुत्रकी इच्छा) से ही दाम्पत्य-संबंध धर्मकी दृष्टिसे (मोक्षकी दृष्टिसे नहीं) पवित्र बनता है उसीकी वजहसे पति-पत्नीकी निष्ठा एक-दूसरेके प्रति संभव हो सकती है। इसीसे संयम-धर्मकी बात समझमें आती है। और विवाहमें यह वस्तु समायी ही हुई है एसा कह कर मौन भी नहीं रखा जा सकता।

प्रतिज्ञामें से उसमें उच्च कौनसा अर्थ निकल सकता है इसका जिस प्रकार हमें विचार करना चाहिये उसी प्रकार

समाजके नेताओंको इस बातकी भी जाँच करनी चाहिये कि इस प्रतिज्ञामें से बुरेसे बुरा कौनसा अनर्थ निकल सकता है। मामोसम्याय का अर्थ हमने आनन्दके लिए किया है। इससे विवाहित जीवनमें विषय-सेवनको तो स्थान मिलता है, परन्तु इसमें प्रजोत्पत्तिका कहीं भी उल्लेख नहीं आता। इसका अनर्थ होते देर नहीं लगेगी।

अब शास्त्र-वचनोंका अर्थ करनेका प्रश्न रह जाता है। अमुक वचनमें से अमुक अर्थ निकल सकता है या नहीं इस पर विचार करनेकी जिम्मेदारी आप अपने सिर पर न लें। पुराने पंडित एकाक्षरी कोशकी सहायतासे किसी भी श्लोकमें से आठ आठ और दस दस अर्थ निकालते हैं। स्वामी दयानन्द सरस्वतीने भी व्याकरणके बल पर वेदमंत्रोंके बहुत सुन्दर अर्थ किये हैं। परन्तु वे अर्थ सच्चे हैं या नहीं यह प्रश्न अलग है। इन मंत्रोंसे अधिकसे अधिक आत्मोन्नति करनेवाले जो अर्थ निकल सकें वे जरूर हम निकालें। परन्तु ऐसा करनेमें प्रामाणिकताको कभी आघात न पहुँचना चाहिये। क्योंकि अर्थ करनेके लिए सर्वमान्य नियम अवश्य हैं। पूर्वापर-संबंध संदर्भ प्रयोजन आसपासका इतिहास परम्परागत अर्थ आदि अनेक कसौटियोंको सामने रखकर अर्थ किये जा सकते हैं। परम्परागत अर्थको बहुत आदर न दें तो चल सकता है, क्योंकि कोई गलती लम्बे समय तक एकसी बनी रह सकती है। परन्तु प्रकरण प्रयोजन आसपासके अन्य मंत्र आदि सब बातें यदि स्पष्ट एक अर्थ बताती हों परम्परामें भी एकवाक्यता हो और इतिहास भी उसीका समर्थन करता हो, तो प्राचीन मंत्रोंमें मनमाने ढंगसे नया अर्थ निकालनेके बजाय प्रामाणिकतासे उनमें परिवर्तन करना ही सच्चा मार्ग है। प्रजाम्य के बदले सर्वभूतहितार्थाय जैसा सीधा परिवर्तन किया जाय तो वह समझमें आ सकता है। एकाध शब्दका दूसरा भी अर्थ होता हो तो उसमेंसे ही संपूर्ण मंत्रका दूसरा अर्थ नहीं हो सकता।

किसी मंत्रके समान रूपसे दो अर्थ निकलते हों तो नीतिका पोषण करनेवाला अर्थ ही धर्मको स्वीकार्य होता है। परन्तु यदि किसी मंत्रका सीधा और स्पष्ट अर्थ हमें पसंद न आये अथवा वह अनीतिका पोषण करनेवाला हो तो उस मंत्रको हम छोड़ दें। परन्तु जबरदस्तीसे उसका दूसरा अर्थ करनेका प्रयत्न हमें कभी न करना चाहिये। इससे जनताको बुरी आदत पड़ती है और वास्तविक अर्थमें अराजकता बढ़ी हो जाती है। लीगल फिक्शन (कानूनकी कल्पना) की भी कोई मर्यादा होनी ही चाहिये।

मेरी कल्पनाके अनुसार विवाहकी प्रतिज्ञामें प्रजोत्पादनका उल्लेख होना चाहिये। और यदि यह वांछनीय न लगे तो प्राचीन शब्द 'प्रजास्य' को निकाल कर (व्याकरणसे उसका दूसरा वांछनीय अर्थ निकलता हो तो भी) जान-बूझ कर कोई दूसरा उपयुक्त शब्द वहां रख देना चाहिये।

सात कदम चलनेसे मित्रता शुरू होती है यह प्राचीन वचन है। इसका यह अर्थ तो हो ही नहीं सकता कि रास्ते पर सात कदम चल लेनेसे यह परिणाम आता है। इसका अर्थ यही हो सकता है कि जीवनकी सात मंजिलोंमें साथ साथ जीवन बितानेसे शुद्ध और निष्काम मैत्री उत्पन्न होती है। प्रतिज्ञामें जीवनका विकास-क्रम बताया गया है। उसे एक ही झटकेसे हम बिगाड़ न दें।

विवाह अर्थात् दो स्त्री-पुरुषका संबंध ऐसी जो सामान्य कल्पना है वह ठीक नहीं है इस ओर ध्यान खींचनेवाली कोई चीज विवाह विधिमें होनी चाहिये। विवाह-संस्थाके बारेमें गहरा विचार करने पर मुझे ऐसा लगा है कि पति-पत्नी दोनों ईश्वरको अर्थात् परम तत्त्वको समान रूपमें माननेवाले न हों तो उनका विवाह कल्याणकारी नहीं हो सकता इतना ही नहीं वह स्थायी भी नहीं हो सकता। इसलिए पति-पत्नी दोनोंको विवाहके बाद तुरन्त ही समान विधिसे ईश्वरकी उपासना पूजा और प्रार्थना करनी चाहिये। विवाहकी प्रतिज्ञामें भी चार प्रकारके पुरुषार्थोंकी अर्थात् जीवनके आदर्शोंकी समान दृष्टि रखनेकी प्रतिज्ञा आये तो ज्यादा अच्छा हो।

गंगा-यमुनाके संगममें जिस प्रकार गुप्त रूपमें सरस्वती विद्यमान रहती है, उसी प्रकार विवाहमें ईश्वरको शुभकर विवेकीका रूप देनेके बाद विवाहका और समाजका संबंध भी स्पष्ट होना चाहिये। विवाह एक सामाजिक संबंध है, अथवा यह कहूँ कि समाजका मूल ही विवाह-संस्थामें है। इस बातका स्थान विवाह विधिमें होना चाहिये। भूमिसेवा, अस्पृश्यता-मुक्ति, गोरक्षा, सूत-कताई, और विद्याध्ययन — ये पंच महायज्ञ करके ही मनुष्य विवाह कर सकता है और विवाहके बाद भी ये पंच महायज्ञ करते रहना गृहस्थोंका मुख्य धर्म है, इतनी बात विवाह-विधि द्वारा दम्पतिके मनमें बैठा देनी चाहिये।

दान गृहस्थाश्रमका अपरिहार्य अंग है, इसलिए इसको भी थोड़ा स्थान विधिमें दिया जाना चाहिये।

यह पत्र नहीं परन्तु एक मननीय लेख है। इसके बहुत बड़े भागसे तो मैं सहमत ही हूँ। दो विचारोंके बारेमें शायद मेरा मतभेद हो सकता है। मैं 'हो सकता है' कहता हूँ, क्योंकि बहुत बार वस्तु एक ही दिखाई देती है, परन्तु दृष्टिकोण अलग होनेसे वह अलग दिखाई देती है।

विवाहमें प्रजोत्पत्तिकी भावना होनी ही चाहिये ऐसा मुझे नहीं लगता। सन्तानकी तथा विषय भोगकी बिलकुल इच्छा न होने पर भी विवाह करनेवाले स्त्री-पुरुषोंके उदाहरण आज मेरी आँखोंके सामने तैर रहे हैं। ऑलिव श्राइनरका मामला ऐसा था। ऑस्ट्रियामें एक दम्पती ऐसे रहते हैं जिनका संबंध आरम्भमें ऐसा ही था और आज भी ऐसा ही है। एक और जोड़ी ऐसी है। उन्होंने विवाह-संबंध स्थापित किया तब दोनोंके मनमें प्रजोत्पत्तिकी भावनाका सर्वथा अभाव था। परन्तु बादमें इस संबंधके फलस्वरूप सन्तान उत्पन्न हुई। इस परिणामको दोनों दम्पतीने शुभ नहीं माना। लेकिन इस परिणामका उन्होंने सदुपयोग किया। वे सावधान हो गये और संयमपूर्ण जीवन बितानेका आग्रह रखकर उन्होंने दो सन्तानकी मर्यादा बाँध ली। मैं ऐसी हिन्दुस्तानी बहनोंको जानता हूँ जिन्होंने केवल दुनियाकी निन्दासे बचनेके लिए तथा

अपनेको अबला समझकर पुरुषका रक्षण पानेके लिए ही विवाह किया है। ऐसे अनेक विधुर पुरुष हैं जो अपनी गृहस्थीको चलाने तथा पहले विवाहके बालकोंके पालन-पोषणके लिए ही सहचरी खोजते हैं। संयमी जीवन बितानेवाले जगतका प्रवाह आज विवाहको प्रजोत्पत्तिसे अलग माननेकी दिशामें बह रहा है। स्त्री-पुरुष जैसी दो भिन्न भिन्न किस्मोंवाली योनियोंके संगमके मूलमें प्रजोत्पत्तिकी भावना तो है ही ऐसा तुरन्त मान लेनेका कोई कारण नहीं है। दम्पती-प्रेमकी निर्मलतामें प्राणीमात्रकी एकताकी साधना क्यों न की जाय? आज जो असंभव लगता है वह कल संभव क्यों नहीं हो सकता? संयमके लिए मर्यादा क्या हो सकती है? मनुष्यसे भिन्न प्राणियोंका उदाहरण लेकर हम मनुष्यकी उन्नतिकी मर्यादा न बांधें। निचले दरजेके प्राणियोंके उदाहरणसे हम इतना ही समझ लें कि हम उनसे अधिक नीचे न उतरें।

स्त्री-पुरुषका विषय-संबंध अगर पांच वर्षके बाद जीवनमें बंद करना वांछनीय हो तो आरम्भसे ही उसे बंद रखना वांछनीय क्यों नहीं हो सकता? ऐसा करनेसे विवाहोंकी संख्या घटे तो भले घट जाय अथवा इस प्रकारके विवाह कम हों तो भले ही हों। मेरी कल्पनाकी वास्तविकताके लिए एक भी शुद्ध उदाहरण काफी है। जया और जयंत[*] आज भले ही नानालाल कविकी कल्पनामें विहार करते हों परन्तु कल वे समाजमें मूर्त रूप क्यों नहीं ले सकते?

लेकिन मेरे मनमें इस समय बात तो कुछ दूसरी ही रम रही है। दम्पतीकी प्रतिज्ञामें प्रजोत्पत्तिकी भावनाका स्थान होना ही नहीं चाहिये। जो बात उसके बिना यदि प्रयत्न न किया जाय तो होनेवाली ही है उसकी प्रतिज्ञा क्या ली जाय? प्रजोत्पत्तिको हम कर्तव्य न मानें तो भी वह होती [illegible] रहेगी। इस कारण इस विषयमें संबंधित कोई प्रतिज्ञा हो तो भी [illegible] न चाहिये [illegible] हम रतिसुखके खातिर कभी रतिसुख नहीं

---

[*] गुजरातीके प्रसिद्ध कवि नानालालने जया-जयंत नामक एक सुन्दर नाटक लिखा है। उसका नायक जयंत और नायिका जया विवाहित जीवनमें भी ब्रह्मचर्यका पालन करते हैं, शरीर-सम्बन्धको अथवा आत्माके सम्बन्धको जीवनका आदर्श मानते हैं।

भोगेंगे परन्तु इसमें प्रजा-पालनकी योग्यता होगी तो प्रजोत्पत्तिके खातिर ही हम रतिसुख भोगेंगे।" पाठक देखेंगे कि इस प्रतिज्ञामें और प्रजोत्पत्ति करनेकी प्रतिज्ञामें उत्तर-दक्षिणका भेद है। प्रजोत्पत्तिकी प्रतिज्ञाके कारण हिन्दू समाजमें पुरोपकालसे जो अनिष्ट प्रतिबिम्ब होते रहते हैं उन्हें कौन नहीं जानता?

मानव-समाजमें एक युगकी आसानीसे कल्पना की जा सकती है जब प्रजोत्पत्तिको विवाहका मुख्य उद्देश्य मानना आवश्यक हो जाय। आज फ्रान्समें ऐसा ही युग चल रहा है। फ्रान्सकी जनतान बिना किसी अंकुशके विषय-सुख भोगनके खातिर प्रजात्पत्ति पर कृत्रिम प्रतिबन्ध लगाये। इस कारणसे वहां अब जन्मकी अपेक्षा मृत्युकी संख्या बढ़ती हुई मालूम होती है। इसलिए आज वहां लोगोंको प्रजोत्पत्तिका धर्म सिखाया जाता है। युद्धमें जहां विरोधी पक्षोंमें पुरुषोंका बड़ी संख्यामें संहार हो जाता है वहां प्रजोत्पत्तिको धर्म माना जाता है इतना ही नहीं एक पुरुष अनेक स्त्रियोंसे विवाह करे ऐसा धर्म भी स्वीकार किया जाता है। यह बात स्पष्ट है कि इन दोनों उदाहरणोंमें मूल तो मलिन ही है। पहले उदाहरणमें विषय-भोगका अतिरेक है दूसरेमें मनुष्य-हिंसा चरम सीमाको पहुंच गई है। इनका जो परिणाम आया है वह अनिवार्य था। इसलिए उस उस युगमें ऐसे कम अधर्म होते हुए भी उन्हें धर्मका नाम दिया गया। परन्तु सच्चा धर्म तो यह था तुमने खूब विषय भोग किया अब तुम नष्ट हो जाओ तुम पशुसे भी बुरे साबित हुए, आपसमें तुम कट मरे, अब जो बाकी रहे हैं उनका नाश हो जाय। इस दोनों प्रकारके नाशमें जगतका कल्याण है क्योंकि उसमें कर्मका सीधा फल भोगनेकी बात है। भगवद्गीता भी यही कहती है। महाभारतकारने अन्तमे बचे हुए मुट्ठी भर व्यक्तियोंका नाश ही चित्रित किया है।

आज जब हम विवाहके अन्य अनेक शुभ उपयोग देखते हैं तब उन्हींको उद्देश्य रूपमें सामने रखें और प्रजोत्पत्तिकी बातको उसके स्वभाव पर निर्भर रहने दें यही मुझे वांछनीय और आवश्यक मालूम होता है। विवाह-सम्बन्धमें बंधनेवाले स्त्री-पुरुष संकल्प तो सेवाका ही करें भोग केवल लाचारीसे मांगें।

अब विवाह-विधिके अर्थका विचार करें। सत्य पर प्रहार करके निकाला हुआ अर्थ सर्वथा त्याज्य है यह स्वीकार करनेमें मुझे जरा भी संकोच नहीं है। परन्तु जहां परस्पर संबंधका विचार करते हुए भी प्राचीन परन्तु बिलकुल नया अर्थ उत्पन्न हो सकता हो वहां ऐसा अर्थ करनेका हमें अधिकार है। और वैसा करना हमारा धर्म है। जिन अर्थोंकी पहले कभी कल्पना ही न की गई हो ऐसे शुभ-अशुभ अर्थ तो लोग किया ही करेंगे। लोगोंकी उन्नतिके साथ उसके साधनोंकी उन्नति अवश्य होगी। लोगोंके परस्पर संबंधका एक बड़ा साधन भाषा है। इसलिए भाषाका विकास तो होता ही रहेगा। और वह दोनों मार्गोंसे होगा नये शब्दों और नये वाक्योंकी रचना द्वारा तथा उन्हीं शब्दों और उन्हीं वाक्योंके नये अर्थों द्वारा। कौनसा अर्थ कब उचित है और कौनसी परिस्थितियोंमें उसे स्वीकार किया जा सकता है यह विवेकका क्षेत्र है। इसमें सिद्धान्तकी कोई बात नहीं है। विवेकपूर्वक किये गये अर्थ सुशोभित होंगे। इसकी मर्यादा एक ही होनी चाहिये कहीं थोड़ा भी सत्यका लोप न हो।

सप्तपदीके मन्त्रोंमें कहां और कैसा सुधार किया जाना ठीक होगा इस प्रश्न पर मैंने यहां विचार नहीं किया है। क्योंकि जो मूल विवादास्पद बातोंको अपने मनमें हम स्पष्ट कर लें तो विधिका निरचय आसान हो जाता है।

नवजीवन १५-९-२९

४५

गृहस्थ-धर्म

एक बहनने जो अखण्ड कुमारिका रहना चाहती थी और जो एक अच्छी सेविका है योग्य साथी मिलने पर शादी कर ली है। लेकिन अब उसे इसका दुख होता है और वह अपनेको नीचे गिरी हुई मानती है। मैंने उसकी इस भूलको सुधारकर यह गलत खयाल तो दूर कर दिया है लेकिन मैं जानता हूं कि ऐसी और भी बहुतसी बहनें हैं जिनके लिए उक्त बहनको लिखे गये मेरे पत्रका सार यहां देना लाभदायी होगा।

अगर कोई बहन अखण्ड कुमारिका रह सकती है तो वह अच्छा ही है। लेकिन ऐसा तो लाखोंमें कुछ ही बहनें कर सकती हैं। विवाह करना स्वाभाविक है। उसमें धर्मकी कोई बात नहीं हो सकती। विवाहको पतन माननेका मन पर बुरा असर पड़ता है और गिरनेके बाद उठना प्रयत्नकी बात हो जाती है। अकसर प्रयत्न निष्फल भी जाता है। इससे बेहतर तो यह है कि विवाहको धर्म समझा जाय और उसमें संयमका पालन किया जाय। गृहस्थाश्रम भी चार आश्रमोंमें से एक है। बाकी तीनों आश्रम उसी पर टिके हुए हैं। लेकिन आजकल विवाह भोग-विलासका ही साधन बन गया है इसलिए उसके परिणाम भी विपरीत हुए हैं। वानप्रस्थ तथा संन्यास तो नाममात्रको ही रह गये हैं। ब्रह्मचर्याश्रम भी नहींवत् हो गया है।

उक्त बहनका और उसके समान दूसरी सब बहनोंका धर्म तो यह है कि वे अपने गृहस्थ-जीवनको भी धर्म समझकर बितावें और उसे ब्रह्मचर्य-जीवनसे भी अधिक सुशोभित करके दिखावें। ऐसा करनेसे उनकी सेवा शक्ति बहुत बढ़ेगी। सेवावृत्तिवाली बहन अपने लिए सेवाभावी साथी ही पसन्द करेगी और दोनोंकी सम्मिलित शक्तिसे सेवाका काम ही होगा।

आम तौर पर बहनोंको मातृधर्मकी शिक्षा नहीं मिलती। लेकिन अगर गृहस्थ-जीवन धर्म है तो मातृ-जीवन तो धर्म है ही। माताका धर्म एक

कठिन धर्म है। इसलिए पति-पत्नीको संयमसे रहकर सन्तान पैदा करनी चाहिये। माताको यह ज्ञान होना चाहिये कि गर्भ-धारणके समयसे उसका क्या क्या कर्तव्य हो जाता है। जो स्त्री देशको तेजस्वी आरोग्यवान और सुशिक्षित सन्तान भेंट करती है वह भी देशकी सेवा ही करती है। जब बच्चे बड़े होंगे तो वे भी सेवाके लिए ही तैयार होंगे। इसलिए जिसके दिलमें सेवाकी अखण्ड जोत जलती है, वह तो हर हालतमें सेवा ही करेगी और जिस काममें सेवाधर्मका पालन नहीं हो पाता उसमें कभी न फँसेगी।

हरिजनसेवक ८-३-'४२

४६

काम-विज्ञानकी शिक्षा

१

गुजरात विद्यापीठसे हाल ही 'पारंगत' की पदवी प्राप्त करनेवाले श्री मगनभाई देसाईके ७ अक्तूबरके पत्रसे नीचेका अंश यहाँ देता हूँ:

> इस बारेमें 'हरिजन' में आपका लेख पढ़कर मेरे मनमें विचार आया कि मैं भी एक प्रश्न चर्चाके लिए आपके सामने पेश करूँ। इस प्रश्न पर आपने अब तक शायद ही कुछ कहा या लिखा है। वह है बालकोंको और खास करके विद्यार्थियोंको काम-विज्ञान सिखाना चाहिये या नहीं। आप तो जानते ही हैं कि श्री [illegible] इस विषयके बड़े हामी हैं। पर मुझे तो इस बारेमें हमेशा अंदेशा ही रहा है, बल्कि मेरा तो यह मत है कि न इस विषयके अधिकारी भी नहीं हूँ। परिणामसे तो इस विषयकी अनिच्छा प्रकट होती जाती है। वे तो शायद ऐसा ही मानते दिखाई देते हैं कि काम-विज्ञानके न जाननेसे ही शिक्षा और समाजमें यह बिगाड़ हुआ है। अर्वाचीन मानसशास्त्र भी बताता है कि यही

सुप्त काम-भावना मानव-प्रकृतिका उद्गम-स्थान है। काम एव क्रोध एव —इससे आगे ये लोग जाते ही नहीं। हमारा एक दिन मुझसे कहता था आपको यह कहां मालूम है कि हरएक मानवके अन्दर काम नामक राक्षस रहता है? और इसके फल-स्वरूप उसकी नैतिक भावना जाग्रत होनेके बदले उल्टी बढ़ बनी हुई दिखाई दी। इस तरह गुजरातमें आजकल इसी काम-विज्ञानके शिक्षणके नाम पर बहुत-कुछ हो रहा है। इस विषय पर पुस्तकें भी लिखी गई हैं। उनके संस्करण पर संस्करण छपते हैं और हजारोंकी संख्यामें वे बिकती हैं। कई कैसे साप्ताहिक इस विषयके निकलते हैं और उनकी बिक्री भी कितनी अधिक होती है। और, यह तो जैसा समाज होता है वैसा भोजन उसे परोसनेवाले मिल ही जाते हैं किन्तु इससे सुधारककी व्यथा और भी बढ़ जाती है।

इसलिए मैं चाहता हूं कि आप काम-विज्ञानकी शिक्षाके विषयमें सार्वजनिक रूपसे चर्चा करें। क्या शिक्षामें काम-विज्ञानके शिक्षणकी आवश्यकता है? उसकी शिक्षा देनेका और उसे पानेका अधिकारी कौन है? क्या सामान्य भूगोल गणित आदि विषयोंकी तरहसे सबको उसकी शिक्षा दी जानी चाहिए? उसमें क्या सिखाया जाय? उसकी क्या मर्यादा है और यह मर्यादा कौन बनाये? और हमारी नस-नसमें पैठ हुए इस शत्रुकी मर्यादा इसके उल्टी दिशामें बांधना उचित है या शुभ नाम देकर उसे मजबूत बनानेकी दिशामें? ऐसे अनेक तरहके सवाल मनमें उठते हैं। आशा है कि आप इस विषय पर अवश्य प्रकाश डालेंगे।

यहां मैं अपने प्रश्नके संबंधमें एस पी वैकमका एक उद्धरण देता हूं। वह कितना मार्मिक है!

क्या गुजरातमें और क्या दूसरे प्रान्तोंमें सब जगह कामदेव लगातार विजय प्राप्त कर रहे हैं। आजकलकी उसकी विजयमें एक विशेषता यह है कि उनके उपासक नर-नारीगण अपने इस कार्यको धर्म मानते दिखाई देते हैं। जब ...

है, तब कहना चाहिये कि उसके सरदारकी पूरी विजय हो गई ! इस तरह कामदेवकी विजय होते देखकर भी मेरा यह अटल विश्वास है कि यह विजय क्षणिक है तुच्छ है और अन्तमें डंक-कटे बिच्छूकी तरह निस्तेज हो जानेवाली है। ऐसा होनेके पहले पुरुषार्थकी तो आवश्यकता रहेगी ही। यहां मेरा यह आशय नहीं है कि अन्तमें कामदेवकी हार होनेवाली ही है इसलिए हम निष्क्रिय या गाफिल बनकर बैठे रहें। काम पर विजय प्राप्त करना स्त्री-पुरुषोंका एक परम कर्तव्य है। उस पर विजय प्राप्त किये बिना स्व राज्य प्राप्त करना असंभव है। स्व राज्यके बिना स्वराज्य अथवा रामराज्य होगा ही कहांसे ? स्व राज्य-विहीन स्वराज्यको विषफलके आमकी तरह समझना चाहिये। देखनेमें बड़ा सुन्दर, परन्तु खोलो तो अन्दर पोल ही पोल। काम पर विजय प्राप्त किये बिना कोई सेवक हरिजनोंकी कौमी एकताकी खादीकी गोमाताकी ग्रामवासीकी सेवा कभी नहीं कर सकता। इस सेवाके लिए बौद्धिक सामग्री काफी नहीं होगी। आत्मबलके बिना ऐसी महान सेवा असंभव है। और आत्मबल प्रभुके प्रसादके बिना असंभव है। कामी मनुष्यको प्रभुका प्रसाद मिला हो ऐसा अब तक जाना नहीं गया।

काम-विज्ञानकी शिक्षाका हमारी शिक्षा-प्रणालीमें क्या स्थान है अथवा उसका कोई स्थान है भी या नहीं ? काम-विज्ञान दो प्रकारका होता है। एक वह जो काम-विकारको अंकुशमें रखने या जीतनेके काम आता है और दूसरा वह जो उसे उत्तेजन और पोषण देनेके काम आता है। पहले प्रकारके काम-विज्ञानकी शिक्षा बालशिक्षाका उतना ही आवश्यक अंग है जितनी दूसरे प्रकारकी शिक्षा हानिकारक और खतरनाक है और इसलिए दूर रखनेके योग्य है। सभी बड़े धर्मोंने कामको मनुष्यका घोर शत्रु माना है और यह ठीक ही माना है। क्रोध या द्वेषका स्थान दूसरा ही रखा गया है। गीताके अनुसार क्रोध कामकी सन्तान है। बेशक गीतामें काम शब्दका प्रयोग इच्छामात्रके व्यापक अर्थमें किया है। परन्तु जिस संकुचित अर्थमें उसका यहां उपयोग किया गया है उस अर्थमें भी यह बात लागू होती है।

लोगोंको सिखाना चाहिये जिन्होंने इसका अध्ययन किया है और अपनी इन्द्रियों पर प्रभुत्व प्राप्त कर लिया है। ऊंचे दर्जेका वाक्य भी यदि उसके पीछे हृदयकी सचाई और अनुभव नहीं है निष्क्रिय और निर्जीव होगा और वह मनुष्योंके हृदयोंमें घुसकर उन्हें जगा नहीं सकेगा जब कि आत्म-दर्शन और सच्चे अनुभवसे निकलनेवाली वाणी सदा सफल होती है।

आज तो हमारे सारे वातावरणका — हमारे पढ़ने हमारे सोचने और हमारे सामाजिक व्यवहारका — सामान्य हेतु कामेच्छाकी पूर्ति करना होता है। इस जालको तोड़कर निकलना आसान काम नहीं है। परन्तु यह हमारे उच्चतम प्रयत्नके योग्य कार्य है। यदि व्यावहारिक अनुभववाले मुट्ठीभर शिक्षक भी ऐसे हों जो आत्म-संयमके आदर्शको मनुष्यका सर्वोत्तम कर्तव्य मानते हों और अपने कार्यमें सच्चे और अडिग विश्वाससे अनुप्राणित हों तो उनके परिश्रमसे गुजरातके बालकोंका मार्ग प्रकाशमान हो जायगा वे भोलेभाले लोगोंको आत्म-पतनके कीचड़में फंसनेसे बचा लेंगे, और जो लोग पहले ही फंस चुके हैं उनका उद्धार कर देंगे।

हरिजन २१-११-३६

२

[ऊपरके लेखमें दिये गये पत्रमें एम. पी. जैक्सके जिस उद्धरणका उल्लेख किया गया है उसका अनुवाद नीचे दिया जाता है। यह उद्धरण इस लेखककी The Education of the whole Man — मनुष्यकी सर्वांगीण शिक्षा — नामक पुस्तकसे लिया गया है।]

मुझे यह स्वीकार करना चाहिये कि यह मान्यता मुझे भयंकर भ्रम मालूम होती है कि कामशास्त्रकी पूरी और शुद्ध चर्चा करनेसे बालक और नवयुवक उसकी [illegible] बच जायंगे। इसी तरह इस प्रकारकी पूर्ण और शुद्ध चर्चा करनेकी जिम्मेदारी जिन शिक्षकों या शिक्षिकाओंके कंधे पर हो [illegible] लिए भी मैं मन कभी तैयार नहीं होगा। [illegible] है कि [illegible] चर्चा की विषयवस्तु यदि बालकोंके [illegible] समाजका रूप ले लेती है और उनके मनमें [illegible] का कारण बन जाती है। इसकी

अपूर्ण रखा है, उसे विद्यार्थी शिक्षकके सोचे हुए समयसे पहले ही और शिक्षक न चाहे उस ढंगसे पूरा कर लेगा। ऑक्सीजनके गुण अथवा पाचनकी क्रिया समझाते समय जैसे शिक्षक ठंडे खून से काम लेता है वैसा काम-विज्ञानकी शिक्षामें नहीं होता। यहाँ तो गरमागरम खूनसे प्रयोगके लिए गरम हो रहे खूनसे यह काम लेना है यह बातके साथ चलता है।

शिक्षकके लिए जो भय रहता है उसे विस्तारसे बतानेकी आवश्यकता नहीं है। काम-विकारके विषयमें खुले दिलसे बात करना कठिन है। परन्तु यदि शिक्षक मनमें चोरी रखता है तो तरुणवर्ग उसे जल्दी ही समझ लेते हैं। और उन्हें जरा भी शंका हो जाय कि शिक्षकने कुछ छिपाया है तब तो अच्छे परिणामकी आशा मारी जाती है। धर्मके विषयमें भी यही बात सच है।

अब मैं तो इस निर्णय पर पहुँचा हूँ कि काम-विकारके प्रश्नको हल करनेका काम जिस हद तक शिक्षकवर्गके हिस्सेमें आता है उस हद तक उसका यह कर्तव्य है कि ज्ञानप्राप्ति तक ही शिक्षाके ध्येयको सीमित न रख कर उसे आगे बढ़ाये और मन-संयमकी कुशलता तक उसे ले जाय। सीधी-सादी भाषामें इसका यह अर्थ है कि कलाको (यहाँ कलाका अर्थ विज्ञान अर्थात् अत्यन्त कुशलतासे किया हुआ कर्तव्य कर्म करना चाहिये) *शिक्षामें अधिक महत्त्वपूर्ण और अधिक केन्द्रीय स्थान प्राप्त होना चाहिये।*

इस प्रश्नके सम्बन्धमें माता-पिताके कर्तव्यकी भी चर्चा कर लें। ऊपर मैंने जो कुछ कहा है उसे यहाँ थोड़ा मर्यादित रूपमें लागू किया जा सकता है। इस विषयमें तो वाद-विवादकी गुंजाइश ही नहीं है कि यदि काम-विज्ञानका ज्ञान देना हो तो माता-पिता इसके लिए उत्तम शिक्षक हैं अथवा होने चाहिये। गृह-जीवनके सामान्य वातावरण पर सारा आधार रहता है। गृह-जीवन यदि निष्पाप हो या विषय-भोगसे भरा हो तो काम-विज्ञान जितना अत्यन्त लाभदायक सिद्ध हो सकता है उतना ही घरमें भी हो सकता है।

हरिजनबन्धु २८-११-३६

शिक्षण और संतति नियमन

[कोचीनमें श्रीमती कुन्तल मायर नामक एक बहनने गांधीजीके साथ शिक्षण और सन्तति-नियमनके बारेमें लम्बी चर्चा की थी। उस चर्चाकी गांधीजी द्वारा देखी हुई रिपोर्टमें से नीचेका भाग यहां दिया जाता है।]

श्रीमती मायर — आपको ऐसा नहीं लगता कि लड़के-लड़कियोंको शिक्षाके आरम्भसे अंत तक सहशिक्षा दी जाय तो उससे आज हम जिन विकारों और वासनाओंको उन लोगोंमें बढ़ा हुआ पाते हैं उन्हें घटानेमें बड़ी मदद मिलेगी?

गांधीजी — सहशिक्षाकी पद्धति सफल होगी या नहीं इसके बारेमें मैं अभी निश्चित रूपसे कुछ नहीं कह सकता। पश्चिममें इसे सफलता मिली है ऐसा नहीं लगता। बहुत वर्ष पहले मैंने यह प्रयोग किया था। उस समय मैं लड़के-लड़कियोंको एक ही बरामदेमें सुलाता था। बीचमें कोई परदा नहीं रखता था। कस्तूरबा और मैं उसी बरामदेमें सो जाते थे। मुझे कहना चाहिये कि उसका परिणाम अच्छा नहीं आया।

मायर — लेकिन जिस समाजमें परदेकी प्रथा है उसमें इससे भी बुरी बातें क्या नहीं होतीं?

गांधीजी — हां होती हैं। लेकिन सहशिक्षा अभी तो प्रयोगकी स्थितिमें है और उसके परिणामोंके बारेमें हम इस पक्ष या उस पक्षमें निश्चित रूपसे कुछ नहीं कह सकते। मैं मानता हूं कि हमें सबसे पहले परिवारमें इसका आरम्भ करना चाहिये। परिवारमें लड़के-लड़कियोंका पालन-पोषण स्वतंत्रतासे और कुदरती रूपमें होना चाहिये। बादमें सहशिक्षा अपने-आप आ जायगी।

मायर — मैं शिक्षिका रही हूं इसलिए लड़कियोंके निकट सम्पर्कमें आई हूं। मैंने ऐसे कुछ उदाहरण देखे हैं जिनमें लड़कियोंमें उनकी जवानीके दिनोंमें अज्ञानके कारण अथवा गन्दी जगहसे मिली जानकारीके

कारण ऐसी आदतें पड़ गई थीं जिनसे उनके शरीर और मन दोनोंको हानि पहुंची। शालाओंमें अत्यन्त वैज्ञानिक पद्धतिसे बाल ही बालमें स्त्री-पुरुष-सम्बन्धके बारेमें और शरीर रचनाके बारेमें लड़के-लड़कियोंको ज्ञान दे दिया जाय तो क्या उससे हमारे लड़के-लड़कियोंको लाभ नहीं होगा?

गांधीजी — हां लाभ होगा। और इस विषयमें निःसंकोच ज्ञान बात नहीं की जा सकती ऐसा कुछ नहीं है।

मायर — मैंने संतति-नियमनके बारेमें अनेक विवाहित स्त्रियोंके साथ खुले मनसे चर्चा की है। उस चर्चामें मैंने देखा कि अनेक स्त्रियोंको बार बार करके कई बालकोंवाली स्त्रियोंको मजबूरन् मां बनना पड़ता है। स्त्रीको यदि अपने शरीर पर कोई अधिकार न हो तो उसे सच्ची स्वतंत्रता प्राप्त है ऐसा नहीं कहा जा सकता। ऐसी माताकी शरीर-शक्ति अत्यधिक प्रसूतिसे घिसती जाती है और बालक भी — जो वास्तवमें आनन्द देनेवाले होने चाहिये — माता-पिताकी इच्छाके विरुद्ध जो सच्चामें उत्पन्न होनेके कारण दोनोंको अखरते हैं। ऐसी माताओं और ऐसे बालकोंके खातिर क्या कृत्रिम साधनों द्वारा सन्तति-नियमन नहीं किया जाना चाहिये? संयम तो श्रेष्ठ वस्तु है ही परन्तु साधारण स्त्री-पुरुषोंके लिए यह बहुत ऊंचा आदर्श है। इसलिए दूसरे नंबरके उपायके रूपमें सन्तति-नियमनकी कृत्रिम पद्धति क्या नहीं अपनाई जा सकती?

गांधीजी — क्या आप ऐसा मानती हैं कि कृत्रिम साधनोंके उपयोगसे शरीरकी स्वतंत्रता मिलती है? स्त्रियोंको पुरुषोंके विकारका विरोध करना सीखना चाहिये। पश्चिममें जिस प्रकार कृत्रिम साधनोंका उपयोग किया जाता है उसी प्रकार हम भी उनका उपयोग करने लगें तो उसका भयंकर परिणाम पैदा होगा। तब स्त्री और पुरुष केवल विषय-भोगके खातिर ही जीने लगेंगे। उनके मन दुर्बल और उनकी वृत्ति अस्थिर हो जायगी। और अगर उनके शरीर निकम्मे न हो जायें तो भी उनके मन और उनकी नीति तो पूरी तरह नष्ट हो ही जायेंगे। इसके सिवा पुरुषका पाप ज्यादा गंभीर है इसे मैं जरूर मानता हूं परन्तु स्त्रीका पाप भी पुरुषसे जरा कम नहीं होता। कुल मिलाकर पाप दोनों करते हैं। परन्तु स्त्री सदा ही पुरुषका शिकार होती है ऐसी बात नहीं

है। स्त्रीको अपना गौरव पहचानना चाहिये। और जब उस पतिकी इच्छाके विरुद्ध ना कहना हो तब ना कहनेकी शक्ति अपने भीतर उसे पैदा करनी चाहिये।

सागर — परन्तु क्या आज भी विषय-भोगकी मात्रा मर्यादासे बाहर नहीं पहुंच गई है? कृत्रिम साधनोंका उपयोग करनेसे व्यक्तियोंके विषय-भोगमें क्या बहुत ज्यादा फर्क पड़ जायगा?

गांधीजी — आज भी विषय-भोग बहुत ज्यादा बढ़ गया है। और काम-वासनाने विकृत रूप भी ले लिया है इसमें कोई शंका नहीं है। परन्तु कृत्रिम साधनोंके उपयोगसे यह वस्तु चरम सीमाको पहुंच जायगी। उसमें अमर्यादित भोगवृत्तिको प्रतिष्ठा प्राप्त हो जायगी, जो आज उसे प्राप्त नहीं है।

सागर — जहां स्त्री इतनी कमजोर हो कि प्रसूतिका बोझ सहन ही न कर सके अथवा जहां स्त्री या पुरुषमें से कोई एक रोगी हो, ऐसे अपवादोंमें भी क्या कृत्रिम साधनोंका उपयोग नहीं किया जा सकता?

गांधीजी — नहीं। एक अपवादसे दूसरा अपवाद निकलेगा और अन्तमें अपवाद सामान्य नियम बन जायगा। ऊपर आपने जो उदाहरण दिये हैं उनमें पति और पत्नी एक-दूसरेसे अलग रहें यही ज्यादा अच्छा है। पश्चिमके देशोंमें कृत्रिम साधनोंका उपयोग किया जाता है। इसके फलस्वरूप बड़ा घृणा पैदा करनेवाली अनीति उत्पन्न हो गई है। और मेरा विश्वास है कि कुछ वर्ष बाद पश्चिमके लोग भी अपनी गलतीको समझ जायंगे। इटलीमें मुसोलिनी बड़े परिवारवाले माता-पिताको इनाम देता है यह बात क्या आप नहीं जानतीं?

सागर — मुसोलिनीको शायद तोपके मुंह पर चढ़ानेके लिए सैनिक चाहिये!

गांधीजी — अंग्रेज और इन प्रजाओंमें कृत्रिम साधन अप्रिय हैं। उनके बारेमें आप क्या कहेंगी? वे क्या युद्ध-विरोधी हैं?

सागर — हिन्दुस्तानकी आबादी कितनी ज्यादा बढ़ गई है? और अभी भी वह तेज गतिसे बढ़ती ही जा रही है। इतनी बड़ी आबादीका हिन्दुस्तान जैसा गरीब देश भला कैसे पालन कर सकता है?

गांधीजी — हम कुदरतको उसका काम करते रहने देंगे तो वह हमारा यह प्रश्न हल कर देगी। कृत्रिम साधन मनुष्य द्वारा कुदरतके नियमोंमें डाला हुआ विघ्न है। मनुष्य यदि खरगोशकी तरह रहना चाहेंगे तो खरगोशकी तरह उन्हें मरना भी पड़ेगा। हम यदि दुराचारी और असंयमी बन जायेंगे तो कुदरतकी सजा हमें भोगनी होगी। इससे परोक्ष रूपमें लाभ ही होगा।

गायर — लेकिन सामान्य स्त्री-पुरुष संयमका पालन कर सकेंगे?

गांधीजी — जरूर। अमुक योग्य परिस्थितियोंमें वे संयमका पालन कर सकेंगे। सच पूछा जाय तो कृत्रिम साधन कमजोर और अशक्त रहने वाले शिथिल लोगोंमें दिखाते हैं। उन्हें मैं अशक्त कहता हूं क्योंकि वे लोग जो कुछ खाते-पीते हैं और जिस तरहका अस्वस्थ बनावटी जीवन बिताते हैं उसने उन्हें मनका दुर्बल और विकारोंका दास बना दिया है।

गायर — महात्माजी तब क्या आपके अमर्यादित भोग-विलासको रोकनेके उपायके रूपमें आप यह सुझाना चाहते हैं कि मनुष्यको कला विज्ञान और साहित्य जैसी भोगरहित वस्तुओंमें अपना मनको पिरोकर *मानवमें निहित सर्जन-शक्तिको उसी दिशामें मोड़ देना चाहिये?*

गांधीजी — आपका कहना सच है। परन्तु हमें अपने भोजन और पेयके बनानेमें तथा मन और शरीर दोनोंको निर्मल रखनेके बारेमें अत्यन्त सावधानीसे काम लेना चाहिए। जिस प्रकार हमारे मनमें कौनसा विचार प्रवेश करता है यह जानना जरूरी है उसी प्रकार हमारे शरीरमें कौनसा भोजन या पेय प्रवेश करता है यह जानना भी जरूरी है। य सादी-सी बात है परन्तु संयमके पालनमें ये बात बड़ी मदद करती है।

गायर — आप जानते हैं कि हमारे हिन्दुस्तानमें शरीरसे अशक्त मनुष्य [illegible] विचार करने पर अथवा प्रजोत्पत्ति करने पर किसी प्रकारका प्रतिबंध [illegible] नहीं [illegible] सिवा [illegible] यह करना है कि [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] नहीं होगा। इस कारणसे [illegible] [illegible] हिन्दुस्तानके [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] पुत्रको [illegible]

गांधीजी — करोड़ों हिन्दू, खास करके अस्पृश्य माने जानेवाले हरिजन ऐसे हैं जो ब्याह नहीं करते। कानून बनाकर देशकी जनता पर जबरन् बांझपन लादनेको मैं अमानुषिक कृत्य मानता हूं। परन्तु यदि असाध्य रोगवाले कोई मनुष्य ऐसा करानेके लिए तैयार हों तो उन्हें बांझ बना देना जरूर ठीक होगा। यह एक प्रकारका कृत्रिम उपाय है। और यद्यपि मैं स्त्रियोंके बारेमें कृत्रिम साधनोंका विरोधी हूं परन्तु पुरुष यदि स्वेच्छासे बांझ बनना चाहें तो उसके लिए मेरा विरोध नहीं है। क्योंकि पुरुष स्त्री पर आक्रमण करनेवाला है।

मायर — महात्माजी आप कहते हैं कि स्त्रीको जबरन् सन्तान उत्पन्न करनेसे इनकार कर देना चाहिये उसे अपनी इच्छाके अनुसार आचरण करना चाहिये और पति उसकी इच्छाके विरुद्ध व्यवहार करे तो साफ ना कह देना चाहिये। लेकिन क्या आपने इस बातका विचार किया है कि खास तौर पर हिन्दू स्त्रीके पास अपनी कोई सम्पत्ति होती ही नहीं इसलिए अगर वह पतिको ना कहे तो मुसीबतमें फंस जाय और कानूनके अनुसार उसे दूसरा वर तो मिल ही नहीं सकता परन्तु आजीविकाके साधन भी नहीं मिल सकते?

गांधीजी — आप गिनती लगाकर देखेंगी तो पता चलेगा कि हिन्दू स्त्रीकी आर्थिक स्थितिके बारेमें आप जो बात कहती हैं वह केवल मुट्ठी-भर स्त्रियोंके लिए ही सच है। आपको इस बातका पता नहीं है कि हिन्दुस्तानमें गृह-संसारकी सच्ची स्वामिनी स्त्री ही होती है।

मायर — क्या आप यह बतायेंगे कि साबरमती आश्रममें आपके संयमके प्रयोग कितने सफल हुए हैं?

गांधीजी — यह कहना बहुत कठिन है। पतनके कुछ इने-गिने उदाहरण तो सामने आये थे। परन्तु जो लोग आश्रममें आते थे उन पर वहांके सामान्य वातावरणका बहुत अच्छा प्रभाव पड़ता था — जो विकारोंको उत्तेजित न करनेवाला होते हुए भी आश्रमवासियोंको काफी स्वतंत्रता देता था।

हरिजनबन्धु, २०—१—३५

माता पिताकी जिम्मेवारी

एक शिक्षक लिखते हैं

आपने नौजवानोंके दोषोंके बारेमें लिखा है। पर मुझे तो इन दोषोंके लिए माता-पिता ही जिम्मेदार मालूम होते हैं। बड़े लड़के-लड़कियोंके माता-पिता यदि प्रजोत्पत्ति करते रहें तो इसका परिणाम क्या होगा? ऐसे विवाहोंको अगर व्यभिचारका नाम दिया जाय तो क्या अनुचित होगा? एक बालक अपनी मांकी मृत्युके बाद पिताके पास सोता था। लेकिन पिताने दूसरा विवाह कर लिया और नई पत्नीके साथ वह दरवाजा बन्द करके सोने लगा। इससे उस बालकके मनमें कुतूहल जन्मा कि पिताजी मेरे साथ क्यों नहीं सोते? अथवा मेरी मां जिन्दी थी तब तो हम तीनों साथ साथ सोते थे अब नई माके आने पर मेरे पिता मुझे अपने साथ क्यों नहीं सुलाते? बालकका यह कुतूहल धीरे धीरे बढ़ा। दरवाजेकी दरारमें से भीतर झांकनेका उसका मन हुआ। जो दृश्य दरारमें से उसे दिखाई दिया उसका बालकके मन पर क्या असर हुआ होगा?

ऐसा तो समाजमें सदा ही होता रहता है। और यह उदाहरण मैंने अपने मनसे नहीं गढ़ लिया है। यह एक १३–१४ वर्षके लड़केसे सुनी हुई सच्ची बात है। छोटी उमरमें जो प्रजा आत्मनाशके मार्ग पर जायगी वह स्वराज्य कैसे ले सकेगी? या स्वराज्यकी रक्षा कैसे कर सकेगी? ऐसा न हो इसकी सावधानी यदि माता-पिता शिक्षक छात्रालयके गृहपति या स्काउट-मंडलके प्रमुख अधिकारी रखें तो कितना अच्छा हो? बहुत बार छोटी उमरमें ब्रह्मचर्य शब्दका अर्थ समझना कठिन मालूम होता है। इसलिए अनेक बालकोंको एकत्र करके ब्रह्मचर्य पर भाषण देनेके बजाय यह ज्यादा बाजबीन लगता है कि प्रत्येक बालककी

विश्वासमें लेकर और उसके सच्चे मित्र बनकर छोटी उमरमें ही सावधानीसे ऐसा प्रयत्न किया जाय कि वह सदाचारकी ओर मुड़े। क्या ऐसा कोई मार्ग है जिसे अपनानेसे बालकके मनमें बुरे विचारोंका उद्गम ही न हो?

अब बड़ी उमरके लोगोंके बारेमें। जो समाज जो जाति अन्य जातिकी स्त्रीके हाथका भोजन करनेवाले पुरुषका बहिष्कार करती है वह जाति या समाज परस्त्रीके साथ संभोग करनेवाले पुरुषका बहिष्कार क्यों न करे? जो जाति राजनीतिक परिषदमें अस्पृश्योंके साथ बैठनेवालोंका बहिष्कार करती है, वही जाति व्यभिचारियोंका बहिष्कार क्यों न करे? इसका कारण मुझे तो नहीं मालूम होता है कि यदि प्रत्येक जाति आत्मशुद्धि करने बैठे तो उसका शरीर बहुत ही क्षीण हो जायगा। परन्तु क्षीण शरीरमें बलवान आत्मा रह सकती है इसका भान उन्हें नहीं है। अनेक जातियोंके मुखिया लोग भी शराब या व्यभिचारकी बुराईमें फंसे होते हैं। परन्तु अपने पैरों पर कुल्हाड़ी मारनेकी नौबत आनेकी वजहसे वे अपने दोषोंकी सर्वथा उपेक्षा करते हैं परन्तु दूसरोंका बहिष्कार करते समय वे एक पैर पर तैयार रहते हैं। हमारा यह समाज कब सुधरेगा? जिस देशको राजनीतिक उन्नति करनी है वह देश यदि सामाजिक उन्नति पहले न कर ले तो उसकी राजनीतिक उन्नति आकाश-कुसुमकी तरह असंभव ही रहती है।

सब कोई स्वीकार करेंगे कि इस पत्रमें जो कुछ लिखा गया है उसमें बहुत सार है। क्योंकि बड़े हो जाने पर भी पहले विवाहकी पत्नीसे अथवा पत्नीके मर जाने पर दूसरा विवाह करके प्रजोत्पत्ति करनेसे उन बच्चोंको हानि पहुंचती है यह बात समझानेकी जरूरत होनी ही नहीं चाहिये। परन्तु इतना संयम यदि न पाला जा सके तो पिताको बड़ी उमरके बच्चोंको अलग घरमें रखना चाहिये अथवा स्वयं ऐसे अलग कमरेमें सोना चाहिये जहांसे बालक कोई आवाज न सुन सकें या कुछ देख न सकें। ऐसा करनेसे थोड़ी सभ्यताकी रक्षा तो अवश्य ही होगी।

वातावरण निर्दोष रखना चाहिये। उसे माता-पिता भोग-विलासके वश होकर दोषपूर्ण बनाते हैं। वानप्रस्थ आश्रमकी प्रथा बालकोंकी नैतिकताकी दृष्टिसे तथा उन्हें स्वतंत्र और स्वावलम्बी बनानेकी दृष्टिसे अत्यन्त उपयोगी सिद्ध होनी चाहिये।

पत्रलेखकने शिक्षकोंके लिए जो सूचना दी है वह सर्वथा उचित है। परन्तु जहां ५०-६० बालकोंका वर्ग हो, वहां शिक्षकका सम्बन्ध विद्यार्थियोंसे सिर्फ अक्षर ज्ञान देने तक ही सीमित रहेगा। शिक्षक चाहे तो भी इतने विद्यार्थियोंके साथ आध्यात्मिक सम्बन्ध कैसे बांध सकता है? इसके सिवा जहां पांच-सात शिक्षक पांच-सात विषय सिखाते हों, वहां कौनसा शिक्षक बालककी नीतिके लिए जिम्मेदारी ले सकता है?

और अन्तमें कितने शिक्षक स्वयं बालकोंको नीतिके मार्ग पर चलानेका या बालकोंका विश्वास संपादन करनेका अधिकार भोगनेवाले मिल सकते हैं? इसमें तो शिक्षाका समूचा प्रश्न ही समाया हुआ है। परन्तु उसकी चर्चा यहां अप्रासंगिक होगी।

समाज भेड़िया-धसानकी तरह बिना सोचे बिना देखे गड्ढोंमें चला जाता है और इसे कुछ लोग प्रगति भी मानते हैं। ऐसी भयंकर स्थिति होने पर भी हमारा व्यक्तिगत मार्ग सरल है। जो लोग यह समझते हैं वे अपने अपने क्षेत्रमें काम करते हुए नैतिकताका जितना प्रचार कर सकें करें। पहला प्रचार तो वे अपने ही भीतर करें। दूसरोंके दोषोंका मनन करते समय हम स्वयं बहुत भले बन बैठते हैं। अगर हम अपने दोषोंका मनन करें तो हम अपने आपको कुटिल और कामी मालूम होंगे। दुनियाके काजी बननेके बजाय खुद अपने काजी बनना अधिक लाभप्रद होता है और वैसा करते करते हमें दूसरोंके लिए भी मार्ग मिल जाता है। 'आप भला तो जग भला' इस कहावतका एक मर्म यह भी है। सन्त पुरुषको तुलसीदासने जो पारस-मणिकी उपमा दी है वह व्यर्थ नहीं है। हम सबको सन्त बननेका प्रयत्न तो करना ही चाहिये। ऐसा बनना केवल अलौकिक पुरुषके लिए स्वर्गसे उतर कर आनेवाली प्रसादी नहीं होती। परन्तु ऐसा बनना प्रत्येक मनुष्यका कर्तव्य है। यही जीवनका रहस्य है।

एक ही शत्रु

मनुष्य-मात्रका एक ही शत्रु है और एक ही मित्र है और वह शत्रु या मित्र मनुष्य स्वयं है। यह मेरा अपना वचन नहीं है यह सारे धर्मशास्त्रोंका वचन है। जब मनुष्य अपनेको धोखा देता है तब वह अपना शत्रु बनता है। जब मनुष्य अपने हृदयमें बसे हुए परमेश्वरकी शरणमें अपनेको रख देता है तब वह अपना मित्र बन जाता है। यह लिखनेका हेतु जिन दो पतनोंका उल्लेख मैं पहले कर चुका हूं तथा ऐसे ही जो छोटे-बड़े पतनके किस्से मेरे देखनेमें आते हैं उनकी चर्चा करना है। इस प्रश्नमें मैं जितना गहरा उतरता हूं उतना ही यह देखता हूं कि इन किस्सोंसे सम्बन्धित व्यक्ति अपने-आपको धोखा देते हैं।

दोष तो हम सभी करते हैं। परन्तु जब दोषमें से हम निर्दोषता पैदा करनेका प्रयत्न करते हैं तब हम ज्यादा नीचे गिरते हैं।

एक पुरुष ऐसी दो स्त्रियोंके साथ जो उसे अपना भाई समझती हैं तपस्वी तथा शुद्ध सेवकके रूपमें देखती हैं और अपना शिक्षक या गुरु मानती हैं नीचे गिरता है और फिर उनमें से एकके साथ विवाह कर बैठता है। इसे मैं पुरुषकी अपने व्यभिचारको छिपानेकी युक्ति मानता हूं। ऐसे सम्बन्धको विवाहका नाम देना विवाह जैसे पवित्र संस्कारकी निन्दा करना है। मैं जानता हूं कि आजकल ऐसा अनेक स्थानों पर चलता है। पापका गुणाकार या जोड़ करनेसे उसमें जो वृद्धि होती है उस वृद्धिको कभी पुण्य नहीं कहा जा सकता। सारा जगत पाप करे तो वह पाप रूढ़ हो सकता है परन्तु पाप तो पाप ही रहेगा — पुण्य नहीं बन जायगा। मैं जानता हूं कि यह नियम पाप माने जानेवाले सभी कार्योंके विषयमें सत्य नहीं है। परन्तु मेरी दृष्टिमें तो इस समय ऐसे ही किस्से हैं जो परम्परासे पाप माने गये हैं और जिन्हें आजका समाज भी पाप मानता है।

शिक्षक अपनी शिष्याओंके साथ गुप्त सम्बन्ध रखनेमें और बादमें ऐसे सम्बन्धोंमें से किसीको विवाहका रूप दे या ऐसा करनेमें इस तरहका

सम्बन्ध पवित्र नहीं बन सकता। जिस प्रकार भाई-बहनके बीच पति-पत्नीका सम्बन्ध कभी संभव हो ही नहीं सकता, उसी प्रकार शिक्षक और शिष्याके बीच भी पति-पत्नीका सम्बन्ध कभी नहीं होना चाहिए। यह मेरा दृढ़ मत है। शिक्षण-संस्थामें यदि इस स्वर्ण-नियमका पूर्ण पालन न हो तो अंतमें वह शिक्षण-व्यवस्था टूट जायगी, कोई भी बाला शिक्षकोंसे सुरक्षित नहीं रह सकती। शिक्षकका पद ऐसा है कि बालायें और बालक निरन्तर उसके प्रभावमें रहते हैं। वे दोनों अपने शिक्षकके वचनको वेद-वचनके रूपमें मानते हैं। इसलिए शिक्षक अपने व्यवहारमें उनके साथ जो स्वतंत्रता लेता है उसके विषयमें उनके मनमें कोई संदेह पैदा नहीं होता। इसीलिए जहां शरीरसे भिन्न मानी जानेवाली आत्माका सम्मान होता है वहां इस प्रकारके सम्बन्ध अशुद्ध माने जाते हैं और माने जाने चाहिये। जब ऐसे सम्बन्ध हरिजन-सेवक-संघ जैसी संस्थामें स्थापित होते हैं तब उनका बुरा असर बहुत दूर तक पहुंचता है और वे हरिजन-कार्यको नुकसान पहुंचाते हैं।

मेरा यह दृढ़ विश्वास है कि त्रावणकोरमें सारे राज-मन्दिर हरिजनोंके लिए खोल देनेकी जो आकस्मिक घटना घटी है उसके पीछे मूक सेवकोंकी सेवाका बल था। ऐसे सेवक सारे देशमें बिखरे हुए हैं। उन्हें प्रशंसा और ख्याति नहीं चाहिये। उनके पास आडंबर नहीं है। वे तो सेवा करनेमें ही अपनी सार्थकता मानते हैं। उन्हींके पुण्यसे त्रावणकोरके महाराजके मनमें भगवान जागे और उन्होंने महाराजके हाथों सारे मन्दिरोंके द्वार हरिजनोंके लिए खुलवा दिये। यह कदम तो प्रभुकी महिमाका प्रथम दर्शन है। सेवकोंके लिए अधिक सावधानीसे कार्य करनेका, अधिक पवित्र बननेका तथा अधिक तन्मयतासे सेवा करनेका आमंत्रण है। जब तक सारे मन्दिरोंके द्वार हरिजनोंके लिए नहीं खुल जाते, जब तक हरएक मन्दिरसे दंभ, पाखंड और मलिनता दूर नहीं हो जाती, जब तक हिन्दुओंके हृदयसे अस्पृश्यता मिट नहीं जाती, तब तक कोई सेवक या सेविका शांत होकर बैठ नहीं सकती। और हमें यह बात अच्छी तरह समझ लेनी चाहिये कि अस्पृश्यताके इस सनातन पापको धोनेमें जो ढिलाई हो रही है उसका कारण केवल हममें

प्रकाशमें आम ऐसे सेवकोंके पाप ही हैं। कौन जानता है कि ऐसे कितने सेवक अपने पापोंको छिपा रहे होंगे। सेवक पापका पुण्य मानकर अपनी कमजोरीका पोषण न करें, पापको छिपानेमें स्वयं नीचे गिरकर अपने कार्यको भी अपने साथ नीचे न गिरायें और पापका अल्प मात्रामें स्वीकार करके ही सतोष न मानें।

कुछ लोगोंको अपना पाप सबके सामने स्वीकार करनेमें संकोच होता है कुछ लोग स्वीकार करते समय उस पर मुलम्मा चढ़ा देते हैं। लेकिन हम तो पुकार पुकार कर यही कहता है अपने किये हुए राई जैसे छमनवाले दोषोंको पर्वतके रूपमें देखो यदि तुम उन्हें हृदयसे पूरी तरह स्वीकार करोगे तो जिस प्रकार मैला कपड़ा मैलके निकल जानेसे शुद्ध हो जाता है और शुद्ध दिखाई देता है, उसी प्रकार तुम भी शुद्ध हो जाओगे और शुद्ध दिखाई दोगे। और पापका तुम्हारा खुला स्वीकार और पश्चात्ताप तुम्हारे लिए भविष्यमें पापसे बचनेके लिए ढाल जैसा सिद्ध होगा।

हरिजनबन्धु, २९-११-३६

५०

पतिका पवित्र कर्तव्य

एक नवयुवकने मुझे पत्र भेजा है जिसका सार ही यहां दिया जा सकता है। वह इस प्रकार है

> मैं एक विवाहित पुरुष हूं। परन्तु मैं विदेश गया हुआ था। मेरा एक मित्र था जिस पर मुझे और मेरे मां-बापको पूरा विश्वास था। मेरी अनुपस्थितिमें उसने मेरी पत्नीको फुसला लिया जिससे अब वह गर्भवती भी हो गई है। अब मेरे पिता इस बात पर जोर देते हैं कि मेरी पत्नी गर्भको गिरा दे नहीं तो खानदानकी बदनामी होगी। मुझे ऐसा लगता है कि यह तो ठीक नहीं होगा। बेचारी स्त्री पश्चात्तापके मारे मरी जा रही है। न तो उसे खानेकी सुध है न पीनेकी। जब देखो तब वह रोती ही

रहती है। क्या आप कृपा करके मुझे बतलायेंगे कि ऐसी दशामें मेरा क्या कर्तव्य है?"

यह पत्र मैंने बड़ी हिचकिचाहटके साथ प्रकाशित किया है। जैसा कि सब जानते हैं समाजमें ऐसी घटनायें कभी-कदास ही नहीं होतीं। इसलिए समयके साथ सार्वजनिक रूपमें इस प्रश्नकी चर्चा करना मुझे असंगत नहीं मालूम होता।

मुझे तो दिनके प्रकाशकी तरह यह स्पष्ट दिखाई देता है कि गर्भ गिराना अपराध होगा। इस बेचारी पत्नीने जो असावधानी की है वैसी असावधानी तो अनगिनत पति करते हैं, लेकिन उनसे कभी कोई कुछ नहीं कहता। समाज केवल उन्हें क्षमा ही नहीं कर देता बल्कि उनकी निन्दा भी नहीं करता। फर्क यह है कि स्त्री अपनी शर्मको छिपा नहीं सकती जब कि पुरुष अपने पापको सफलताके साथ छिपा सकता है।

यह स्त्री तो दयाकी पात्र है। पतिका यह पवित्र कर्तव्य है कि वह अपने पिताकी सलाहको न माने और पैदा होनेवाले बच्चेका पालन-पोषण भरसक पूरे लाड़-प्यारके साथ करे। वह अपनी पत्नीके साथ रहना जारी रख सकता है या नहीं यह एक टेढ़ा सवाल है। यदि पति पत्नी-परायण हो उसने कभी ऐसा दोष न किया हो तो पत्नीके संगका त्याग करना उसके लिए उचित माना जा सकता है। लेकिन उस हालतमें पतिका यह फर्ज होगा कि वह पत्नीके पालन-पोषण तथा शिक्षाकी व्यवस्था करे और शुद्ध जीवन व्यतीत करनेमें उसकी मदद करे। यदि पत्नीका प्रायश्चित्त सच्चा और शुद्ध मनसे हो तो उसे ग्रहण करनेमें भी मुझे कोई गलती नहीं मालूम पड़ती। यही नहीं बल्कि मैं तो ऐसी स्थितिकी भी कल्पना कर सकता हूं जब पत्नीके अपनी गलतीके लिए पूरी तरह पश्चात्ताप करके उससे मुक्त हो जाने पर पतिका यह पुनीत कर्तव्य हो जाय कि पत्नीको फिरसे ग्रहण कर ले।

यंग इंडिया ३-२-२९

५१

स्त्रीकी विषम स्थिति

"मैं डॉक्टर हूं। सन् १९२१ में एम बी बी एस की परीक्षा पास हुआ हूं। एक पाटीदार भाई मेरे पास आये थे। उन्होंने मुझे बताया कि एक साधारण धनिक कुटुम्बकी विधवा है, जिसकी उमर करीब ३०-३५ सालकी है और जिसे अपने मृत पतिसे दो लड़के हैं। उसे मेरा गर्भ रह गया है। गर्भ करीब तीन महीनोंका होगा। पाटीदार भाई स्वयं विवाहित हैं। उन्होंने मुझसे विनती की कि मैं उन्हें गर्भपातकी कोई दवा लिख दूं।

मैंने उनसे कहा कि मैं गर्भपात कराना पाप समझता हूं। मैं इस पापमें हाथ बंटाना नहीं चाहता। आपको चाहिये कि आप उस गर्भको परिपक्व होने दें। अगर आपको लोकलाजका भय हो तो किसी अनजान स्थानमें उस बाईको ले जाइये और आप भी वहीं रहिये और पूरे महीनोंके बाद उसे प्रसूति होने दीजिये। फिर अपने खर्चसे उस बालकको किसी अनाथालयमें रख दीजिये।

पाटीदार भाई मुझसे कहने लगे: विधवा बाई गरीब है मेरी हैसियत भी मामूली ही है। यदि विधवाकी जातिवालोंके कान तक यह बात पहुंचेगी तो उसकी बड़ी बदनामी होगी और उसके भरण-पोषणमें बाधा आवेगी। ऐसी हालतमें वह मरना ज्यादा पसन्द करेगी।

मैंने उन्हें समझाते हुए कहा कि ऐसे मामलोंमें हिम्मत रखनी चाहिये। आपमें और उस विधवा बहनमें दोनोंमें दृढ़ निश्चय होना चाहिये। पुरुष कई बार भूल करते हैं, लेकिन समाज उनसे कोई जवाब तलब नहीं करता। जब कमजोरीकी घड़ीमें स्त्री पुरुषका शिकार बन जाती है तब उसके साथ समाज क्रूरतापूर्ण बरताव करता है। अगर समाज इन मामलोंमें उदारतासे

काम न छेया तो इस तरहके पाप होते ही रहेंगे। और डॉक्टर भी उनके लालचसे मदद करते रहेंगे।"

ये डॉक्टर धन्यवादके पात्र हैं। उनका कहना बिलकुल ठीक है कि ऐसे मौकों पर बहुतेरे डॉक्टर फीसके लोभमें पड़कर लोगोंके पापोंमें मदद गार होते हैं। लेकिन यह लेख मैं डॉक्टरोंको उनका धर्म बतलानेके लिए नहीं लिख रहा हूं। यह पत्र स्त्रीकी दुर्दशाका चित्र प्रस्तुत करता है। इसका इलाज वही है जो ऊपर बताया गया है। अहिंसा-धर्मके नाम पर अहिंसाको बदनाम करनेवाला आवरा समाज इस तरहकी निर्दयता करनेमें बिलकुल आगा-पीछा नहीं सोचता। यह प्रतिदिन स्त्री-रूपी गायकी हत्या किया ही करता है। स्त्रीके सतीत्वकी रक्षा करनेके बहाने वह उस पर कई तरहके अंकुश लादता है और स्त्री अत्याचारकी पीड़ा भोगनेवाले दूसरे लोगोंकी तरह चुप्प अपराध करती है। लेकिन जबरदस्ती किसीकी पवित्रताकी रक्षा नहीं की जा सकती। स्त्री या पुरुष परदेकी ओटमें पाप करें, इससे बेहतर तो यह है कि वे खुले तौर पर नम्रतासे अपनी कमजोरी स्वीकार करके पुनर्विवाह कर लें और ऐसे पापसे बच। परन्तु स्त्रीकी मदद कौन करे? पुरुषने तो अपना रास्ता साफ बना लिया है। लेकिन स्त्री पर जुल्मी कानून लादकर पुरुषोंने जो पाप अपने सिर ओढ़े हैं उनके प्रायश्चित्तके रूपमें उन्हें अब स्त्रीकी मदद करनी चाहिये। जिन बड़-बूढ़ोंके विचार अब पुख्ता हो गये हैं उनसे ऐसे प्रायश्चित्तकी आशा रखना फिजूल है। हां नवयुवक लोग मर्यादा-पालन करते हुए स्त्रियोंकी सहायता कर सकते हैं। आखिरमें तो स्त्रीका उद्धार स्त्री ही करेगी। लेकिन आज भारतमें ऐसी स्त्रियोंकी संख्या बहुत थोड़ी है। अब नवयुवक बहुत बड़ी संख्यामें स्त्री-जातिकी सहायताके लिए बीड़ा उठायेंगे तभी स्त्रियोंमें जागृति फैलेगी और उनमें से सेवा-परायण और आचार्य और वीरांगनायें पैदा होंगी।

हिन्दी नवजीवन ५-४-२९

५२

धर्म-संकट

तीस वर्षका एक ब्राह्मण युवक लिखता है :

मेरी उमर १ वर्षकी है। मुझे विवाह किये पांच वर्ष हुए हैं। मेरी पत्नीकी उमर लगभग बीस वर्षकी है। अभी हमारी एक भी सन्तान नहीं है। लगभग पांच वर्षसे आपकी सलाह लेनेके लिए मैं पत्र लिखना चाहता था। परन्तु अपनी मानसिक कमजोरीके कारण मैं आपको कुछ भी लिखनेकी हिम्मत नहीं कर पाया। मैं एक खानगी पेढ़ीमें नौकरी करके जैसे-तैसे अपना और परिवारका निर्वाह करता हूं।

मैं जब बारह-तेरह वर्षका था तभीसे मुझे कुटेव पड़ गयी थी। आज भी यह बुरी आदत मुझे सताती है। ऐसी बुरी आदतकी वजहसे मैं अपनी शारीरिक और मानसिक शक्ति खो बैठा हूं। मुझमें कोई भी काम करनेका उत्साह नहीं रहता। जवानीमें ही मैं बूढ़ा होने लगा हूं। अपनी पत्नीकी विषय-वासना तृप्त करनेकी तथा सन्तान उत्पन्न करनेकी शक्ति मुझमें रही नहीं है। मेरी पत्नीको एक-दो सन्तान प्राप्त करनेकी तीव्र इच्छा है। मैं किसी भी तरह उसे सन्तोष देनेकी स्थितिमें नहीं हूं। इसके अलावा ब्राह्मण जैसी जातिमें पतिके जीते-जी कोई भी पत्नी दूसरे किसी पुरुषके साथ दुबारा विवाह कर ही नहीं सकती। मैं अपनी पत्नीको दुबारा विवाह करनेकी स्वतंत्रता देता हूं परन्तु जातिके बन्धनोंके सामने यह समाधान बेकार है।

“कृपा कर मुझे और मेरी पत्नीको उचित मार्गदर्शन प्राप्त हो, ऐसा एक लेख नवजीवन में आप लिखें तो मुझ पर आपका बड़ा उपकार होगा। बहुत बार इस जीवनसे ऊब कर आत्महत्या करनेका मन हो जाता है। इसका मूल कारण मेरी कुटेवकी वजहसे

पैदा हुई कमजोरी और निर्बलता है। मेरा नाम नवजीवन में न छापें। वरके पते पर आया हुआ पत्र मेरे हाथमें नहीं मिल सकेगा इसीलिए नवजीवन द्वारा उत्तर पानेकी आतुरतासे प्रतीक्षा करूंगा।

यह पत्र छापनेमें मुझे संकोच तो हुआ लेकिन अन्तमें मैंने इसे छापनेका निश्चय किया। ऐसे दो-चार पत्र भिन्न भिन्न स्थानोंसे मेरे पास आये हैं। कुछ नौजवान मुझसे इस सम्बन्धमें बातें भी कर गये हैं। इन सब परसे मैं मानता हूं कि ऐसे किस्से बिलकुल असामान्य नहीं हैं। इसलिए उनकी चर्चा करना शायद किसीके लिए कामदायी सिद्ध हो।

इस दुःखी ब्राह्मणने अगर पूरा सत्य लिखा हो तो कहा जायगा कि उसने जान-बूझ कर उस बेचारी बालाको कुएंमें गिराया है। उसने पच्चीस वर्षकी उमरमें विवाह किया। इस उमरमें वह पूरा समझदार बन गया था। उसकी कमजोरी और निर्बलता आजकलकी नहीं है। विवाह करते समय भी वह मौजूद थी। इसलिए उसे झूठी शरम न रखकर अपने बुजुर्गोंको सच्ची स्थिति बता देनी चाहिये थी और विवाहसे इनकार कर देना चाहिये था।

परन्तु गई-गुजरी बातका विचार करनेमें कोई सार नहीं है अगर वह उपाय योजनेमें उपयोगी सिद्ध न हो। मुझे तो लगता है कि हिन्दू कानून भी ऐसे सम्बन्धको विवाह नहीं मानेगा। पुरुषका वेष धारण करके कोई स्त्री दूसरी किसी स्त्रीसे विवाह करे तो वह विवाह नहीं है, और दूसरी स्त्रीको दूसरा विवाह करनेकी पूरी स्वतंत्रता रहती है। इसी प्रकार जो पुरुष विवाहके समय ही किसी कारणसे पुरुषत्वहीन हो, उसका विवाह हुआ है ऐसा कहा ही नहीं जा सकता। इसलिए यह बाला ऐसा मानकर दूसरा विवाह कर सकती है कि उसका विवाह हुआ ही नहीं है। इस ब्राह्मण युवकको अपनी गलती चूपके बिना पाचि और अपने बुजुर्गोंके सामने स्वीकार करके अपनी देखरेखमें उस बालाका विवाह करा देना चाहिये। घरके बड़े-बूढ़े इसका विरोध करें और इसमें रुकावट डालें तो उनका विरोध सहन करके भी इस युवकको अपने धर्मका पालन करना चाहिये और इस बालाको संकटसे बचा लेना चाहिये।

नपुंसकता वगैरा रोगोंको नीमहकीम छिपाते हैं। परन्तु इन्हें छिपानेकी जरूरत नहीं है। बचपनमें बालकोंको जो कुटेव पड़ जाती है उसके लिए वे स्वयं जिम्मेदार नहीं हैं परन्तु उनके माता-पिता जिम्मेदार हैं। माता-पिता उनकी देखभाल न रखें बच्चोंको झूठी शरम करना सिखायें उन्हें अपने मित्र न बनायें और बादको बालक अनजानमें उलटे रास्ते लग जाय तो इसमें दोष बालकोंका नहीं किन्तु केवल बड़े बुजुर्गोंका ही है।

इसलिए बालक समझदार हो जाय तब यदि उसमें नपुंसकता वगैरा दोष हों तो उन्हें हिम्मतके साथ इन दोषोंको प्रकट कर देना चाहिये। समय पर इलाज हो जाय तो ये दोष दूर भी हो सकते हैं। परन्तु यह पत्र लिखनेवाले पतिको पुरुषत्व प्राप्त करनेके प्रयत्नमें रुककर उस बालाको कष्ट देनेकी सलाह भी नहीं दे सकूंगा। इस बालाका दूसरा विवाह करा देनेके बाद उसे अपना इलाज कराना हो तो वह करा सकता है। इसमें भी सावधानी रखना जरूरी है। भस्मकी मात्रायें अर्क या पाक खानेसे किसीको सच्चा पुरुषत्व प्राप्त नहीं होता। इनके सेवनसे मनुष्यको जो कुछ मिलता है वह एक प्रकारका झूठा उत्तेजन ही होता है। पाक खाकर कोई अपने निर्बल मनको बलवान नहीं बना सका है। जिसका पुरुषत्व चला गया है उसके लिए सच्चा उपचार व्यायाम सात्विक भोजन खुली हवा और जल-चिकित्सा ही है। और सबसे पहला प्रयत्न तो कुटेवका त्याग करना है। जल-चिकित्सासे ज्ञानतंतु बलवान बनते हैं और मन शांत होता है। इससे कुटेव भी शिथिल और कमजोर पड़ जाती है।

हो सकता है कि यह बाला किसी तरह दूसरा विवाह करनेको तैयार ही न हो। यदि ऐसी स्थिति हो तो उसे किसी संस्थामें रहकर सेवाधर्म स्वीकार करना चाहिये और शिक्षा ग्रहण करनी चाहिये। सारे दिन यह अच्छी सेवामें और अध्ययनमें लगी रहे तो संभव है उसकी संतानकी लालसा तथा विषय-भोगकी इच्छा शांत हो जाय। दुनियाके सारे बालकोंको यह अपनी संतान क्यों न माने?

परन्तु पहला कदम तो इस दिशामें युवकको उठाना है। वह कदम यह है कि युवक अपनी कमजोरीको दृढ़तासे प्रकट कर दे। ताकते पत्र

यह दलील मुझे जंची नहीं। तो भी उन मित्रोंकी चेतावनीकी मैं अवहेलना नहीं करना चाहता था। इसलिए मैंने पांच आश्रमवासियोंसे इसकी जांच करने और इसके संबंधमें सलाह देनेके लिए कहा। इस प्रश्न पर विचार हो ही रहा था कि बीचमें एक निर्णयात्मक घटना घटी। किसीने मुझे बतलाया कि विश्वविद्यालयका एक तेज विद्यार्थी अकेलेमें एक लड़कीके साथ जो उसके प्रभावमें थी सभी तरहकी आजादीसे काम लेता था और यह दलील दिया करता था कि वह उस लड़कीको सगी बहनकी तरह प्यार करता है और इसीसे कुछ शारीरिक चेष्टाओंका प्रदर्शन किये बिना उससे रहा नहीं जाता। कोई उस पर अपवित्रताका जरा भी आरोपण करता तो वह नाराज हो जाता। वह नवयुवक जो कुछ करता था उन सब बातोंको अगर यहां लिखूं तो पाठक बिना किसी हिचकिचाहटके कह देंगे कि जिस आजादीसे वह काम लेता था उसमें अवश्य ही गन्दी भावना थी। जब मैंने इस सबका पत्र-व्यवहार पढ़ा तब मैं और जिन लोगोंने उसे देखा वे इस नतीजे पर पहुंचे कि या तो वह युवक विद्यार्थी परले सिरेका ढोंगी आदमी है या फिर वह अपने-आपको धोखा दे रहा है।

चाहे जो हो परन्तु इस खोजने मुझे विचारमें डाल दिया। मुझे अपने उन दोनों साथियोंकी दी हुई चेतावनी याद आई और मैंने अपने दिलसे पूछा कि अगर मुझे यह मालूम हो कि वह नवयुवक अपने बचावमें मेरे व्यवहारकी दलील दे रहा है तो मुझे कैसा लगेगा? मैं यहां इतना बतला दूं कि वह लड़की जो इस नवयुवककी चेष्टाओंका शिकार बन गई है उस नवयुवकको सर्वथा पवित्र और भाईके समान मानती है तो भी वह उसकी इन चेष्टाओंको पसन्द नहीं करती उन पर वह आपत्ति भी करती है लेकिन उस बेचारीमें इतनी शक्ति नहीं कि वह उस युवककी आपत्तिजनक चेष्टाओंको रोक सके। इस घटनाके कारण मेरे मनमें जो आत्म-परीक्षण चल रहा था उसका यह परिणाम हुआ कि उस पत्र-व्यवहारको पढ़नेके दो-तीन दिनके अन्दर मैंने अपनी उपर्युक्त प्रथाका परित्याग कर दिया और गत १२ वीं तारीखको वर्धाके आश्रमवासियोंको मैंने अपना यह निश्चय सुना दिया। ऐसी बात नहीं कि यह निर्णय करते समय मुझे बहुत दुःख न हुआ हो। इस प्रथाके बीच या इसके कारण

कभी कोई अपवित्र विचार मेरे मनमें नहीं आया। मेरा आचरण कभी छिपा हुआ नहीं रहा है। मैं मानता हूं कि मेरा आचरण पिताके जैसा रहा है और जिन अनेक लड़कियोंका मैं मार्गदर्शक और अभिभावक रहा हूं उन्होंने अपने मनकी बातें इतने विश्वासके साथ मेरे सामने रखीं जितने विश्वासके साथ वे शायद और किसीके सामने न रखतीं। यद्यपि ऐसे ब्रह्मचर्यमें मेरा विश्वास नहीं है जिसमें स्त्री-पुरुषका परस्पर स्पर्श बचानेके लिए रक्षाकी दीवार बनानेकी जरूरत पड़े और जो जरासे प्रलोभनके आगे भंग हो जाये, तो भी जो स्वतंत्रता मैंने ले रखी है उसके खतरोंसे मैं अनजान नहीं हूं।

इसलिए जिस दोषका मैंने ऊपर जिक्र किया है, उसने मुझे अपनी यह आदत छोड़ देनेके लिए सचेत कर दिया — फिर मेरा लड़कियोंके कंधे पर हाथ रखकर चलनेका व्यवहार चाहे जितना पवित्र रहा हो। मेरे हर एक आचरणको हजारों स्त्री-पुरुष खूब सूक्ष्मतासे देखते हैं, क्योंकि मैं जो प्रयोग कर रहा हूं उसमें सतत जागरूक रहनेकी आवश्यकता है। मुझे ऐसे काम नहीं करने चाहिये जिनका बचाव मुझे दलीलोंके सहारे करना पड़े। मेरे उदाहरणके पीछे यह भावना कभी नहीं थी कि उसका चाहे जो पुरुष अनुसरण करने लग जाय। इस नवयुवकका मामला एक चेतावनीके रूपमें सामने आया और उससे मैं सावधान हो गया। मैंने इस आशामें यह निश्चय किया है कि मेरा यह त्याग उन लोगोंको सही रास्ता बता देगा, जिन्होंने या तो मेरे उदाहरणसे प्रभावित होकर या उसे जाने बिना गलती की है। निर्दोष युवावस्था एक अनमोल निधि है। क्षणिक

प्रभुकृपा बिना सब मिथ्या है

डॉक्टरोंकी और अपने-आप मेरे डॉक्टर बननेवाले सरदार वल्लभभाई तथा राजकुमारी अमृतकौरकी कृपासे मैं फिर पाठकोंके सम्पर्कमें आने योग्य हो गया हूं, हालांकि यह है केवल परीक्षणके तौर पर और एक निश्चित सीमा तक ही। इन लोगोंने मेरी स्वतंत्रता पर यह बंधन लगा दिया है और मैंने उसे स्वीकार भी कर लिया है कि फिलहाल मैं 'हरिजन' में उससे अधिक किसी हालतमें नहीं लिखूंगा जो कि मुझे बहुत जरूरी मालूम पड़े और वह भी इतना ही कि जिसके लिखनेमें प्रति सप्ताह कुछ घंटेसे अधिक समय न लगे। सिवा उन मामलोंके जिनके साथ मैंने अभीसे लिखा-पढ़ी शुरू कर दी है और किसीकी निजी समस्याओं या घरेलू कठिनाइयोंके बारेमें मैं निजी पत्र-व्यवहार नहीं करूंगा और न तो मैं किसी सार्वजनिक कार्यक्रमको स्वीकार करूंगा न किसी सार्वजनिक सभामें भाषण दूंगा या उपस्थित ही होऊंगा। खाने, मनोरंजन, व्यायाम और आरामके नियमन भी निश्चित रूपसे निर्दिष्ट कर दिये गये हैं। लेकिन उनके बतानेकी कोई जरूरत नहीं, क्योंकि उनसे पाठकोंका कोई संबंध नहीं है। मुझे आशा है कि इन हिदायतोंका पालन करनेमें 'हरिजन' के पाठक तथा संवाददाता मेरे और महादेवभाईके साथ जिनके जिम्मे सारा पत्र-व्यवहार निबटानेका काम होगा पूरा सहयोग करेंगे।

मेरी बीमारीके मूल और उसके लिए किये जानेवाले उपायोंकी कुछ बातें पाठकोंके लिए अवश्य दिलचस्प होंगी। जहां तक मैं जान सका डॉक्टरोंने समझा है, मेरे शरीरकी बहुत सावधानी और परिश्रमके साथ निरीक्षण करने पर भी उन्हें मेरे शारीरिक अवयवोंमें कोई खराबी नहीं मिली। उनकी रायमें समुचित पौष्टिक तत्त्वों (प्रोटीन) और उष्णता उत्पन्न करनेवाले तत्त्वों (कार्बोहाइड्रेट्स) की कमीसे और अन्य दिनोंमें अपने [illegible] सार्वजनिक कामकाजके अलावा व्यापार लम्बे समय तक परेशान कर डालनेवाली विविध निजी समस्याओंमें उलझा रहनेसे यह बीमारी

हुई थी। जहां तक मुझे याद आता है पिछले बारह महीनों या इससे भी अधिक समयसे मैं इस बातको बराबर कहता आ रहा था कि लगातार बढ़ते जानेवाले कामकी मात्रामें अगर कमी न हुई तो मेरा बीमार पड़ जाना निश्चित है। इसलिए जब बीमारी आई तो मेरे लिए वह आश्चर्यकी बात नहीं थी। और बहुत संभव है कि दुनियामें मेरी बीमारीका इतना ढिंढोरा भी नहीं पिटता अगर एक मित्रने मेरे स्वास्थ्यको गिरता देखकर आवश्यकतासे अधिक चिन्तित हो जानेकी वजहसे जमनालालजीको एक घबराहटभरा पत्र न भेज दिया होता। बस जमनालालजीने यह खबर पाते ही उन सब होशियार डॉक्टरोंको बुलाया लिया जो कि वर्धामें मिल सकते थे और विशेष सहायताके लिए नागपुर और बम्बई भी खबर भेज दी।

जिस दिन मेरी तबीयत बिगड़ी उस दिन सवेरे ही मुझे उसकी चेतावनी मिल गई थी। जैसे ही मैं सोकर उठा मुझे अपनी गर्दनके पास एक खास तरहका दर्द मालूम पड़ा लेकिन मैंने उस पर ज्यादा ध्यान नहीं दिया और किसीसे कुछ नहीं कहा। दिनभर मैं अपना काम करता रहा। शामको हवाखोरीके वक्त मुझे एक मित्रके साथ बहुत गंभीर और थकानेवाली बातचीत करनी पड़ी। इससे मेरी तबीयत बिगड़ी। मेरे स्नायुओं पर इससे पहलेके पखवाड़ेमें ऐसी समस्याओं पर सोच-विचार करने और उनका हल ढूंढनेमें काफी जोर पड़ा था जो मेरे लिए स्वराज्यके सर्व-प्रधान प्रश्नकी ही तरह महत्त्वपूर्ण थीं।

मेरी बीमारीको अगर इतना तूल न दिया गया होता तो भी जो निश्चित चेतावनी प्रकृति मुझे दे रही थी उस पर मैंने ध्यान दिया होता और अपनेको थोड़ा आराम देकर मैंने इस कठिनाईको हल करनेकी कोशिश की होती। लेकिन अतीत पर नजर डालनेसे मुझे ऐसा लगता है कि जो कुछ हुआ वह ठीक ही हुआ। डॉक्टर मित्रोंने जो असाधारण सावधानी रखनेकी सलाह दी और उन्हींके समान असाधारण रूपसे उक्त दोनों डॉक्टरोंने मेरी जो देखभाल रखी उसके कारण मजबूरन मुझे आराम करना पड़ा। वैसे तो मैं इतना आराम कभी न करता। इस आराममें मुझे आत्म-निरीक्षणका काफी समय मिल गया। इसलिए इससे मुझे केवल

स्वास्थ्यका नाश ही नहीं हुआ, बल्कि आत्म-निरीक्षणसे मुझे यह भी मालूम हुआ कि गीताका जो अर्थ मैं समझा हूं उसका पालन करनेमें मैं कितनी बड़ी गलती कर रहा हूं। मुझे पता चला कि जो विविध समस्याएं मेरे सामने उपस्थित हुईं उन पर अनासक्त भावसे मैंने विचार नहीं किया। यह स्पष्ट है कि उनमें से अनेकने मेरे हृदय पर असर डाला है और मैंने उन्हें भीतरकी भावनाओंको जाग्रत करके अपने स्नायुओं पर जोर डालने दिया है। दूसरे शब्दोंमें कहूं तो गीताके भक्तको उसके प्रति जैसा अनासक्त रहना चाहिये वैसा मेरा मन या शरीर नहीं रहा है। सचमुच मेरा यह विश्वास है कि जो व्यक्ति शाश्वत प्रकृति माताके आदेशका पूर्णतः अनुसरण करता है उसके मनमें बुढ़ापेका भाव कभी आना ही नहीं चाहिये। ऐसा व्यक्ति तो मनमें अपनेको सदा तरोताजा और जीवनवान ही मालूम करेगा और जब उसके मरनेका समय आयेगा तब उसका शरीर उसी तरह गिर जायगा जैसे किसी मजबूत वृक्षके पके हुए पत्ते गिर जाते हैं। भीष्म पितामहने मृत्युशय्या पर पड़े हुए भी युधिष्ठिरको जो अलौकिक उपदेश दिया उसके पीछे मेरे मनमें यही दृश्य है। डॉक्टर लोग मुझे यह चेतावनी देते हुए कभी नहीं थकते थे कि हमारे आसपास जो घटनाएं घट रही हैं उनसे मुझे उत्तेजित बिलकुल नहीं होना चाहिये। कोई दुःखद या उत्तेजक घटना अथवा समाचार मेरे सामने न आये इसका भी खास तौर पर सावधानी रखी गई। वे लोग मुझे जितना अधिक गीताभक्त मानते थे उतना अधिक तो मैं नहीं था फिर भी उनकी सावधानी और सूचनाओंके पीछे सार अवश्य था। मगनवाड़ीसे महिलाश्रम जानेकी अमतुस्सलामबीकी बात और उसकी शर्तें मैंने कितनी अनिच्छासे कबूल की थीं यह मुझे मालूम है। पर मैं क्या करूं? अगर यह विश्वास नहीं रहा कि अनासक्त भावसे मैं कोई काम कर सकता हूं। मेरा बीमार पड़ जाना इसके लिए इस बातका बड़ा भारी प्रमाण था कि अनासक्तिकी मेरी जो शक्ति है वह थोड़ी है। और इसमें मुझे अपना दोष स्वीकार करना ही पड़ता।

लेकिन अभी सबसे बुरी बात तो होनी बाकी थी। सन् १८   में मैं खाट पकड़ कर और निरन्तर साथ ब्रह्मचर्यका पालन करनेकी शक्तिका

करता रहा हूं। मेरी ब्रह्मचर्यकी व्याख्याके अनुसार इसमें न केवल शरीर बल्कि मन और वचनकी शुद्धता भी शामिल है। और सिवा उस अपवाद जिसे कि मानसिक स्खलन कहना चाहिये अपने ३६ वर्षसे अधिक सम सतत एवं जागरूक प्रयत्नके बीच मुझे याद नहीं पड़ता कि कभी मेरे मनमें इस संबंधमें ऐसी बेचैनी पैदा हुई हो जैसी इस बीमारी समय मुझे महसूस हुई। यहां तक कि मुझे अपनेसे निराशा होने लगी लेकिन जैसे ही मेरे मनमें विकारकी भावना उठी मने अपने साथियों डॉक्टरोंको उससे अवगत कर दिया लेकिन वे इसमें मेरी कोई मदद नहीं सके। मैंने उनसे आशा भी नहीं की थी। अलबत्ता इस अनुभवके बाद उस आराममें कमी कर दी जो कि मुझ पर जबरन् लादा गया अपने इस बुरे अनुभवको स्वीकार कर लेनेसे मुझे बड़ी शांति मिली। ऐसा प्रतीत हुआ मानों मेरे ऊपरसे बड़ा भारी बोझ हट गया और हानि हो सकनेसे पहले ही मैं समझ गया। लेकिन गीताका उपदेश स्पष्ट और निश्चित है। जिसका मन एक बार ईश्वरमें लग जाय कोई पाप नहीं कर सकता। मैं उस ईश्वरसे कितना दूर हूं मई केवल वही जानता है। ईश्वरको धन्यवाद है कि अपने महात्मापन भ्रमितसे मैं कभी धोखेमें नहीं पड़ा हूं। लेकिन इस जबरदस्तीके विश्राम मुझे इतना विनम्र बना दिया है जितना मैं पहले कभी नहीं था। इ अपनी मर्यादाएं और अपूर्णताएं भलीभांति मेरे सामने आ गई हैं। लेकि उनके लिए मैं उतना लज्जित नहीं हूं जितना कि सर्व-साधारणसे उन छिपानेमें मुझे होना चाहिये। गीताके संदेशमें सदाकी तरह आज भी मै वैसा ही विश्वास है। उस विश्वासको ऐसे सुन्दर रूपमें परिणत कर लिए जिससे पतनका अनुभव ही न हो निरन्तर अथक प्रयत्नकी आ श्यकता है। लेकिन उसी गीतामें असंदिग्ध रूपसे यह भी कहा गया कि ईश्वरीय अनुग्रहके बिना यह स्थिति प्राप्त नहीं हो सकती। भगवानने अनुग्रहकी यह शर्त न रखी होती, तो मनुष्यका सिर फि जाता और उसके अभिमानकी कोई सीमा ही न रहती।

हरिजनसेवक २९–२–३६

५५
मेरा जीवन

मीचेकी बात बॉम्बे क्रॉनिकल पत्रमें उसके अलाहाबाद स्थित पत्र-प्रतिनिधिकी ओरसे प्रकट हुई है

बिटनकी लोकसभामें गांधीजीके बारेमें जो बातें फैल रही है उनके विषयमें चौंकानेवाली तफसील प्रकाशमें आई है। कहा जाता है कि ब्रिटिश इतिहासकार मि. एडवर्ड टॉम्पसनने जो कुछ दिन पूर्व अलाहाबाद आए थे इंग्लैण्डमें पाई जानेवाली विचित्र मनोवृत्ति पर थोड़ा प्रकाश डाला था। कहा जाता है कि मि. टॉम्पसनने जिन्होंने इस देशके कुछ राजनीतिक नेताओंसे मुलाकात की थी नेताओंके साथ हुई उनकी बातचीतमें गांधीजीके विषयमें ब्रिटिश लोकसभामें फैल रही तीन बातोंका उल्लेख किया

१ गांधीजी ब्रिटिश सरकारके साथ किसी शर्तके बिना सहयोग करनेके पक्षमें है।

२ गांधीजी अभी भी कांग्रेस पर अपना प्रभाव डाल सकते हैं।

३ तीसरी बात है गांधीजीके वासनामय जीवनसे संबंधित विभिन्न बातोंका फैलना। इसके फलस्वरूप बड़ा लोगों पर ऐसा असर डाला जाता है कि गांधीजी कामी पुरुष हैं और संत पुरुष नहीं रह गये हैं।

मि. टॉम्पसनके बताये अनुसार गांधीजीके वासनामय जीवन की छाप कुछ मराठी पत्रोंके आधार पर पड़ी है। मेरी जानकारीके अनुसार मि. टॉम्पसनने सर तेजबहादुर सप्रूके सामने यह बात कही थी। सर सप्रूने इसे बिलकुल झूठा बताया। पंडित जवाहरलाल नेहरू तथा सर पी. एन. सप्रूसे भी मि. टॉम्पसनने यह बात कही थी और उन दोनोंने भी इस बातका कड़ा विरोध किया था।

ऐसा लगता है कि मि. टॉम्पसन इंग्लैण्डसे रवाना होनेके पूर्व लोकसभाके कुछ सदस्योंसे मिले थे। भारतवर्ष छोड़नेसे पहले मि. टॉम्पसनने पंडित नेहरूकी सूचनासे पार्लमेन्टके सदस्य मि. पीमबूडको पत्र लिखकर इस बातकी ओर उनका ध्यान खींचा था कि गांधीजीके संबंधमें ऊपरकी बातें सर्वथा निराधार हैं।

मि. टॉम्पसन सेगांव भी आये थे। उन्होंने 'क्रॉनिकल' में प्रकट हुई ऊपरकी खबरको झूठ बताया था।

१. ब्रिटिश सरकारके साथ बिना शर्त सहयोग करनेके विषयमें मैंने एक स्वतंत्र टिप्पणी लिखी है।

२. कांग्रेस पर मेरा कितना प्रभाव है इसका पता देशको कुछ ही समयमें लग जायगा।

३. तीसरे आरोपका स्पष्टीकरण करना आवश्यक है। दो दिन पूर्व चार-पांच गुजराती भाइयोंके हस्ताक्षरवाला एक पत्र मुझे मिला था। उसके साथ उन्होंने एक अखबार भी भेजा था। उस अखबारका काम इतना ही मालूम होता है कि किसी व्यक्तिको जितने काले रूपमें चित्रित किया जा सकता है उतने काले रूपमें मुझे चित्रित करना। यह अखबार उसके सिर पर छपी पंक्तिके अनुसार 'हिन्दुओंके संगठन' के लिए निकाला जाता है। मेरे खिलाफ लगाये गये आरोप अधिकतर मेरे इकरारोंको संदर्भसे तोड़-मरोड़ कर मुझ पर लगाये गये हैं। अन्य अनेक आरोपोंमें यह आरोप सबसे ज्यादा ध्यान खींचनेवाला है कि मैं कामी पुरुष हूँ। मेरा ब्रह्मचर्य मेरी काम-वासनाको छिपानेका एक साधनमात्र है, ऐसा उसमें कहा गया है। बेचारी डॉ. सुशीला नय्यरको आम जनताकी नजरमें नीचे गिरानेका प्रयत्न किया गया है क्योंकि यह बहन मेरी मालिश करती है और मुझे डाक्टरी स्नान कराती है। मेरे आसपासके लोगोंमें यही बहन इन दो कामोंका सबसे अधिक ज्ञान रखती है। जिज्ञासुओंकी जानकारीके लिए मैं यह कहता हूँ कि ये दोनों क्रियायें किसी भी तरह एकान्तमें नहीं होतीं। उनमें डेढ़ घंटेसे अधिक समय लगता है और इस बीच मैं बहुत बार सो भी जाता हूँ। परन्तु बहुत बार मैं महादेव, प्यारेलाल या अन्य साथियोंसे उस समय काम भी

जहां तक म जानता हूं ये आरोप पहले-पहल अस्पृश्यताके खिलाफ मेरे सक्रिय आन्दोलनके समयसे लगाये जाने लगे हैं। कांग्रेसके कार्यक्रममें अस्पृश्यता-निवारणको स्थान मिला और मैं इस सबंधमें समाजें करनेके लिए घूमने लगा तबकी बात है। मेरा यह आग्रह रहता था कि आश्रममें तथा सभाओंमें हरिजन होने ही चाहिए। जो सनातनी मेरी मदद करने आये थे और मेरे मित्र बन गये थे उन्होंने उस समयसे मेरा साथ छोड़ा और मेरी निन्दा शुरू की। कुछ समय बाद एक बहुत ऊंचे दरजेके अंग्रेजने भी इसमें अपना सुर मिलाया। जिस स्वतंत्रतासे मैं स्त्रियोंके साथ मिलता जुलता हूं उसे उन्होंने पकड़ लिया और इस चीजको मेरी पाप-वासनाके प्रभावके रूपमें फैलाकर मेरे सतपन का भंडाफोड़ कर दिया। इस निन्दा यज्ञम एक-दो प्रसिद्ध हिन्दुस्तानी भी सम्मिलित थे। गोलमेज परिषदके समय अमरीकी पत्रवालोंने मेरे निष्ठुर रुचिचित्र छापे। मेरी देखरेख रखनेवाली मीराबहन उनके हमलोंकी शिकार बनी। जहां तक मने समझा है मि टॉम्पसन इन आरोपोंके पीछे रहे हुए व्यक्तियोंको पहचानते हैं। प्रेमाबहन कटकको जो साबरमती आश्रमकी एक सदस्या है मने जो पत्र लिखे हैं उन पत्रोंको भी मेरी हीनता साबित करनेके लिए उद्धृत किया जाता है। वह बहन बम्बई युनिवर्सिटीकी ग्रेजुएट है और अनुभवी सेवा सेविका है। वह ब्रह्मचर्य तथा अन्य विषयों पर पत्र लिखकर मुझसे प्रश्न पूछती थी। मैंने उस विस्तारसे उत्तर लिखे थे। बादमे उस बहनको लगा कि इन पत्रोंसे जनताका लाभ होगा। इसलिए मेरी इजाजत लेकर वे पत्र उसने प्रकाशित किये। इन पत्रोंको मैं सर्वथा निर्दोष और शुद्ध मानता हूं।

आज तक इन आरोपोंकी मैंन उपेक्षा की है। परन्तु मि टॉम्पसनकी इस संबंधकी बातें मैंने सुनी हैं तथा मुझे पत्र लिखनेवाले गुजराती भाइयोंने मुझसे कहा है कि मेरे खिलाफ लगाया हुआ जो आरोप उन्हान भजा है वह इस प्रकारके लेखोंका केवल एक नमूना है जिसका विरोध मुझ करना ही चाहिये। उनकी विनतीको देखते हुए मुझ यह प्रत्युत्तर लिखना पड़ रहा है। अपने जीवनमें मुझ न मदद रखनेवाली एक भी बात मैंने गुप्त नहीं रखी है। अपनी कमजोरियां मैंने लुके आम समय

सबके सामने स्वीकार की है। मेरा विश्वास है कि यदि वासना मुझे जीते तो वैसा स्वीकार करनेकी हिम्मत मुझमें है। जब अपनी पत्नीके साथ भी वासना-तृप्ति करनेमें मुझे घृणाका अनुभव होने लगा और इस संबंधमें मैंने अपनी पूरी परीक्षा भी कर ली तभी १९०६ में मैंने ब्रह्मचर्यका व्रत लिया। और यह व्रत मैंने अपने भीतर देशकी सेवाके लिए अधिक शक्ति तथा अधिक निष्ठा बढ़ानेके लिए लिया। उसी दिनसे मेरे खुले जीवनका आरम्भ हुआ। उसके बाद 'यंग इंडिया' और 'नवजीवन' के लेखोंमें वर्णित प्रसंगोंके सिवा मेरी अपनी पत्नीके साथ या अन्य स्त्रीके साथ किसी भी समय बंद कमरेमें रहने अथवा सोनेकी बात मुझे याद नहीं है। मेरे लिए वे कालरात्रियाँ थीं परन्तु मैं बार बार कह चुका हूँ कि मेरी अपनी कुप्रवृत्ति होनेके बावजूद ईश्वरने मुझे उबार लिया है। अपने किसी भी गुणके लिए यश पानेका मेरा दावा नहीं है। ईश्वर ही मेरे सब गुणोंका दाता है और उसीने मुझे उसकी सेवाके लिए कुमार्गसे उबार लिया है।

जिस दिनसे मेरा ब्रह्मचर्य आरंभ हुआ उसी दिनसे हम दोनों पति-पत्नीके सच्चे स्वातन्त्र्यका आरम्भ हुआ है। मेरी पत्नी उसके प्रभु और स्वामीके रूपमें मेरी सत्तासे मुक्त होकर स्वतंत्र बनी और मैं अपनी उस वासनाकी गुलामीसे मुक्त हुआ जो मेरी पत्नीको तृप्त करनी पड़ती थी। अपनी पत्नीके प्रति मेरा जो आकर्षण था वैसा आकर्षण उस अर्थमें दूसरी किसी भी स्त्रीके प्रति कभी नहीं रहा। पतिके रूपमें अपनी पत्नीके प्रति तथा अपनी माताके सामने की हुई प्रतिज्ञाके प्रति मैं इतना वफादार था कि दूसरी किसी स्त्रीकी गुलामी मैं कर ही नहीं सकता था। परन्तु जिस प्रकार मुझमें ब्रह्मचर्यका विकास हुआ उसने मुझे स्त्रीको जगत्की माताके रूपमें देखना सिखाया और इसलिए मैं अनिवार्य रूपमें स्त्री जातिके प्रति आकर्षित हुआ। मेरी दृष्टिमें स्त्री इतनी पवित्र और पावन बन गई कि उसकी ओर मैं वासनाकी नजरसे देख ही नहीं सकता था। इस प्रकार प्रत्येक स्त्री मेरी बहन या पुत्री जैसी बन गई। फिनिक्स आश्रममें भी मेरे आसपास अनेक स्त्रियाँ थीं। बहुतसी तो मेरी रिश्तेदार होती थीं जिन्हें और जिनके परिवारवालोंको ललचाकर मैंने दक्षिण अफ्रीका खींचा था। दूसरी मेरे साथियोंकी पत्नियाँ या उनकी रिश्तेदार

थी। इन्हींमें मि० वेस्टका परिवार तथा दूसरे अंग्रेज परिवार थे। मि० वेस्टके परिवारमें उनकी बहन कुमारी वेस्ट, उनकी पत्नी और उनकी सास थी। यह सास हमारी छोटीसी बस्तीकी दादीमां थीं।

मेरे स्वभावके अनुसार जो भी अच्छी वस्तु मैं प्राप्त करता था उसे मैं अपने ही पास नहीं रख सकता था। इसलिए अपने ब्रह्मचर्यकी बात मैंने फिनिक्स आश्रमके सब लोगोंके सामने स्वीकृतिके लिए रखी। सबने उसे पसंद किया। कुछ लोगोंने उसे स्वीकार किया और निष्ठापूर्वक उस आदर्शका पालन किया। मेरे ब्रह्मचर्यमें उसके पालनसे संबंध रखनेवाले पुराने सनातनी नियमों जैसी कोई बात नहीं थी। जैसे जैसे मुझे जरूरत महसूस होती गई वैसे वैसे मैं अपने नियम स्वयं बनाता गया। परन्तु किसी भी दिन मैंने यह नहीं माना कि ब्रह्मचर्यके पालनके लिए स्त्री जातिके साथ जरा भी संपर्क नहीं रखना चाहिये। ब्रह्मचर्यके पालनके लिए स्त्री-पुरुषके निर्दोषसे निर्दोष संपर्कका भी त्याग करनेकी बात कहनेवाला नियम तो बलात्कारपूर्वक लादा हुआ विकास है और उसकी कोई भी कीमत या सच्ची कीमत नहीं है। इस कारणसे सेवाकार्यके सबंधमें दोनोंका जो स्वाभाविक संपर्क होता है उसे मैं कभी रोकता नहीं। इसका परिणाम यह हुआ कि दक्षिण अफ्रीकामें कितनी ही यूरोपियन और हिन्दुस्तानी बहनें विश्वासपूर्वक मुझे अपने आन्तरिक जीवनकी बातें कह देती थीं। और जब दक्षिण अफ्रीकामें हिन्दुस्तानी बहनोंसे सत्याग्रहमें शरीक होनेकी अपील की गई, तब मुझे ऐसा लगा मानो मैं उन्हींमें से एक हूं। उस समय मुझे पहले-पहल इस बातका भान हुआ कि मुझमें स्त्री-जातिकी सेवा करनेकी विशेष योग्यता है। इस बातको (जिसे मैं रसप्रद मानता हूं) संक्षेपमें कहूं तो भारतमें लौटनेके बाद हिन्दुस्तानकी स्त्रियोंमें भी उतनी ही आत्मीयतासे घुलने-मिलनेमें मुझे देर नहीं लगी। जिस स्वाभाविकतासे मैंने उनके हृदयका विश्वास और आस्था प्राप्त की वह मेरे लिए आनन्द और आश्चर्यका विषय था। मुसलमान बहनोंने भी दक्षिण अफ्रीकाकी तरह हिन्दुस्तानमें भी मुझसे परदा नहीं रखा। आश्रममें मैं जहां सोता हूं वहां मेरे आसपास सब जगह स्त्रियां सोती हैं, क्योंकि वे मेरे समीप अपनेको

हर तरहसे सुरक्षित मानती है। पाठकोंको यह बात याद रखनी चाहिये कि सत्याग्रह आश्रममें एकान्त जैसी कोई चीज होती ही नहीं।

यदि इस उमरमें भी स्त्रियोंके प्रति मेरे भीतर काम-वासना जाग्रत हो, तो एकसे अधिक पत्नी करनेकी हिम्मत मुझमें है। मैं छिपे या खुले स्वेच्छाचारमें विश्वास नहीं रखता। स्वेच्छाचार मेरी दृष्टिमें कुत्तेका आचार है। छिपे प्रेममें तो ऐसे आचारके सिवा नामर्दी भी है।

संभव है सनातनी हिन्दुओंके मनमें मेरी अहिंसाके लिए घृणा उत्पन्न हो। मैं इसे जानता हूं कि उनमें से बहुतोंको ऐसा लगता है कि मेरे प्रभावमें आकर हिन्दू लोग नामर्द और कायर बन जायेंगे। लेकिन मेरे प्रभावमें कोई मनुष्य कायर बना हो ऐसा एक भी उदाहरण मैं नहीं जानता। मेरी अहिंसाकी वे चाहें उतनी निन्दा कर सकते हैं, परन्तु मेरे विषयमें सफेद झूठको फैला कर तो वे अपनी और हिन्दू धर्मकी कुसेवा ही करते हैं।

हरिजनबन्धु, ५-११-३९

५६

मेरा धर्म

अपने पुत्र और पुत्रवधूके व्यवहारसे बहुत दुःखी होकर एक पिता लिखते हैं:

> पिछले नवजीवन में आपने यह बताया है कि नौजवानोंको किन परिस्थितियोंमें माता-पिताके प्रति सविनय आज्ञाभंग करना चाहिये। इसके बारेमें मेरी विनती यह है कि आपकी सलाह ठीक है परन्तु नवयुवक इसका मर्म अच्छी तरह समझकर काम नहीं करते। उन्हें इतना ज्ञान ही नहीं होता। इसलिए वे सविनय शब्दको छोड़कर केवल आज्ञाभंग शब्दका ही उपयोग आवश्यकतासे बहुत करते हैं। शिष्ट वर्गमें ऐसी चर्चा होती है कि आप जाने अनजाने नादान युवकोंमें अविवेक उत्पन्न करते हैं। एक बार मैं एक बड़े परिवारवाले भले गृहस्थके यहां परिषदके सदस्य बनानेके लिए

गया तब उन्होंने कहा मैं तो गांधीजीके आन्दोलनसे शौक कर दूर भागता हूं। वह नौजवानोंको उद्धत बना देता है। मैं जहां भी देखता हूं लड़का अपने पिताकी बात नहीं मानता। घर-घरमें फूट पैदा हो गई है। इसलिए मैं अपने परिवारमें से किसीको उस आन्दोलनमें भाग लेनेकी इजाजत ही नहीं देता। प्रभुकृपासे अभी मेरे परिवारमें एकता कायम है। अपने पिताकी आज्ञाका मैं कभी उल्लंघन नहीं करता न मेरी आज्ञाका मेरे बच्चे कभी उल्लंघन करते। ऐसे वातावरणको छोड़कर तुम्हारे साथ लड़कोंको भेजू तो मेरी भी तुम्हारे जैसी ही स्थिति हो जाय। यह बात सुनकर मुझे अपना ताजा आघात याद आया और मैं विचारमें पड़ गया।

जो मैंने हाथसे खो दिया है। लेकिन इसके लिए आपको दोष देना वृथा है। इसके लिए मेरे सबकी मुझे दोषी मानते है। क्योंकि मैं सदा आपका और आपके आश्रमका गुणगान किया करता था। और, वे तो जतो भ्रष्ट ततो भ्रष्ट हो गये हैं। प्रभु उन्हे सद्बुद्धि दे।

परन्तु आपसे मेरी प्रार्थना है कि आप कोमल मस्तिष्कवाले इन युवकोंमें जहर न उड़ेलें। आप स्वयं तो इन्हें अमृत ही पिलाते हैं परन्तु ग्रहण करनेवालोंमें योग्यता न होनेके कारण आपका पिलाया हुआ अमृत भी जहर बन जाता है। आप जिस प्रकार ग्रहण करनेवालोंका भेद किये बिना उच्च ज्ञान सारी दुनियाके सामने रखते हैं उस प्रकार हमारे प्राचीन ऋषि-मुनि नहीं रखते थे। वे बहुत समय तक शिष्यवृत्ति करनेवालोंको उनकी योग्यताके अनुसार ही ज्ञान देते थे। आप सारी दुनियाको अपने पत्र द्वारा एकदम सुधारनेका प्रयत्न करते हैं। परन्तु इसमें आपको सफलता नहीं मिलेगी इसका आश्रमके अपने सदाके अनुभवसे आपको जरूर पता चल गया होगा।

प्रत्येक मनुष्य जल्दी ही ईश्वरीय मायासे पार हो जाता है ऐसा मानकर यदि हर आदमी ब्रह्मचारी और अपरिग्रही बन जाय तब तो फिर कहना ही क्या ? परन्तु हर मनुष्यके बारेमें ऐसा नहीं

होगा। अनेक जन्मोंके संस्कारोंसे ही आप महात्मा बने हैं। हर मनुष्य महात्मा नहीं बन सकता। दूसरे जो आपके जैसे बननेका प्रयत्न करते हैं वे अपने योगबलका विचार किये बिना ही ऐसा करते हैं और अंतमें पीछे हट जाते हैं।

आप हर बड़ी उमरकी लड़की अथवा स्त्रीकी माता बननेका प्रयत्न करते हैं। आपको देखकर दूसरे लोग भी ऐसा करनेके लिए प्रेरित होते हैं और बादमें विषयांध बनकर दुराचारमें फंसते हैं। मेरी प्रार्थना यह है कि ऐसे प्रयोग भी आपको नहीं करने चाहिये। लकड़ीकी पुतली भी मनुष्यको विकारोंमें फंसा देती है तो फिर पराई स्त्रियोंके कंधे पर हाथ रखकर घूमना और उनका चाहे जैसा स्पर्श करना मनुष्यको अधःपतनके मार्ग पर ले जानेवाला नहीं होगा? क्या ऐसा करके आप दुनियाको यह बताना चाहते हैं कि आपने योगबल अधिक प्राप्त किया है? मान लें कि आपको योगाभ्यास अच्छी तरह सिद्ध हुआ होगा, परन्तु सारी दुनियाको यह इस तरह सिद्ध नहीं हो सकता। आज दुनिया आपके वचनकी अपेक्षा आपके कार्योंको देखती और उनके अनुसार आचरण करनेके लिए प्रेरित होती है और बिना विचारे आपका अनुकरण भी करने लग जाती है। इसके फलस्वरूप दुनियामें बुद्धिभेद उत्पन्न होता है और यह युवकोंके जीवन बिगाड़ती है, सत्याग्रहके बदले अधःपात पैदा करती है।

माता-पिताका रूप धरके आप लड़के-लड़कियोंको क्या सीख बताते हैं? माता-पिताकी दुनियामें किसीके साथ तुलना नहीं हो सकती। एक ही नहीं पच्चीस मातायें इकट्ठी हो जायें तो भी वे माता-पिताकी तुलनामें खड़ी नहीं हो सकतीं। पुत्र अपनी चमड़ी उतार कर माता-पिताके लिए जूते सिलवा दे तो भी वह माता-पिताके ऋणसे उऋण नहीं हो सकता। और माता-पिताकी आज्ञाको तोड़कर तथा [illegible] उन्नति का [illegible] सहा कर जो पुत्र उन्नतिकी खोजमें लगता है, उसकी अवनति ही संभव होती है। [illegible] करते सबक नौजवान आज गांधीजी जैसा बनना चाहते हैं, गांधीजी जैसा रहते हैं, जो [illegible] आपका अनुकरण करते हैं। इसलिए कृपा करके आप

नौजवानोंको अच्छे मार्ग पर लगाइये वरना दुनिया अधोगतिको पहुंच जायगी।

आश्रममें स्त्रियों और पुरुषोंके निवास अलग अलग होने चाहिये। कोई किसीके सम्पर्कमें न आये ऐसी व्यवस्था होनी चाहिये। दोनोंके कार्य बिलकुल अलग होने चाहिये। एक-दूसरेका हाथ पकड़नेमें ही स्वराज्य मानना आकाश-कुसुमके जैसा है। यह स्वतंत्रता नहीं परन्तु स्वच्छन्दता है। ब्रह्मचर्य और अपरिग्रहके व्रत मनुष्यकी योग्यताकी जांच करके ही दिलाने चाहिये। ४ वर्षसे ऊपरके लोग ही व्रतधारी होने चाहिये। भले कोई स्त्री और पुरुष पति-पत्नी हों तो भी दोनोंको व्रतधारी बन जानेके बाद एक कमरेमें साथ नहीं रहना चाहिये। एकान्तमें किसीको भी नहीं रहना चाहिये। अब्रह्मचारियोंको भी आश्रममें स्थान मिलना चाहिये। परन्तु वह ब्रह्मचारियोंसे अलग होना चाहिये।

इन पत्रलेखकको मैं अच्छी तरह जानता हूं। वे एक प्रतिष्ठित गृहस्थ हैं। उनकी अनुमतिसे उनके पुत्र और पुत्रवधू कुछ समय तक आश्रममें मेरे साथ रह गये हैं। मुझे उन दम्पतीका मीठा अनुभव हुआ है। दोनों पति पत्नी संयमी हैं, शांत प्रकृतिके हैं, विनयशील हैं और अपने गुरुजनोंकी आज्ञा और मर्यादा पालनेके लिए उत्सुक रहते हैं। दोनोंने सादगीको जीवनमें स्थान दिया है। दोनों बड़ी उमरके हैं। पुत्र अपनी आजीविका स्वयं चलाता है। पुत्रवधूको कपड़ों और गहनोंका शौक नहीं है। उसने परदा छोड़ दिया है। जातिके कुछ कुरिवाजोंको भी छोड़ दिया है। इनमें से कुछ बातें पिताको पसंद नहीं आईं। इसलिए वे दुःखी होते हैं और यह मानते हैं कि मेरे संगके कारण दोनों जन माता-पिताकी आज्ञाका भंग करते हैं।

इसी दुःखमें से ऊपरके पत्रकी उत्पत्ति हुई है। पिताके दुःखको मैं समझता हूं परन्तु अपने बरतावके लिए मुझे कोई पश्चात्ताप नहीं है। मुझे लगता है कि पुत्र और उसकी पत्नीका व्यवहार योग्य था और योग्य है। माता-पिता अपने बड़े लड़कोंको अपने जैसे ही बनानेका आग्रह रखें तो आजके जमानेमें यह बात चल नहीं सकती। स्वतंत्रताके इस युगमें

माता-पिताको ऐसा बोझ छोड़ देना चाहिये। हमारे शास्त्र भी कहते हैं कि सोलह वर्षके पुत्रको मित्रके समान मानना चाहिये।

मुझे लगता है कि जिस प्रकार पुत्रको अपनी मर्यादाका पालन करना चाहिये उसी प्रकार पिताको भी अपनी प्रभुताकी वृत्ति पर अंकुश रखना चाहिये। पुत्र विनयी रहे, सेवाके समय सेवा करे और माता-पिताके अशक्त हो जाने पर उनका पालन-पोषण करे तो इतनेसे पिताको संतोष मानना चाहिये। मैं नहीं जानता कि पुराने जमानेमें संस्कारी माता-पिता इससे अधिककी इच्छा पुत्रसे रखते होंगे।

मैं जानता हूं कि सैकड़ों या हजारों नवयुवकों पर मेरा असर पड़ा है। मुझे अपने धर्मका भान है। मैं मानता हूं कि पुत्रधर्मका पालन करनेका मैंने अपने जीवनमें काफी प्रयत्न किया था उसमें कुछ सफलता भी प्राप्त कर सका था। मेरे माता-पिता मुझे अपना आज्ञाकारी पुत्र मानते थे और मुझे पूरी स्वतंत्रता देते थे। उनका अंकुश कभी मुझे खटका नहीं। मेरे पुत्र हैं पौत्र भी हैं। उनमें से किसीको भी मैं बांधकर नहीं रखता। बालिग उमरवाले सब कोई पूर्ण स्वतंत्रताका उपभोग करते हैं। अपने पुत्र-पौत्रोंको ऐसी तालीम देनेका मुझे पछतावा नहीं है। मेरा बड़ा पुत्र खुले तौर पर मेरे प्रतिकूल व्यवहार करता है। उसका मुझे दुःख नहीं है। उसके ऐसा व्यवहार करते हुए भी अपने धर्मकी कल्पनाके अनुसार मैं पिताका जैसा संबंध उसके साथ रख सकता हूं वैसा रखता हूं। वह जब कभी मुझे पत्र लिखता है तब नीचे आज्ञाकारी पुत्र लिखकर सही करता है। ऐसा करके वह मेरा अपमान करता है ऐसा मुझे नहीं लगता। उसकी आज्ञाकारिताकी एक मर्यादा है ऐसा मुझे समझना चाहिये। मेरे पास मेरी सगी पुत्रियोंकी तरह रहनेवाली कुमारियां हैं उसी तरहकी रहनेवाली स्त्रियां हैं। वे सब स्वतंत्रतासे रहती हैं और स्वेच्छासे मेरे पास आई हैं। उन्हें मेरी हर इच्छाके अनुसार आचरण करना चाहिये ऐसा मैं नहीं मानता। उनके माता पिताको इस बातका असंतोष नहीं है कि वे मेरे साथ रहती हैं। ऐसे अगणित अनुभवोंके आधार पर मैं अनुमान करता हूं कि सच्ची जीवनकी तालीम देते हुए पूर्ण स्वतंत्रताका पालन करनेमें कोई बाधा नहीं है। जहां तक मैं जानता हूं मेरे संपर्कमें आने

हुए किसी भी व्यक्तिका नुकसान नहीं हुआ है या किसी भी व्यक्तिका जीवन कलंकित नहीं बना है।

मैं जो बात नौजवानोंको सिखाता हूं उसमें गुप्त जैसा कुछ नहीं है। उसमें कुछ भी भयंकर नहीं है। उसके आचरणमें किसी तरहका खतरा नहीं है। अनेक उदाहरणोंमें मैंने यह पाया है कि जो कुछ मैं सिखाता हूं वह बुद्धिगम्य है हृदय-ग्राह्य है। इसलिए जो माता-पिता अपने पुत्रों या पुत्रियोंके व्यवहारसे दुःखी हुए हैं उनसे मेरी प्रार्थना है कि वे वर्तमान युगको पहचानें। मैं तो आज हूं और कल चला जाऊंगा। मेरे हाथ हो जानेसे युगका प्रवाह तो रुकनेवाला नहीं है। युगका प्रवाह तो लोगोंको स्वच्छन्दताकी दिशामें घसीट रहा है। उस प्रवाहको रोककर मैं नौजवानोंको समझके मार्ग पर ले जानेका प्रयत्न करता हूं। इस प्रयत्नमें माता-पिताको मेरी सहायता करनी चाहिये।

पत्रलेखक आश्रममें स्त्रियोंके प्रति मेरे व्यवहारमें माताकी ममतासे मेरे उनका स्पर्श करनेमें दोष देखते हैं। इस विषय पर मैंने आश्रममें अपने साथियोंसे चर्चा की है। आश्रममें शिक्षित अथवा अशिक्षित स्त्रियां जिस मर्यादित स्वतंत्रताका उपभोग करती हैं वैसी स्वतंत्रता भारतमें अन्यत्र कहीं भी स्त्रियों द्वारा भोगी जाती है ऐसा मैं नहीं जानता। पिता अपनी पुत्रियोंका निर्दोष स्पर्श भूलेमें करे, तो इसमें मैं कोई दोष नहीं मानूंगा। मेरा स्पर्श ऐसा ही निर्दोष होता है। मैं कभी भी एकान्तमें नहीं रहता। मेरे साथ रोज बालायें घूमने निकलती हैं तब मैं उनके कंधे पर हाथ रखकर चलता हूं। उस स्पर्शकी निरपवाद मर्यादा है ऐसा वे बालायें जानती हैं और दूसरे सब भी जानते हैं।

हमारी बालाओंको हम कमजोर बनाते हैं उनमें अनुचित विकार उत्पन्न करते हैं जो बात उनमें नहीं होती उसका उन पर आरोपण करते हैं और फिर हम उन्हें कुचलते हैं और बहुत बार उन्हें व्यभिचारका पात्र बनाते हैं। हमारी बालायें नहीं मानना सीखती हैं कि वे अपने शीलका रक्षण करनेमें असमर्थ हैं। इस निर्बलता और कायरतासे बालाओंको छुड़ानेका आश्रममें गंभीरता प्रयत्न चल रहा है। इस प्रकारका प्रयत्न मैंने दक्षिण अफ्रीकामें ही आरंभ कर दिया था। उसका बुरा

परिणाम मेरी दृष्टिमें नहीं आया। परन्तु आश्रमकी शिक्षासे कुछ बा बीस वर्षकी उमर तक पहुंचने पर भी निर्विकार रहनेका प्रयत्न कर है और दिनोंदिन अधिक निर्भय और स्वावलंबी बनती जा रही है। रायमें प्रत्येक कुमारीके स्पर्श अथवा दर्शनसे पुरुष विकारी ही बनता ऐसी मान्यता पुरुषके पुरुषत्वको लज्जित करनेवाली है। यह बात वास्त सच हो तो ब्रह्मचर्यका पालन असंभव सिद्ध होगा।

आजके संक्रान्ति-कालमें हमारे देशमें स्त्री-पुरुषके संबंधकी मर होनी ही चाहिये। मर्यादाके अभावमें अनेक खतरे हैं, यह मैं प्रति अपने अनुभवसे देख रहा हूं। इसलिए स्त्रियोंकी स्वतंत्रताकी रक्षा क हुए भी आश्रममें यथासंभव मर्यादा रखी गई है। मेरे सिवा अन्य कोई पुरुष बालाओंका स्पर्श नहीं करता। स्पर्श करनेका कोई प्रसंग ही नहीं होता। पिताका स्नेह मां देनेसे कभी किया-किया नहीं जाता।

मेरे इस स्पर्शमें गोपनकका कोई बाघा नहीं है। उसमें गोप जैसी कोई चीज नहीं है। मैं दूसरे मनुष्योंके जैसा ही विकारमय मिट्टी पुतला हूं। परन्तु विकारमय पुरुष भी पिताके रूपमें देखे गये हूं। मैं अनेक पुत्रियां हैं अनेक बहनें हैं। मैं एकपत्नी-व्रतसे बंधा हुआ हूं। पर भी मेरी केवल मित्र बन गई है। इसलिए मुझे स्वभावतः भयंकर विका पर अंकुश रखना पड़ता है। माताने मेरे बचपनमें मुझे प्रतिज्ञाका मूल्य जानना सिखाया था। बचपनसे भी अधिक अमंग प्रतिज्ञाकी दीवाल मुझे सु क्षित रखती है। मेरी इच्छाके विरुद्ध भी इस अभेद्य दीवालने आज त मेरी रक्षा की है। भविष्य ईश्वरके हाथमें है।

आश्रममें कुछ पुराने दंपतियोंके सिवा दूसरी स्त्रियां और पुरुषों निवास-स्थान अलग अलग हैं।

नवजीवन २८-७-२९

५७

अहिंसा और ब्रह्मचर्य

एक कांग्रेसी नौजवानने बातचीतके सिलसिलेमें उस दिन मुझसे कहा "यह क्या बात है कि कांग्रेस अब नैतिकताकी दृष्टिसे वैसी नहीं रही जैसी कि वह १९२० से १९२५ के अरसेमें थी? उस समयकी तुलनामें आज उसकी बहुत ज्यादा नैतिक अवनति हो गई है। आज सभ्य प्रतिष्ठित सदस्य कांग्रेसके अनुशासनका पालन नहीं करते। क्या आप इस हालतको सुधारनेके लिए कुछ नहीं कर सकते?"

यह प्रश्न उपयुक्त और सामयिक है। मैं यह कहकर अपनी जिम्मेदारीसे छूट नहीं सकता कि अब मैं कांग्रेसमें नहीं हूं। मैं अधिक अच्छी तरह कांग्रेसकी सेवा करनेके लिए ही उससे बाहर हुआ हूं। कांग्रेसकी नीति पर आज भी मैं प्रभाव डाल रहा हूं यह मैं जानता हूं। और १९२० में कांग्रेसका जो विधान बना था उसे बनानेवालेकी हैसियतसे कांग्रेसकी उस अवनतिके लिए मुझे अपनेको जिम्मेदार मानना ही चाहिये जिसका कि बयान जा सकता है।

कांग्रेसने १९२० में नया प्रस्थान किया तब आरंभमें ही एक दोष रह गया था। सत्य और अहिंसा पर एक धर्मके रूपमें बहुत कम लोग विश्वास करते थे। अधिकांश सदस्योंने इन्हें नीतिके रूपमें स्वीकार किया था। ऐसा होना अनिवार्य था। मैंने आशा की थी कि नई नीतिके अनुसार कांग्रेसको काम करते देखकर उनमें से अनेक लोग इन्हें अपने धर्मके रूपमें स्वीकार कर लेंगे। लेकिन ऐसा कुछ ही लोगोंने किया, बहुतोंने नहीं। प्रारंभमें तो सबसे बड़े नेताओंमें भारी परिवर्तन देखनेमें आया। स्वर्गीय पंडित मोतीलाल नेहरू और देशबन्धु दासके जो पत्र यंग इंडिया में उद्धृत किये गये थे उन्हें पाठक भूले नहीं होंगे। संयम सादगी और आत्मोत्सर्गके जीवनमें उन्हें एक नये आनन्द और एक नई आशाका अनुभव हुआ था। अलीबन्धु तो करीब करीब फकीर ही बन गये थे। जगह जगह दौरा करते हुए इन भाइयोंमें जो परिवर्तन हो रहा था उसे मैं आनन्दके साथ देखता

था। और जो बात इन चार नेताओंके विषयमें सच है वही और भी ऐसे अनेक नेताओंके बारेमें कही जा सकती है जिनके नाम मैं गिना सकता हूं। इन नेताओंके उत्साहका कांग्रेसके साधारण सदस्यों पर भी असर पड़ा था।

लेकिन यह अद्भुत परिवर्तन एक सालमें स्वराज्य के मंत्रके कारण हुआ था। इस मंत्रकी सिद्धिके लिए मैंने जो शर्तें लगाई थीं उनको भुला दिया गया। ख्वाजा अब्दुल मजीद साहबने तो यहां तक कह डाला कि सत्याग्रही सेनाके — जो कि कांग्रेस उस समय बन गई थी और आज भी है (यदि कांग्रेसजन सत्याग्रहके अर्थको समझें तो) — सेनापतिकी हैसियतसे मुझे इस बातका निश्चय कर लेना चाहिये था कि मैं जो शर्तें लगा रहा हूं वे ऐसी हैं या नहीं जो पूरी हो सकें। शायद उनका कहना ठीक था। लेकिन यह दूरदेशी मेरे पास नहीं थी। सामूहिक रूपमें और राजनीतिक उद्देश्यके लिए अहिंसाका उपयोग स्वयं मेरे लिए भी एक प्रयोग ही था। इसलिए मैं आग्रहपूर्वक कोई दावा नहीं कर सकता था। मेरी शर्तोंका उद्देश्य कार्योंकी शक्ति और समर्थनका अन्दाज लगाना था। वे पूरी हो भी सकती थीं और नहीं भी हो सकती थीं। गलतियों या गलत अन्दाजोंकी संभावना तो सदा रहती ही थी। जो भी हो जब स्वराज्यकी लड़ाई लम्बी हो गई और खिलाफतके सवालमें जान न रही तो लोगोंका उत्साह मन्द पड़ने लगा। अहिंसामें नीतिके तौर पर भी उनका विश्वास ढीला पड़ने लगा और असत्यका प्रवेश हो गया। जिन लोगोंका इन दोनों गुणोंमें या विधानकी [illegible]वाली शर्तमें कोई विश्वास नहीं था वे कांग्रेसमें घुस आये और उन्होंने तो खुले आम भी कांग्रेसके विधानकी अवहेलना करना शुरू कर दिया।

यह बुराई बराबर बढ़ती ही गई है। कार्य-समिति कांग्रेसको इस ग्लानिसे मुक्त करनेका कुछ प्रयत्न करती रही है, लेकिन दृढ़तापूर्वक नहीं और न वह कांग्रेसके सदस्योंकी संख्या कम हो जानेके खतरेको ही उठानेके लिए तैयार हो सकी है। मैं खुद तो संख्याके बजाय गुणमें ज्यादा विश्वास करता हूं।

लेकिन अहिंसाकी योजनामें जबरदस्तीका कोई स्थान नहीं है। उसमें तो इसी बात पर निर्भर रहना पड़ता है कि लोगोंकी बुद्धि और

हृदय तक — उसमें भी बुद्धिकी अपेक्षा हृदय तक ही ज्यादा — पहुंचनेकी क्षमता प्राप्त की जाय।

इससे यह फलित होता है कि सत्याग्रही सेनापतिके अन्दरमें शक्ति होनी चाहिये — वह शक्ति नहीं जो असीम शस्त्रास्त्रोंसे प्राप्त होती है बल्कि वह शक्ति जो जीवनकी शुद्धता दृढ़ जागरूकता और सतत आचरणसे प्राप्त होती है। यह बात ब्रह्मचर्यका पालन किये बिना असंभव है। इस ब्रह्मचर्यका इतना सम्पूर्ण होना आवश्यक है जितना मनुष्यके लिए संभव है। ब्रह्मचर्यका अर्थ यहां केवल दैहिक आत्म-संयम या निग्रह ही नहीं है। उसका इससे कहीं अधिक व्यापक अर्थ है। उसका अर्थ है सभी इन्द्रियों पर पूर्ण नियंत्रण। इस प्रकार अशुद्ध विचार भी ब्रह्मचर्यका भंग है। और क्रोध भी ब्रह्मचर्यका भंग है। सारी शक्ति उस वीर्यशक्तिकी रक्षा और उदात्त कल्याण-कार्यमें उसके उपयोगसे प्राप्त होती है जिससे कि जीवनका निर्माण होता है। अगर इस वीर्यशक्तिको नष्ट न होने देनेके बजाय इसका संचय किया जाय तो यह सर्वोत्तम सर्जन-शक्तिके रूपमें परिणत हो जाती है। बुरे या इधर उधर भटकनेवाले अव्यवस्थित और अवांछनीय विचारोंसे भी इस शक्तिका निरन्तर और अज्ञात रूपसे क्षय होता रहता है। और चूंकि विचार ही समस्त वाणी और क्रियाओंका मूल होता है इसलिए विचारके अनुरूप ही वाणी और कार्य बन जाते हैं। अतः पूर्णतया नियंत्रित विचार खुद ही एक सर्वोत्तम शक्ति है और स्वतः क्रियाशील बन सकता है। मूक रूपमें की जानेवाली हार्दिक प्रार्थनाका मुझे तो यही अर्थ मालूम पड़ता है। अगर मनुष्य ईश्वरकी प्रतिकृति है तो उसके अपने मर्यादित क्षेत्रके अन्दर किसी बातके होनेका संकल्प करने मात्रसे तुरन्त वह बात हो ही जाती है। जिस तरह छेदवाली नलीमें भापको रखनेसे कोई शक्ति पैदा नहीं होती उसी प्रकार जो मनुष्य अपनी वीर्यशक्तिका किसी भी रूपमें क्षय होने देता है उसमें ऐसी शक्ति उत्पन्न होना असंभव है। प्रजोत्पत्तिके निश्चित उद्देश्यसे न किया जानेवाला संभोग वीर्यशक्तिके क्षयका एक विशिष्ट और भद्दा रूप है। इसलिए उसकी खास तौरसे जो निन्दा की गई है वह ठीक ही है। लेकिन जिसे अहिंसक कार्यके लिए मनुष्य जातिके विशाल समूहोंको संगठित करना है उसे तो इन्द्रियोंके

जिस पूर्ण निग्रहका मैंने ऊपर वर्णन किया है उसे प्रयत्नपूर्वक सिद्ध करना ही चाहिये।

ईश्वरकी कृपाके बिना यह सम्पूर्ण इन्द्रिय-निग्रह संभव नहीं है। गीताके दूसरे अध्यायमें एक श्लोक है

विषया विनिवर्तन्ते निराहारस्य देहिनः।
रसवर्जं रसोऽप्यस्य परं दृष्ट्वा निवर्तते॥

— अर्थात् जब तक उपवास किये जाते हैं तब तक इन्द्रियाँ विषयोंकी ओर नहीं दौड़तीं। परन्तु अकेले उपवाससे रस सूखते नहीं। उपवास छोड़ते ही वे बढ़ भी सकते हैं। इनको वशमें करनेके लिए तो ईश्वरका प्रसाद आवश्यक है। यह नियमन क्षणिक या अस्थायी नहीं है। एक बार सिद्ध हो जानेके बाद वह कभी नष्ट नहीं होता। उस स्थितिमें वीर्यशक्ति इस तरह संचित और सुरक्षित रहती है कि अपरिमित मार्गोंमें से किसीमें होकर उसके निकलनेकी संभावना ही नहीं रहती।

यह कहा गया है कि ऐसा ब्रह्मचर्य यदि किसी तरह सिद्ध किया जा सकता हो तो कन्दराओंमें रहनेवाले ही उसे सिद्ध कर सकते हैं। कहा जाता है कि ब्रह्मचारीको स्त्रियोंका स्पर्श तो क्या उनका दर्शन भी कभी नहीं करना चाहिये। निस्सन्देह किसी ब्रह्मचारीको विकारी बनकर किसी स्त्रीको न तो छूना चाहिये न देखना चाहिये और न उसके विषयमें कुछ कहना या सोचना ही चाहिये। लेकिन ब्रह्मचर्य-विषयक पुस्तकोंमें हमें यह जो वर्णन मिलता है उसमें इसके महत्त्वपूर्ण क्रियाविशेषण 'विकारी बनकर' का उल्लेख नहीं मिलता। इसका उल्लेख न करनेकी वजह यह मालूम पड़ती है कि इन मामलोंमें मनुष्य निष्पक्ष भावसे निर्णय नहीं कर सकता और इसलिए यह नहीं कहा जा सकता कि कब ऐसे सम्पर्कसे उसके मनमें विकार पैदा हुआ और कब नहीं। कामविकार [illegible] उत्पन्न हो जाता है। इसलिए दुनियामें आजादीसे [illegible] पर ब्रह्मचर्यका पालन यद्यपि कठिन है फिर भी [illegible] पर ही उसका पालन हो सकता है [illegible] ब्रह्मचर्य [illegible] नहीं है।

जो भी हो मैंने तो तीस वर्षसे अधिक समयसे प्रवृत्तियोंके बीच रहते हुए भी ब्रह्मचर्यका काफी सफलताके साथ पालन किया है। ब्रह्मचर्यका जीवन बितानेका निश्चय कर लेनेके बाद पत्नीके साथके व्यवहारको छोड़कर बाहरके लोगोंके साथ मेरे आचरणमें कोई अन्तर नहीं पड़ा। दक्षिण अफ्रीकामें भारतीयोंके बीच मुझे जो काम करना पड़ा उसमें मैं स्त्रियोंके साथ आजादीके साथ हिलता-मिलता था। ट्रान्सवाल और नेटालमें शायद ही कोई ऐसी भारतीय स्त्री रही होगी जिसे मैं न जानता होऊं। मेरे लिए तो वे सब बहनें और बेटियां ही थीं। मेरा ब्रह्मचर्य पुस्तकोंसे प्राप्त किया हुआ नहीं था। मैंने तो स्वयं अपने तथा उन लोगोंके मार्ग दर्शनके लिए, जो कि मेरे कहने पर इस प्रयोगमें शामिल हुए थे अपने ही नियम बना लिये थे। मैंने इसके लिए पुस्तकोंमें निर्दिष्ट निषेधोंका अनुसरण नहीं किया है धार्मिक साहित्य तकमें स्त्रियोंको जो सारी बुराई और प्रलोभनके द्वारके रूपमें वर्णन किया गया है उसे तो मैंने इसमें भी कम स्वीकार किया है। मैं तो ऐसा मानता हूं कि मुझमें जो भी अच्छाई है वह सब मेरी माके बदौलत है। इसलिए स्त्रियोंको मैंने कभी काम-वासनाकी तृप्तिके साधनके रूपमें नहीं देखा बल्कि हमेशा उसी प्रकारके भावसे देखा है जो कि मैं अपनी माताके प्रति रखता हूं। पुरुष ही स्त्रीको प्रलोभनमें फंसानेवाला और उस पर आक्रमण करनेवाला है। स्त्रीके स्पर्शसे वह अपवित्र नहीं होता बल्कि अकसर वह खुद इतना अपवित्र होता है कि स्त्रीका स्पर्श करनेका अधिकारी नहीं होता। लेकिन हालमें मेरे मनमें इस विषयमें भारी शंका पैदा हुई है कि स्त्री या पुरुषके सम्पर्कमें आनेके लिए ब्रह्मचारी या ब्रह्मचारिणीको किस तरहकी मर्यादाओंका पालन करना चाहिए। मैंने जो मर्यादायें रखी हैं उनसे मुझे सन्तोष नहीं होता लेकिन वे क्या होनी चाहियें यह मैं नहीं जानता। मैं तो केवल प्रयोग कर रहा हूं। मैंने कभी इस बातका दावा नहीं किया कि मैं अपनी परिभाषाके अनुसार पूर्ण ब्रह्मचारी बन गया हूं। आज भी मैं अपने विचारों पर उतना नियंत्रण नहीं रख पाता जितने नियंत्रणकी अपनी अहिंसाकी खोजके लिए मुझे आवश्यकता है। लेकिन अगर मेरी अहिंसाको ऐसा बनना है जिसका दूसरों पर असर पड़े और वह उनमें फैले तो मुझे अपने विचारों पर

और अधिक नियंत्रण प्राप्त करना ही चाहिये। इस लेखके प्रारंभिक भागमें मेरे नेतृत्वकी जिस प्रत्यक्ष असफलताका उल्लेख किया गया है उसका कारण शायद मेरे भीतर कहीं न कहीं किसी कमीका रह जाना ही है।

अहिंसामें मेरी श्रद्धा हमेशाकी तरह ही दृढ़ है। मुझे इस बातका पूरा विश्वास है कि इससे न केवल हमारे देशकी ही सारी आवश्यकताओंकी पूर्ति होनी चाहिये बल्कि अगर ठीक तरहसे इसका पालन किया जाय तो यह उस खून-खराबीको भी रोक सकती है जो हिन्दुस्तानके बाहर हो रही है और सारे पश्चिमी संसार पर जिसके हावी हो जानेका अंदेशा है।

मेरी आकांक्षा मर्यादित है। परमेश्वरने मुझे इतनी शक्ति नहीं दी है कि मैं अहिंसाके पथ पर सारी दुनियाकी रहनुमाई कर सकूं। लेकिन मैंने यह कल्पना जरूर की है कि हिन्दुस्तानकी अनेक बुराइयोंके निवारणार्थ अहिंसाका प्रयोग करनेके लिए उस प्रभुने मुझे अपना साधन बनाया है। इस दिशामें अभी कुछ जो प्रगति हो चुकी है वह महान है। लेकिन अभी बहुत-कुछ करना बाकी है। इतने पर भी मुझे ऐसा लगता है कि इसके लिए समस्त कांग्रेसजनोंकी जो सहानुभूति चाहिये उसे प्राप्त करनेकी शक्ति मुझमें नहीं रही है। जो सुथार अपने औजारोंको ही बुरा बताता रहता है वह अच्छा सुथार नहीं है। वह तो नाच न जाने आंगन टेढ़ा की मिसाल होगी। इसी तरह बिगड़े हुए कामोंके लिए अपने सैनिकोंको दोष देनेवाला सेनापति भी अच्छा नहीं कहा जा सकता। परन्तु मैं यह जानता हूं कि मैं बुरा सेनापति नहीं हूं। अपनी मर्यादाओंको जाननेकी जितनी बुद्धि मुझमें है उसका अगर कभी दिवाला निकल जाय तो ईश्वर मुझे इतनी शक्ति देगा कि मैं उसकी स्पष्ट घोषणा कर सकूं।

उसकी कृपासे मैं कोई आधी सदीसे जो काम कर रहा हूं उसके लिए अगर मेरी अधिक जरूरत न रही तो शायद वह मुझे उठा लेगा। लेकिन मेरा खयाल है कि मेरे करनेके लिए अभी काफी काम है। जो अन्धकार मेरे ऊपर छाया हुआ मालूम पड़ता है वह नष्ट हो जायेगा और स्वभावतया अहिंसात्मक साधनोंसे भारत स्वराज्यके अपने लक्ष्यको पहुंच जायगा — फिर इसके लिए दांडी-कूचसे भी ज्यादा उग्र लड़ाई लड़नी

पड़े या उसके बगैर ही ऐसा हो जाये। मैं ईश्वरसे उस प्रकाशकी याचना कर रहा हूं जो अन्धकारका नाश कर देगा। अहिंसामें जिन लोगोंकी जीवित श्रद्धा हो उन्हें इसमें मेरा साथ देना चाहिये।

हरिजनसेवक २१–७–१८

५८

विकारी दृष्टि

प्र० — मैं एक गरीब आदमी हूं। एक मिलमें काम करता हूं। बड़ी परेशानीमें पड़ा हुआ हूं। मैं जब कभी बाहर निकलता हूं तब रास्ते पर चलनेवाली हर किसी स्त्रीका चेहरा देखकर मेरे मनमें विकार पैदा हो जाता है और मैं अपना आपा काबू खो बैठता हूं। बहुत बार मुझे यह डर लगता है कि मैं कोई अनुचित काम कर बैठूंगा। एक बार तो मैंने आत्महत्या करनेका भी विचार किया, परन्तु मेरी गुणवती स्त्रीने मुझे बचा लिया। उसने मुझे सुझाया कि मैं जब भी बाहर जाऊं तब उसे साथ लेकर जाऊं। इससे काम चला तो सकता है, परन्तु हमेशा ऐसा नहीं हो सकता। बहुत बार मेरे मनमें मरनेकी इच्छा हो जाती है और दिल चाहता है कि अपनी पापी आंखोंको फोड़ डालूं। परन्तु अपनी स्त्रीका खयाल करके मैं अपनेको ऐसे कामसे रोकता हूं। आप सत्पुरुष हैं। आप मुझे इसका कोई उपाय नहीं बतायेंगे?

उ० — आप सच्चे और भलेके आदमी हैं। आपको जानना चाहिये कि दूसरे अनेक लोग आपकी ही स्थितिमें होते हैं। विकारी नजरका यह रोग सामान्यतः सब जगह देखनेमें आता है। आजकल यह बढ़ रहा है। इसने एक प्रकारकी प्रतिष्ठा भी मानो प्राप्त कर ली है। परन्तु आप इस स्थितिसे आश्वासन न लें। आपको बहादुर पत्नी मिली है। उसके प्रति आप बेवफा हो ही नहीं सकते। और पराई स्त्रीके लिए मनमें विषय-वासनाकी भावना रखना बेवफाईकी चरम सीमा कही जायगी। इससे विवाहकी प्रथा निरे मजाकका रूप ले लेती है। अपने जीवनके इस शत्रुसे आप

दृढ़तासे लड़ते रहिये। मनमें इस भावनाका चिन्तन करते रहिये कि दूसरी समस्त स्त्रियाँ आपकी सगी बहनें हैं। विकारोंको बढ़ानेवाला साहित्य मत पढ़िये। सिनेमा मत देखिये। हमारे अखबारोंमें जो बीभत्स चित्र छपते हैं उनको मत देखिये। नीचे नजर रखकर चलनेकी आदत डालिये। इसके साथ प्रभुकी करुणा मांगिये कि वह आपके मनका सारा मैल दूर कर दे और श्रद्धा रखिये कि वह ईश्वर जरूर इस अभिशापसे आपको मुक्त कर देगा। जरूरत पड़े तो गहरे रंगका चश्मा पहनिये। उससे आपको अच्छी बाहरी मदद मिलेगी। सच पूछा जाय तो खतरा देनेवाली चित्र-कला और भीड़भाड़वाले बड़े शहरोंमें शारीरिक कामके लायक कोई चीज होती ही नहीं। रोज रोज वही शोरगुल घूमना और रोज रोज वे ही जाने पहचाने चेहरे देखना। अगर हमें निष्क्रियताकी प्रबल शक्तिने घेर न लिया होता तो यहींके यहीं भरे दृश्योंको बार बार देखनेसे हमें ऊब उठना चाहिये। दिनमें हाथमें लिये हुए काममें जुटे रहिये और रातमें ज्योतिष-विद्याकी एकाध साधारण पुस्तककी मददसे थोड़ा आकाश-दर्शन करने लग जाइये। इससे आपको आकाशमें ऐसे ऐसे भव्य दृश्य देखनेको मिलेंगे जैसे दुनियाका कोई भी सिनेमा आपको नहीं बता सकता। और यह भी संभव है कि एक दिन ऐसा आये जब उसी आकाशमें जगमगाते अनंत तारोंके द्वारा अपनी ज्योति बिखेरनेवाले ईश्वरकी भी झांकी आपको होने लगे। और रात्रिकी इस दैवी लीलाके साथ यदि आपका हृदय एकतान हो जाय तो उसीमें से आपको अनहद नाद तथा विस्मय व्याप्त दैवी संगीत सुननेको मिलेगा। आप रोज रातको ऐसा प्रयत्न करके देखें। इससे आपकी दृष्टि निर्मल होगी और आपके मनका मैल मिटेगा। ईश्वर आपका कल्याण करे।

हरिजनबन्धु ४-२-४

५९

इच्छा होते हुए भी असमर्थ

एक दुःखी भाई लिखते हैं

मैं औदिच्य ब्राह्मण हूं। मेरी उमर २५ वर्षकी है। मेरी दो वर्षकी एक पुत्री है। मुझे मासिक १ रुपये वेतनमें मिलते हैं। सौभाग्यसे एकाध वर्षसे मैं खादी पहनता हूं। पवित्र खादी पहननेसे लोग मुझे भला आदमी मानते हैं। परन्तु मेरा महान संकट यह है कि मैं व्यभिचारके अधम मार्ग पर चढ़ गया हूं। जब मेरे इस व्यभिचारका पता मेरी स्त्रीको चला तो उसने मुझे समझानेके अनेक प्रयत्न किये। लेकिन उस दिशामें सफलता नहीं मिली। इसी प्रकार इस बुराईको भयंकर पाप समझते हुए तथा अनेक उपाय करते हुए भी इसे छोड़नेमें मैं असफल रहा हूं। क्या आप मुझे कोई मार्ग बतायेंगे? कृपा करके मेरा नाम न देकर नवजीवन द्वारा मेरे पत्रका ऐसा उत्तर दीजिये जिससे मैं उत्तम मार्ग पर लग जाऊं।

इस भाईकी कठिनाईका अनुभव मानव-जातिने अनुभव किया है और यह प्राचीन कालसे चला आया है। अर्जुनने भगवान श्रीकृष्णसे यही प्रश्न पूछा है। उत्तरमें भगवानने उसे इन्द्रियोंका दमन सुझाया है। आत्माको आत्माके द्वारा वशमें करनेकी बात सूचित की है। अभ्यास और वैराग्य भी बताया है। भक्तिमार्ग भी सुझाया है। अन्तमें मनुष्योंमें अन्तिम ही चित्तशुद्धि प्राप्त की है। इस मार्गको अपनी कमजोरीका पूरा भान है। इसलिए इसका रोग असाध्य नहीं माना जायगा। उन्हें और उनके जैसे दूसरे लोगोंको अपनी इन्द्रियोंका दमन करना चाहिये। मनको वशमें करनेके लिए सारा समय काममें व्यतीत करना चाहिये। और इस प्रयत्नके साथ उन्हें रामनाम जपना चाहिये अथवा ईश्वरका जो भी विशेषण प्रिय हो उसका उपयोग करना चाहिये और यह विश्वास रखना चाहिये

कि अन्तमें उनका प्रयत्न सफल होकर ही रहेगा। अनेक मनुष्य ऐसे भी देखे जाते हैं जो हार कर प्रयत्न छोड़ देते हैं और उसके बावजूद अपने पापकी चर्चा सबके साथ करते हैं, उसका उपाय पूछते हैं और उसे अपनानेकी अपनी अशक्ति बताकर पाप करनेका परवाना पा लेते हैं। प्रयत्नकी शिथिलताकी ऐसी भयंकर भूल वे भाई न करें। उन्हें यह विश्वास रखना चाहिये कि दुःखीकी पुकार भगवान अवश्य सुनता है।

नवजीवन १०–११–२९

६०
विद्यार्थियोंके लिए लज्जाजनक

पंजाबके एक कॉलेजकी लड़कीका एक अत्यन्त हृदयस्पर्शी पत्र करीब दो महीनेसे मेरी फाइलमें पड़ा हुआ है। इस लड़कीके प्रश्नका जवाब अभी तक जो नहीं दिया, इसमें समयके अभावका तो केवल एक बहाना ही था। किसी न किसी तरह इस कामसे अपनेको मैं बचा रहा था, हालांकि मैं यह जानता था कि इस प्रश्नका क्या जवाब देना चाहिये। इसी बीच मुझे एक और पत्र मिला। यह पत्र एक ऐसी बहनका लिखा हुआ है जिन्हें जीवनका बहुत अनुभव है। और मुझे ऐसा मालूम हुआ कि कॉलेजकी इस लड़कीको जो यह अत्यन्त वास्तविक कठिनाई है उसका उपाय बताना मेरा कर्तव्य है तथा इसको अब मैं और अधिक दिनों तक उपेक्षा नहीं कर सकता। पत्र उसने शुद्ध हिन्दुस्तानीमें लिखा है। मुझे इस पत्रके साथ यथाशक्ति न्याय करनेका प्रयत्न करना चाहिये जो उन भावोंकी उसकी भावनाका पूर्ण चित्र मेरे सामने प्रस्तुत करता है। उसका एक भाग मैं नीचे उद्धृत कर रहा हूं :

> लड़कियों और बालिग स्त्रियोंके सामने उनकी इच्छाके विरुद्ध न [illegible] अक्सर आ जाना पड़ता है जब कि उन्हें अकेले बाहरी निर्मम दुनियामें रहना पड़ता है — या तो उन्हें एक ही शहरमें [illegible] । उनको बाहर जाना होता है या एक शहरसे दूसरे

मजूरको। और जब वे इस तरह असली होती हैं तब गन्दी मनोवृत्तिवाले लोग उन्हें तंग किया करते हैं। वे उस समय अनुचित और अश्लील भाषा तकका उपयोग करते हैं। और अगर भय उन्हें रोकता नहीं है तो इससे भी आगे बढ़नेमें उन्हें कोई हिचकिचाहट नहीं होती। मैं यह जानना चाहती हूं कि ऐसे मौकों पर अहिंसा क्या काम दे सकती है? हिंसाका उपयोग तो है ही। अगर किसी लड़की या स्त्रीमें काफी हिम्मत हो तो उसके पास जो भी साधन होंगे उन्हें वह काममें लायेगी और एक बार बदमाशोंको सबक सिखा देगी। वे कमसे कम हंगामा तो मचा ही सकती हैं जिससे कि लोगोंका ध्यान आकर्षित हो जाय और गुण्डे वहांसे भाग जायें। लेकिन मैं यह जानती हूं कि इसके परिणामस्वरूप विपत्ति तो टल जायेगी परन्तु यह कोई स्थायी इलाज नहीं है। अशिष्ट व्यवहार करनेवाले लोगोंका अगर आपको पता हो तो मुझे विश्वास है कि उन्हें अगर समझाया जाय तो वे आपकी प्रेम और नम्रताकी बातें सुनेंगे। परन्तु उन आदमियोंके लिए आपका क्या कहना जो साइकल पर चढ़ा हुआ किसी लड़की या स्त्रीको देखकर, जिसके साथ कोई पुरुष-साथी नहीं है गंदी भाषाका प्रयोग करता है? उसे दलील देकर समझानेका आपको मौका नहीं है। आपके उससे फिर मिलनेकी कोई संभावना नहीं। हो सकता है कि आप उसे पहचानें भी नहीं। आप उसका पता भी नहीं जानते। ऐसी परिस्थितिमें यह बेचारी लड़की या स्त्री क्या करे?

"मैं अपना ही उदाहरण देकर आपको अपना अनुभव बताती हूं। २६ अक्तूबरकी रातकी बात है। मैं अपनी एक सहेलीके साथ शामके ७-३० बजेके करीब एक खास काममें जा रही थी। उस समय किसी पुरुष-साथीको साथ ले जाना असंभव था और काम इतना आवश्यक था कि उसे टाला नहीं जा सकता था। रास्तेमें एक सिक्ख युवक साइकल पर जा रहा था। वह कुछ गुनगुनाता जाता था। हम सुन सकें इतनी दूरी तक उसने गुनगुनाना जारी

रखा। हमें यह मालूम था कि वह हमें तंग करनेके ही घूमघूमा रहा है। हमें उसकी यह हरकत बहुत नागवार मालूम हुई। सड़क पर कोई चहल-पहल नहीं थी। हमारे पास आनेसे पहले वह कौन था। हम उसे फौरन पहचान गईं हालांकि वह अब भी हमसे काफी फासले पर था। उसने हमारी तरफ साइकल घुमाई। ईश्वर जाने उसका इरादा उतरनेका था या यों ही हमारे पाससे सिर्फ गुजरनेका। हमें ऐसा लगा कि हम खतरेमें हैं। हमें अपनी शारीरिक बहादुरीमें विश्वास नहीं था। मैं एक औसत लड़कीके मुकाबले शरीरसे कमजोर हूं। लेकिन मेरे हाथमें एक बड़ीसी किताब थी। एकाएक किसी तरह मेरे अन्दर हिम्मत आ गई, साइकलकी तरफ मैंने किताबको जोरसे दे मारा और चिल्लाकर कहा: बुजदिली करनेकी तू फिर हिम्मत करेगा! वह मुश्किलसे अपनेको संभाल सका और साइकलकी रफ्तार बढ़ाकर वहांसे छूमन्तर हो गया। अब अगर मैंने उसकी साइकलकी तरफ किताब जोरसे न फेंक मारी होती तो वह अन्त तक इसी तरह अपनी गन्दी भाषासे हमें तंग करता जाता। यह तो मामूली बल्कि नगण्य-सी घटना है। लेकिन मैं चाहती हूं कि आप लाहौर आते और हम हतभागिनी लड़कियोंकी मुसीबतोंकी दास्तान खुद अपने कानों सुनते। आप निश्चय ही इस समस्याका ठीक ठीक हल ढूंढ सकते हैं।

सबसे पहले आप मुझे यह बतायें कि ऊपर जिन परिस्थितियोंका मैंने वर्णन किया है उनमें लड़कियां अहिंसाके सिद्धान्तका प्रयोग किस तरह कर सकती हैं और कैसे अपने-आपको बचा सकती हैं? दूसरे, स्त्रियोंको अपमानित करनेकी जिन युवकोंको यह बहुत बुरी आदत पड़ गई है, उनको सुधारनेका क्या उपाय है? आप यह उपाय न सुझाइयेगा कि हमें उस नई पीढ़ीके आनेका इन्तजार करना चाहिये जिस पीढ़ीने बचपनसे ही स्त्रियोंके साथ मर्यादित व्यवहारकी शिक्षा पाई होगी और तब तक हम इस अपमानको चुपचाप बरदाश्त करती रहें। सरकारकी या तो इस

सामाजिक बुराईका मुकाबला करनेकी इच्छा नहीं है या ऐसा करनेमें वह असमर्थ है। और हमारे बड़े बड़े नेताओंके पास ऐसे प्रश्नोंके लिए समय ही नहीं है। कुछ लोग जब यह सुनते हैं कि किसी लड़कीने अशिष्टतासे पेश आनेवाले नवयुवककी अच्छी तरहसे मरम्मत कर दी है तो कहते हैं — शाबाश, ऐसा ही सब लड़कियोंको करना चाहिये। कभी कभी किसी नेताको हम विद्यार्थियोंके इस दुर्व्यवहारके खिलाफ जोरदार भाषण करते हुए पाते हैं। लेकिन ऐसा कोई नजर नहीं आता जो इस गंभीर समस्याका हल निकालनेमें निरन्तर प्रयत्नशील हो। आपको यह जानकर कष्ट और आश्चर्य होगा कि दीवाली और ऐसे ही दूसरे त्यौहारों पर अखबारोंमें इस किस्मकी चेतावनीकी नोटिसें निकला करती हैं कि रोशनी देखने तकके लिए औरतोंको घरोंसे बाहर नहीं निकलना चाहिये। इस एक ही बातसे आप जान सकते हैं कि दुनियाके इस हिस्सेमें हम किस कदर मुसीबतोंमें फंसी हुई हैं। ऐसी ऐसी नोटिसोंको जो लिखते हैं न तो वे खुद कुछ शर्म लाते हैं और न पढ़नेवाले ही कि ऐसी चेतावनियां क्यों उन्हें निकालनी चाहिये?

एक दूसरी पंजाबी लड़कीको मैंने यह पत्र पढ़नेके लिए दिया था। उसने भी अपने कॉलेज-जीवनके निजी अनुभवोंके आधार पर इस घटनाका समर्थन किया। उसने मुझे बताया कि मेरी पत्रलेखिकाने जो कुछ लिखा है वैसा ही अनुभव अक्सर लड़कियोंका होता है।

एक और अनुभवी महिलाने लखनऊकी अपनी विद्यार्थिनी मित्रोंके अनुभव लिखे हैं। सिनेमा थियेटरोंमें उनकी पिछली लाइनमें बैठे हुए लड़के उन्हें चिढ़ाते हैं। उनके लिए ऐसी भाषाका प्रयोग करते हैं जिसे मैं अश्लीलके सिवा और कोई नाम नहीं दे सकता। उन लड़कियोंके साथ किये जानेवाले भद्दे मजाक भी पत्रलेखिकाने मुझे लिखे हैं, लेकिन मैं उन्हें यहां उद्धृत नहीं कर सकता।

अगर सिर्फ तात्कालिक निजी रक्षाका सवाल हो तो इसमें सन्देह नहीं कि उस लड़कीने जो अपनेको शारीरिक दृष्टिसे कमजोर बताती है

का इलाज — आक्रमणकारी सवार पर जोरसे चिलाव मारकर — किया वह बिलकुल ठीक है। यह बहुत पुराना इलाज है। मैं 'हरिजन' में पहले भी लिख चुका हूं कि यदि कोई व्यक्ति हिंसक व्यवहार करने पर उतारू होना चाहता है तो उसके रास्तेमें शारीरिक कमजोरी भी रुकावट नहीं बनती, भले ही उसके मुकाबलेमें शारीरिक दृष्टिसे कोई बलवान विरोधी हो। और हम यह भलीभांति जानते हैं कि आजकल तो शारीरिक बलका प्रयोग करनेके इतने ज्यादा तरीके निकल चुके हैं कि एक छोटी लेकिन काफी समझदार लड़की किसीकी हत्या और विनाश तक कर सकती है। जिस परिस्थितिका उल्लेख पत्रलेखिकाने किया है वैसी परिस्थितिमें लड़कियोंको आत्मरक्षाके तरीके सिखानेका रिवाज आजकल बढ़ रहा है। लेकिन वह लड़की यह भी खूब समझती है कि भले ही वह उस वक्त आत्मरक्षाके हथियारके रूपमें अपने हाथकी चिलाव मारकर बच गई हो लेकिन इस बढ़ती हुई बुराईका यह कोई सच्चा इलाज नहीं है। गंदे अश्लील मजाकके कारण बहुत घबराने या डर जानेकी जरूरत नहीं। लेकिन इनकी ओरसे आंख मूंद लेना भी ठीक नहीं। ऐसे सब मामले अखबारोंमें छपा देने चाहिये। ठीक-ठीक मालूम होने पर अपराधियोंके नाम भी अखबारोंमें छपवा देने चाहिये। इस बुराईका भण्डाफोड़ करनेमें किसीको झूठा लिहाज नहीं करना चाहिये। इस सार्वजनिक बुराईके लिए प्रबल लोकमत जैसा कोई अच्छा इलाज नहीं है। इसमें कोई शक नहीं कि इन मामलोंको जनता बहुत उदासीनतासे देखती है लेकिन सिर्फ जनताको ही क्यों दोष दिया जाय? उसके सामने ऐसे गुस्ताखीके मामले भी तो आने चाहिये। चोरीके मामले उनका पता लगाकर छापे जाते हैं तब कहीं जाकर चोरी कम होती है। इसी तरह जब तक ऐसे सामाजिक अपराधोंके मामले भी दबाये जाते रहेंगे तब तक इस बुराईका इलाज नहीं हो सकता। पाप और बुराई भी अपने शिकारको खोजनेके लिए अन्धकार चाहते हैं। जब उन पर रोशनी पड़ती है तो वे खुद ही खतम हो जाते हैं।

लेकिन मुझे यह डर है कि आजकलकी लड़कीको भी तो अनेकोंकी दृष्टिमें आकर्षक बनना प्रिय है। वह अति साहसको पसन्द करती है। आजकलकी लड़की हवा वर्षा या धूपसे बचनेके उद्देश्यसे नहीं बल्कि लोगोंका

ध्यान अपनी ओर आकर्षित करनेके लिए तरह-तरहके भड़कीले कपड़े पहनती है। वह पाउडर वगैरासे अपनेको रंगकर कुदरतको भी मात करना चाहती है और असाधारण सुन्दर दिखना चाहती है। ऐसी लड़कियोंके लिए कोई अहिंसात्मक मार्ग नहीं है। मैं इन पृष्ठोंमें बहुत बार लिख चुका हूँ कि हमारे हृदयमें अहिंसाकी भावनाका विकास हो इसके लिए भी कुछ निश्चित नियम होते हैं। यह एक कष्टसाध्य प्रयत्न है। विचार और जीवनके तरीकोंमें यह क्रान्ति उत्पन्न कर देता है। यदि मेरी पत्रलेखिका और उसी तरहके विचार रखनेवाली दूसरी सब लड़कियाँ ऊपर बताये गये तरीकेसे अपने जीवनको बिलकुल ही बदल डालें तो उन्हें जल्दी ही यह अनुभव होने लगेगा कि उनके सम्पर्कमें आनेवाले नौजवान उनका आदर करना तथा उनकी उपस्थितिमें मर्यादित व्यवहार करना सीखने लगे हैं। लेकिन यदि उन्हें किसी समय ऐसा लगे कि उनके शील पर हमला होनेका खतरा है तो उनमें उस पशु-मनुष्यके आगे आत्म-समर्पण करनेके बजाय मर जानेका साहस होना चाहिये। कहा जाता है कि कभी कभी लड़कीको बाँधकर या मुँहमें कपड़ा ठूँसकर इस तरह विवश कर दिया जाता है कि वह उतनी आसानीसे मर नहीं सकती जितनी मैं कल्पना कर लेता हूँ। लेकिन फिर भी मैं जोरोंके साथ यह कहता हूँ कि जिस लड़कीमें मुकाबला करनेका दृढ़ संकल्प है, वह अपनेको असहाय बनानेके लिए बाँधे गये सारे बन्धनोंको तोड़ सकती है। दृढ़ संकल्प उसे मरनेकी शक्ति दे सकता है।

लेकिन यह साहस और यह हिम्मत उन्हींके लिए संभव है जिन्होंने इसका अभ्यास कर लिया है। जिनका अहिंसामें दृढ़ विश्वास नहीं है, उन्हें बचावका साधारण तरीका सीखकर कायर पुरुषोंके अश्लील व्यवहारसे अपना बचाव करना चाहिये।

परन्तु बड़ा सवाल तो यह है कि नवयुवक साधारण शिष्टाचार भी किसलिए छोड़ दें जिससे कि भली लड़कियोंको हमेशा उनसे सताये जानेका डर लगा रहे? मुझे यह जानकर दुःख हुआ कि ज्यादातर नवयुवकोंमें स्त्री-सम्मानकी सच्ची भावनाका नाश हो गया है। इसके विपरीत उन्हें तो अपने युवक-वर्गको बदनाम न होने देनेकी सावधानी रखनी चाहिये

और अपने साथियोंमें पाये जानेवाले असभ्यतापूर्ण एवं भद्दे व्यवहारका इलाज करना चाहिये। उन्हें हरएक स्त्रीका अपनी माँ और बहनकी तरह आदर करना सीखना चाहिये। यदि वे शिष्टाचार नहीं सीखेंगे तो उनकी सारी शिक्षा बेकार है।

और क्या प्रोफेसरों तथा स्कूल-मास्टरोंका यह कर्तव्य नहीं है कि जिस प्रकार वे अपने विद्यार्थियोंको कक्षामें बैठाकर पाठ्यक्रमके विषय सिखाते हैं उसी प्रकार वे अपने विद्यार्थियोंको सभ्यता और सद्वर्तनके पाठ भी अवश्य सिखायें?

हरिजनसेवक ११-१२-३८

६१
आजकलकी लड़कियाँ

ग्यारह लड़कियोंकी ओरसे लिखा हुआ एक पत्र मुझे मिला है जिनके नाम और पते भी मुझे भेजे गये हैं। उसमें ऐसे हेरफेर करके, जिससे उसके मतलबमें कोई परिवर्तन न हो, वह पत्र मैं यहाँ देता हूँ :

> एक लड़कीके पत्र पर विवेचन करते हुए आपने ११-१२-३८ के हरिजन में विद्यार्थियोंके लिए लज्जाजनक नामक जो लेख लिखा है वह विशेष ध्यान देनेके लायक है। आधुनिक लड़कीने आपको इस हद तक उत्तेजित कर दिया मालूम होता है कि अन्तमें आपने उसे अनेकोंकी दृष्टिमें आकर्षक बननेकी कोशिश कर डाला है। इससे स्त्रियोंके प्रति आपके जिस विचारका पता लगता है वह बहुत उत्साहप्रद नहीं है।
>
> इन दिनों जब कि पुरुषोंकी मदद करने और जीवनके भारमें बराबरीका हिस्सा लेनेके लिए स्त्रियाँ बन्द दरवाजोंसे बाहर आ रही हैं यह निःसन्देह आश्चर्यकी बात है कि पुरुषों द्वारा उनके साथ दुर्व्यवहार किये जाने पर भी उन्हें ही दोष दिया जाता है। इस बातसे इनकार नहीं किया जा सकता कि ऐसे उदाहरण दिये

जा सकते हैं जिनमें दोनोंका कसूर बराबर हो। कुछ लड़कियाँ ऐसी हो सकती हैं जिन्हें जनकोंकी दृष्टिमें आकर्षक बनना प्रिय हो। लेकिन उस हालतमें यह भी मानना ही पड़ेगा कि पुरुष भी ऐसे रहते हैं जो ऐसी लड़कियोंकी टोहमें गलियोंमें और सड़कों पर फिरते हैं। और यह तो हरगिज नहीं माना जा सकता या नहीं मानना चाहिये कि आजकलकी सभी लड़कियाँ इस तरह जनकोंकी दृष्टिमें आकर्षक बननेकी ही शौकीन हैं या आजकलके सभी नवयुवक उनकी टोहमें फिरनेवाले हैं। आप खुद आजकलकी काफी लड़कियोंके सम्पर्कमें आये हैं और उनके निश्चय, बलिदान एवं स्त्रियोचित अन्य गुणोंका आप पर जरूर असर पड़ा होगा।

आपको पत्र लिखनेवाली लड़कीने जिस असभ्य व्यवहारका उल्लेख किया है उसके विरुद्ध लोकमत तैयार करनेका काम हम लड़कियोंका नहीं है। यह हम झूठी शर्मकी वजहसे नहीं कहतीं बल्कि इसलिए कहती हैं कि हमारी बात कोई सुनेगा नहीं।

लेकिन संसारभरमें जिसकी प्रतिष्ठा है उस पुरुषके द्वारा ऐसी बात कही जानेसे एक बार फिर उसी पुरानी और कमजोर जनक लोकोक्तिकी पैरवी की जाती मालूम पड़ती है कि स्त्री नरकका द्वार है।

इस कथनसे आप यह न समझिये कि आजकलकी लड़कियाँ आपकी इज्जत नहीं करतीं। नवयुवकोंकी तरह ही वे भी आपका सम्मान करती हैं। उन्हें तो सबसे बड़ी शिकायत यही है कि उन्हें घृणा या दयाकी दृष्टिसे क्यों देखा जाय। उनके तौर-तरीके अगर सचमुच दोषपूर्ण हों तो वे उन्हें सुधारनेके लिए तैयार हैं। लेकिन उनकी निन्दा करनेसे पहले उनके दोषको अच्छी तरह सिद्ध कर देना चाहिये। इस संबंधमें वे न तो अबला होनेके बहानेका आश्रय लेना चाहती हैं और न वे न्यायाधीश द्वारा मनमाने तौर पर की जानेवाली अपनी निन्दाको चुपचाप बरदाश्त करनेके लिए तैयार हैं। सत्यका सामना तो करना ही चाहिये। और आधुनिक लड़कीमें सत्यका सामना करनेकी पर्याप्त हिम्मत है।"

मुझे पत्र भेजनेवाली लड़कियोंको शायद इसका पता नहीं है कि चालीस बरससे भी पहले दक्षिण अफ्रीकामें मैंने भारतीय स्त्रियोंकी सेवाका कार्य शुरू किया था जब कि इनमें से किसी लड़कीका शायद जन्म भी नहीं हुआ होगा। मैं तो ऐसा कुछ लिख ही नहीं सकता जो स्त्री-जातिके लिए अपमानजनक हो। स्त्रियोंके प्रति मेरे भीतर प्रतिष्ठाकी भावना इतनी ज्यादा है कि उनके बारेमें यह विचार मेरे मनमें आ ही नहीं सकता कि वे अवगुणोंसे भरी हुई हैं। स्त्रियां तो जैसा कि अंग्रेजीमें उन्हें कहा गया है पुरुषका उत्तम अर्धांग हैं। फिर मैंने जो लेख लिखा था वह लड़कियोंकी कमजोरियोंका ढोल पीटनेके लिए नहीं लिखा बल्कि विद्यार्थियोंके लज्जाजनक व्यवहारका भंडाफोड़ करनेके लिए लिखा था। अलबत्ता रोगका निदान बतलानेके लिए — अगर मुझे ठीक इलाज बतलाना हो — मुझे उन सब बातोंका उल्लेख करना ही चाहिए था जो कि इस रोगकी तहमें हों।

'आधुनिक लड़की' का एक खास अर्थ है। इसलिए मेरी बात कुछ ही लड़कियों तक सीमित रखनेका कोई सवाल नहीं था। परन्तु अंग्रेजी शिक्षा पानेवाली सभी लड़कियां आधुनिक नहीं हैं। मैं ऐसी अनेक लड़कियोंको जानता हूं जिन्हें 'आधुनिक लड़की' की भावनाने स्पर्श तक नहीं किया है। लेकिन कुछ लड़कियां ऐसी जरूर हैं जो आधुनिक लड़कियां बन गई हैं। मैंने जो कुछ लिखा था वह भारतकी विद्यार्थिनियोंको यह चेतावनी देनेके लिए ही लिखा था कि वे आधुनिक लड़कियोंकी नकल करके उस समस्याको और जटिल न बना दें जो पहले ही भारी खतरा सिद्ध हो रही है। क्योंकि जिस समय वह पत्र मुझे मिला था उसी समय आन्ध्रकी एक विद्यार्थिनीका पत्र भी मुझे मिला था जिसमें आन्ध्रके विद्यार्थियोंके व्यवहारकी कड़ी शिकायत की गई थी और उसका जो वर्णन आन्ध्रकी लड़कीने किया था वह लाहौरकी लड़की द्वारा वर्णित व्यवहारसे भी बुरा था। आन्ध्रकी वह लड़की कहती है कि उसकी सादी लड़कियां सादी पोशाक पहनने पर भी नहीं बच पातीं। लेकिन उनमें इतना साहस नहीं है कि वे उन लड़कोंके जंगलीपनका भंडाफोड़ कर दें जो कि अपनी

संस्थाके लिए कलंकरूप हैं। मैं आंध्र विश्वविद्यालयके अधिकारियोंका ध्यान इस विज्ञापनकी ओर आकर्षित करता हूं।

पत्र भेजनेवाली इन प्यारी लड़कियोंको मैं इस बातके लिए निमंत्रित करता हूं कि वे विद्यार्थियोंके जंगली व्यवहारके खिलाफ विद्रोह बोल दें। ईश्वर उन्हींकी मदद करता है जो अपनी मदद स्वयं करते हैं। लड़कियोंको पुरुषके जंगली व्यवहारसे अपनी रक्षा करनेकी कला तो सीख ही लेनी चाहिए।

हरिजन ४–२–'३९

६२
अश्लील विज्ञापन

एक मासिक पत्रमें प्रकाशित एक अत्यन्त बीभत्स पुस्तकके विज्ञापनकी कतरन एक बहनने मुझे भेजी है और लिखा है :

" के पृष्ठों पर नजर डालते हुए यह विज्ञापन मेरे देखनेमें आया। मैं नहीं जानती कि यह मासिक पत्र आपके पास आता है या नहीं। आपके पास यह आता हो तो भी मेरे खयालमें इसकी तरफ नजर डालनेका आपको कभी समय नहीं मिलता होगा। पहले भी एक बार मैंने आपसे अश्लील विज्ञापनों के विषयमें बात की थी। मेरी यह बड़ी इच्छा है कि इस विषयमें आप किसी समय कुछ लिखें। जिस पुस्तकका यह विज्ञापन है उस प्रकारकी पुस्तकोंकी आज बाजारमें बाढ़-सी आ रही है यह बिलकुल सच्ची बात है पर जैसे जवाबदार पत्रोंके लिए क्या यह उचित है कि वे ऐसी गन्दी पुस्तकोंकी बिक्रीको प्रोत्साहन दें? इन चीजोंसे मेरा स्त्री-हृदय इतना अधिक दुःखी होता है कि मैं सिवा आपके और किसीको लिख नहीं सकती। ईश्वरने स्त्रीको एक विशेष उद्देश्यके लिए जो वस्तु दी है उसका विज्ञापन सम्पादकोंकी जेबें भरनेके लिए किया जाय यह चीज इतनी हीन है कि इसके प्रति

मनकी घृणा शब्दोंमें प्रकट नहीं की जा सकती। मैं चाहती हूं कि इस सम्बन्धमें भारतके प्रमुख अखबारों और मासिक पत्रोंकी क्या जवाबदारी है इसके बारेमें आप लिखें। आपके पास आलोचनाके लिए भेज रही हूं। ऐसी यह कोई पहली ही कतरन नहीं है।

इस विज्ञापनमें से कोई अंश मैं यहां उद्धृत नहीं करना चाहता। पाठकोंसे सिर्फ इतना ही कहना चाहता हूं कि जिस पुस्तकका यह विज्ञापन है उसके व्यंग्यपूर्ण लेखोंका वर्णन जितनी अश्लील भाषामें किया जा सकता है उतनी अश्लील भाषाका उपयोग इसमें किया गया है। इस पुस्तकका नाम 'स्त्रीके शरीरका सौंदर्य' है और विज्ञापन देनेवाली फर्म पाठकोंसे कहती है कि जो यह पुस्तक खरीदेगा उसे 'नववधूके लिए नया ज्ञान' और 'संभोग अथवा साथीको रिझानेकी कला' नामक दो पुस्तकें और मुफ्त दी जायगी।

इस प्रकारकी पुस्तकोंका विज्ञापन करनेवालोंको मैं किसी तरह रोक सकता हूं और अपने अखबारों द्वारा मुनाफा उठानेका इरादा प्रकाशकोंसे मैं छुड़वा सकता हूं ऐसी आशा अगर यह बहन रखती है तो यह व्यर्थ है। ऐसी अश्लील पुस्तकों या विज्ञापनोंके प्रकाशकोंसे मैं चाहे जितनी अपील करूं तो भी उससे कोई परिणाम निकलनेवाला नहीं है। किन्तु मैं इस पत्र लिखनेवाली बहनसे और ऐसी ही दूसरी विदुषी बहनोंसे इतना जरूर कहना चाहता हूं कि वे बाहर मैदानमें आवें और जो काम खास करके उनका है और जिसके लिए उनमें विशेष योग्यता है उस कामको वे शुरू कर दें। अकसर देखनेमें आता है कि किसी मनुष्यको बुरा नाम दिया जाता है और कुछ समय बाद वह स्त्री या पुरुष ऐसा मानने लगता है कि वह खुद बुरा है। स्त्रीको 'अबला' कहना उसे बदनाम करना है। मैं नहीं जानता कि स्त्री किस प्रकार अबला है। ऐसा कहनेका अर्थ अगर यह हो कि स्त्रीमें पुरुषके जैसी पाशविक वृत्ति नहीं है या उतनी मात्रामें नहीं है जितनी कि पुरुषमें होती है तो यह आरोप स्वीकार किया जा सकता है। लेकिन यह बात तो स्त्रीको पुरुषकी अपेक्षा अधिक पुनीत बनानेवाली है और स्त्री पुरुषकी अपेक्षा अधिक पुनीत तो है ही। स्त्री अगर प्रहार करनेमें निर्बल है तो कष्ट-सहन करनेमें बलवान है। मैंने

स्त्रीको त्याग और अहिंसाकी मूर्ति कहा है। अपने शील या सतीत्वकी रक्षाके लिए उसे पुरुष पर निर्भर न रहना सीखना है। पुरुषने स्त्रीके सतीत्वकी रक्षा की हो ऐसा एक भी उदाहरण मुझे मालूम नहीं। वह ऐसा करना चाहे तो भी नहीं कर सकता। निश्चय ही रामने सीताके या पांच पाण्डवोंने द्रौपदीके शीलकी रक्षा नहीं की थी। इन दोनों सतियोंने अपने सतीत्वके बलसे ही अपने शीलकी रक्षा की थी। कोई भी मनुष्य अपनी सम्मतिके बिना अपनी इज्जत-आबरू नहीं खोता। कोई नर-पशु किसी स्त्रीको बेहोश करके उसकी लाज लूट ले तो इससे उस स्त्रीके शील या सतीत्वका नाश नहीं होता। इसी तरह कोई दुष्टा स्त्री किसी पुरुषको जड़ बना देनेवाली दवा खिला दे और उससे अपना मनचाहा करवा ले तो इससे उस पुरुषके शील या चरित्रका नाश नहीं होता।

आश्चर्य तो यह है कि पुरुषोंके सौन्दर्यकी प्रशंसामें पुस्तकें बिलकुल नहीं लिखी गईं। तो फिर पुरुषकी विषय-वासनाको उत्तेजित करनेके लिए ही इतना साहित्य क्यों तैयार होना चाहिये? यह हो सकता है कि पुरुषने स्त्रीको जिन विशेषणोंसे भूषित किया है उन विशेषणोंको सार्थक करना उसे पसन्द हो? स्त्रीको क्या यह अच्छा लगता होगा कि उसके शरीरके सौन्दर्यका पुरुष अपनी भोग-लालसाके लिए दुरुपयोग करे? पुरुषके आगे अपनी देहकी सुन्दरता दिखाना क्या उसे पसन्द होगा? यदि हां तो किसलिए? मैं चाहता हूं कि ये प्रश्न सुशिक्षित बहनें खुद अपने दिलसे पूछें। ऐसे विज्ञापनों और ऐसे साहित्यसे उनका दिल दुखता हो तो उन्हें इन चीजोंके खिलाफ निरन्तर युद्ध चलाना चाहिए। ऐसा करें तो तत्क्षणमें ही इन चीजोंका अन्त आ जायगा। स्त्रीमें जिस प्रकार बुरा करनेकी अपार शक्ति है उसी प्रकार भला करनेकी — सबका हित सिद्ध करनेकी शक्ति भी उसमें भरी हुई पड़ी है। यह भान अगर स्त्रीको हो जाय तो कितना अच्छा हो! अगर स्त्री यह विचार छोड़ दे कि वह अबला है और पुरुषके खेलनेकी गुड़िया बनने ही योग्य है तो वह खुद अपना तथा पुरुषका — फिर चाहे वह उसका पिता हो, पुत्र हो या पति हो — परम सुधार करती है और दोनोंके ही लिए इस संसारको अधिक सुखमय बना सकती है। राष्ट्र राष्ट्रके बीच होनेवाले पागलपनभरे युद्धोंसे

और इनमें भी ज्यादा पागलपनभरे समाजकी नीतिकी नींवके विरुद्ध बड़े बानवाले मुहोंसे अगर समाजको अपना संहार नहीं होने देना है तो स्त्रीको पुरुषकी तरह नहीं — जैसे कि कुछ स्त्रियां करती हैं — बल्कि स्त्रीकी तरह इस कार्यमें अपना योग देना ही होगा। अविचारपूर्वक बिना किसी कारणके ही मानव-प्राणियोंका संहार करनेकी जो शक्ति पुरुषमें है उस शक्तिसे उसकी बराबरी करनेसे स्त्री मानव-जातिको सुधार नहीं सकती। पुरुषकी जिस भूलसे पुरुषके साथ साथ स्त्रीका भी विनाश होनेवाला है उस भूलसे पुरुषको बचाना स्त्रीका परम कर्तव्य है। यह बात स्त्रीको समझ लेनी चाहिये। यह बीभत्स विज्ञापन तो सिर्फ यही बताता है कि हवाका रुख किस तरफ है। इसमें बेशर्मीके साथ स्त्रीका अनुचित काम उठाया गया है। दुनियाकी अपनी जातियोंकी स्त्रियोंके शरीर-सौन्दर्य को भी इसने नहीं छोड़ा है।

हरिजनसेवक २१-११-३६

६३

अश्लील विज्ञापनोंको कैसे रोका जाय?

अश्लील विज्ञापन-सम्बन्धी मेरा लेख पढ़कर एक सज्जन लिखते हैं

आपने बताई वैसी अश्लील चीजोंके विज्ञापन जो पत्र-पत्रिकाएं देती हैं उनके नाम जाहिर करके आप अश्लील विज्ञापनोंका प्रकाशन रोकनेके लिए बहुत-कुछ कर सकते हैं।

इन सज्जनने जिस चौकीदारीकी मुझे सलाह दी है उसका भार मैं नहीं ले सकता लेकिन इससे अच्छा एक उपाय मैं सुझा सकता हूं। जनताको अगर यह अश्लीलता अखरती हो तो जिन अखबारों या मासिक पत्रोंमें आपत्तिजनक विज्ञापन निकलें उनके ग्राहक उन अखबारोंका ध्यान इस ओर आकर्षित करें और अगर फिर भी वे अखबार ऐसा करनेसे बाज न आयें तो उन्हें खरीदना बन्द कर दें। पाठकोंको यह जानकर

खुशी होगी कि जिस सज्जनने मुझे अश्लील विज्ञापनोंकी शिकायत भेजी थी उसने इस कोपके भागी मासिक पत्रके सम्पादकको भी इस बारेमें लिखा था और संपादकने इस भूलके लिए खेद प्रकट करते हुए उसे आगेसे न छापनेका वादा किया है।

यह कहते हुए भी मुझे खुशी होती है कि मैंने इस बारेमें जो कुछ लिखा उसका कुछ अन्य पत्रोंने भी समर्थन किया है। नागपुरसे निकलने वाले 'निस्पृह' नामक साप्ताहिकके सम्पादक लिखते हैं :

> "अश्लील विज्ञापनोंके बारेमें 'हरिजन' में आपने जो लेख लिखा है उसे मैंने बहुत सावधानीके साथ पढ़ा। यही नहीं बल्कि मैंने उसका अविकल अनुवाद भी 'निस्पृह' में दिया है और एक छोटीसी सम्पादकीय टिप्पणी भी उस पर मैंने लिखी है।
>
> मैं नमूनेके रूपमें एक विज्ञापन इस पत्रके साथ भेज रहा हूं जो अश्लील न होते हुए भी एक तरहसे अनैतिक तो है ही। इस विज्ञापनमें साफ झूठ है। आम तौर पर गांववाले ही ऐसे विज्ञापनोंके चक्करमें फंसते हैं। मैं ऐसे विज्ञापन लेनेसे हमेशा इनकार करता रहा हूं और इस विज्ञापनवालोंको भी मैं यही लिख रहा हूं। जैसे अखबारमें निकलनेवाली समस्त पाठ्य-सामग्री पर सम्पादककी नजर रहना जरूरी है उसी तरह विज्ञापनों पर नजर रखना भी उसका कर्तव्य है। कोई सम्पादक अपने अखबारका ऐसे लोगों द्वारा उपयोग नहीं होने दे सकता जो भोलेभाले देहातियोंकी आंखोंमें धूल झोंककर उन्हें ठगना चाहते हैं।

हरिजन ९-१-३७

६४
स्त्रियोंकी शिकायत

कल मैंने विषय-विचारिणी समितिके सामने जो बात कही थी वही यहाँ कह दूँ। मेरे नाम ज्योतिसंघकी ओरसे श्रीमती लीलावती देसाईका पत्र आया था। उस पत्रका आशय तो ठीक था परन्तु उसकी भाषा मुझे पसन्द न आय ऐसी थी। उसका आशय यह था कि स्त्रियोंके बारेमें जो कुछ लिखा जाता है वह उन्हें चोट पहुँचाता है। आजके साहित्यमें स्त्रियोंके जो वर्णन आते हैं वे विकृत होते हैं। वे बहनें चिढ़ कर पूछती हैं कि ईश्वरने क्या इसलिए हमारी रचना की है कि आप लोग हमारे शरीरोंका वर्णन करें? जब हम मर जायेंगी तब क्या आप हमारे शरीरोंमें मसाला भर कर उन्हें सुरक्षित रखेंगे? आप लोग ऐसा न मान लें कि हमारा जन्म खाना पकाने और बरतन माँजनेके लिए ही हुआ है। मुझे एक भाईने मनुस्मृति में से चुन चुनकर कुछ चुभनेवाली बातें लिख भेजी हैं। स्त्रीके बारेमें जितना भी बुरा कहा जा सकता है वह सब उन्होंने मनुस्मृति में से चुनकर भेजा है। कुछ स्त्रियाँ बेचारी स्वयं ही अपने विषयमें कहती हैं कि हम अबला हैं हम अनाड़ी हैं हम ढोर हैं लेकिन इस कारणसे क्या सारी स्त्रियों पर यह बात लागू की जा सकती है? यह क्यों न माना जाय कि मनुस्मृति में ऐसे भद्दे श्लोक किसीने बादमें जोड़ दिये हैं?

अब ये बहनें पूछती हैं कि हम जैसी हैं उसी रूपमें हमें क्यों चित्रित नहीं किया जाता? न तो हम रंभायें और अप्सरायें हैं और न हम गुलामी करनेवाली दासियाँ हैं। हम भी पुरुषोंके समान स्वतन्त्र मनुष्य हैं। आप लोग किसलिए गुड़ियोंकी तरह हमारा वर्णन करते हैं? स्त्रियोंके विषयमें बोलते समय आपको अपनी माताका विचार क्यों नहीं आता?

---

* नवम्बर १९३६ में अहमदाबादमें हुई गुजराती साहित्य परिषदकी कार्रवाईकी रिपोर्टसे।

एक समय ऐसा था जब अनेकों बहनें मेरे पास रहती थीं। दक्षिण अफ्रीकामें मैं लगभग ६ परिवारोंकी स्त्रियोंका भाई और पिता बन बैठा था। उनमें रंभायें भी थीं और कुरूप स्त्रियां भी थीं। वे सब अपढ़ स्त्रियां थीं फिर भी मैंने उनके भीतरकी भीरुताको बाहर निकाला और वे पुरुषोंकी तरह बहादुरीसे जेलोंमें गईं।

मैं आपसे कहता हूं कि आप अपनी दृष्टिको बदलें। मुझसे कहा गया है कि आजके साहित्यमें स्त्रीकी स्तुति ही स्तुति भरी है। मुझे स्त्रीकी ऐसी स्तुति — उसके आंख कान नाक तथा दूसरे अंगोंके वर्णन नहीं चाहिये। आप अपनी माताके अंगोंका वर्णन कभी करते हैं? मैं तो आपसे कहता हूं कि जब आप स्त्रीके विषयमें कुछ लिखनेके लिए अपनी कलम उठायें तब अपनी माको आप आंखोंके सामने रखिये। इस विचारके साथ यदि आप लिखेंगे तो आपकी कलमसे जो साहित्य झरेगा वह सुन्दर आकाशसे झरती वर्षाकी तरह होगा और वह साहित्य स्त्री-रूपी भूमिका धरती माताकी तरह पोषण करेगा। परन्तु आज तो आप बेचारी स्त्रीको शांति देनेके बजाय उसके मनको प्रोत्साहित करनेके बजाय उसके मनमें भय पैदा कर देते हैं। वह बेचारी सोचने लगती है कि जैसा मेरा वर्णन किया जाता है वैसी तो मैं नहीं हूं। वैसी मैं किस प्रकार बन सकती हूं? ऐसे वर्णन क्या साहित्यके अनिवार्य विभाग हैं? उपनिषदोंमें कुरानमें या बाइबलमें क्या कोई गंदी और अश्लील बात पढ़नेको मिलती है? तुलसीदासकी रचनाओंमें कुछ मलिन देखनेमें आता है? क्या ये महाग्रन्थ साहित्य नहीं हैं? बाइबल क्या साहित्य नहीं है? कहा जाता है कि अंग्रेजी भाषाका पौना भाग बाइबलका और पाव भाग शेक्सपीयरका बना हुआ है। बाइबलके बिना अंग्रेजी *कहां? कुरानके बिना अरबी कहां? और तुलसीके बिना हिन्दी कहां?* आप लोग किसलिए ऐसा साहित्य नहीं देते? मैंने जो बात कही है उस पर आप सब विचार कीजिये बार बार विचार कीजिये और मेरी बात आपको निरर्थक लगे तो उसे फेंक दीजिये।

हरिजनबन्धु २ -१२-३६

६५
अकाल और जनसंख्या

प्र — इण्डिया ऑफिस मेडिकल बोर्डके सभापति मेजर जनरल सर जॉन मैगॉका कहना है कि "अकाल तो हिन्दुस्तानमें पड़ते ही रहेंगे। सच तो यह है कि हिन्दुस्तानके सामने आज अखण्ड अकाल मुंह बाये खड़ा है। अगर हिन्दुस्तानमें बढ़ती हुई जनसंख्याको घटानेकी कोशिश न की गई तो उसे जबरदस्त मुसीबतका सामना करना पड़ेगा। क्या इस गम्भीर सवाल पर आप अपनी राय जाहिर करेंगे?

उ — मेरे खयालमें अकालके ऐसे उनके कारण देकर उसका जो सच्चा और एकमात्र कारण है उस परसे हमारे ध्यानको हटा दिया जाता है। मैं कई बार कह चुका हूं और फिर कहता हूं कि हिन्दुस्तानके अकाल कुदरतकी नाराजीसे नहीं बल्कि सरकारी हाकिमोंकी लापरवाहीसे जान-अनजानमें पैदा होनेवाली मुसीबत हैं। अगर आदमी कोशिश करे और बुद्धिसे काम ले तो अकालोंको रोकना मुश्किल नहीं है। दूसरे देशोंमें अकालको रोकनेकी ऐसी कोशिशें सफल हुई हैं। लेकिन हिन्दुस्तानमें इस तरह लगातार सोच-समझकर कोई कोशिश की ही नहीं गई है।

बढ़ती हुई जनसंख्याका हौआ कोई नई चीज नहीं है। अक्सर यह हमारे सामने खड़ा किया गया है। जनसंख्याकी वृद्धि कोई टालने लायक संकट नहीं है और न होना चाहिये। उसे कृत्रिम उपायोंसे रोकना एक महान संकट है, फिर चाहे हम उसे जानते हों या न जानते हों। अगर कृत्रिम उपायोंका उपयोग आम तौर पर होने लगे तो वह समूचे राष्ट्रको पतनकी ओर ले जायगा। खूबी इस बातकी है कि इसकी कोई सम्भावना नहीं है। एक ओर हम विषय भोगसे पैदा होनेवाली अनचाही सन्तानका पाप अपने सिर ओढ़ते हैं और दूसरी ओर ईश्वर उस पापको मिटानेके लिए हमें अनाजकी तंगी महामारी और व्याधिके जरिये सजा करता है।

अगर इस तिहरे पापसे बचना हो तो संयमरूपी सफल उपायके जरिये अनचाही सन्ततिको रोकना चाहिये। देखनेवालोंको आज भी यह दिखाई पड़ता है कि कृत्रिम उपायोंसे कैसे बुरे नतीजे आते हैं। नैतिकी चर्चामें पड़े बिना मैं यही कहना चाहता हूँ कि कुत्ते-बिल्लीकी तरह होनेवाली इस सन्तान-वृद्धिको जरूर रोकना चाहिये। लेकिन इस बातका खयाल रखना होगा कि ऐसा करनेसे उसका ज्यादा बुरा नतीजा न निकले। इस बढ़ती हुई प्रजोत्पत्तिको ऐसे उपायोंसे रोकना चाहिये जिनसे जनता ऊपर उठे यानी इसके लिए जनताको उसके जीवनसे सम्बन्ध रखनेवाली तालीम मिलनी चाहिये जिससे एक पापके मिटते ही दूसरे सब पाप अपने-आप मिट जायें। यह सोचकर कि रास्ता पहाड़ी है और उसमें चढ़ाइयाँ हैं, उससे दूर नहीं भागना चाहिये। मनुष्यकी प्रगतिका मार्ग कठिनाइयोंसे भरा पड़ा है। उनसे डरना क्या? उनका तो हमें स्वागत करना चाहिये।

हरिजनसेवक ११-३-'४६

६९

विवाहमें संयम

सूरतके पाटीदार आश्रमसे जिन भाईने श्री नरहरि परीखको हरिजनों और सवर्णोंके विवाह के बारेमें सवाल पूछा है उन्होंने यह दूसरा सवाल भी उठाया है

> विवाह करना और जब तक स्वराज्य न मिले तब तक ब्रह्मचर्यका पालन करना ये दोनों चीजें एकसाथ नहीं बैठती हैं। अगर ब्रह्मचर्य ही रखना हो तो विवाह करनेकी क्या आवश्यकता है? और यदि विवाह करना हो तो ब्रह्मचर्यको बीचमें क्यों लाया जाय? मनुष्य एक सभ्य प्राणी है। विवाह जैसी पवित्र संस्थाको जन्म देकर उसने समाजमें व्यवस्था और न्याय स्थापित करनेकी कोशिश की है। यदि विवाहकी संस्था न होती तो स्त्री-पुरुष-सम्बन्धके सवाल

पर घर, बाजार और गांवमें तरह तरहके झगड़े खड़े होते रहते। विवाह करनेके बाद कामवृत्तिको तमाम खुली छोड़ देनेको तो कोई नहीं कहता। उसमें संयमके लिए जगह है। और संयममें ही गृहस्थाश्रमकी शोभा बढ़ती है। विवाहका पहला हेतु तो स्त्री पुरुषको साथ रहकर एक-दूसरेका विकास करना है। यह तो मानना ही पड़ेगा कि इसमें कामवृत्तिको मर्यादामें रखकर उसकी तृप्ति करना मुख्य उद्देश्य रहा है। स्वराज्य न मिलने तक नये विवाहितोंसे ब्रह्मचर्य पालनकी प्रतिज्ञा कराना उनके जीवनमें असत्य और दंभको दाखिल करना है। इससे उनमें विकृति भी पैदा हो सकती है। जो स्त्री-पुरुष असाधारण दरजेके होंगे वे तो विवाहके बंधनमें पड़ेंगे ही नहीं। विवाह करनेवाले तो सामान्य लोग ही होंगे। अच्छा हुआ कि पतिने बादमें (बापूजीसे) कह दिया कि वह पत्नीके माता बननेके अधिकारको छीन नहीं सकता। इससे बापूजीकी एक तरहसे लाज रह गई। नहीं तो इस तरह ब्रह्मचर्यकी बातसे असत्य और दंभको मदद मिलनेके सिवा दूसरा नतीजा शायद ही निकलता।

स्वराज्य मिलने तक ब्रह्मचर्य पालनेकी प्रतिज्ञाके पक्षपातियोंको बापूजी समझायें यह जरूरी है। मुझे तो यह एक बिलकुल हास्यास्पद बात लगती है।

इस सवालमें यह मान लिया गया है कि विवाह करनेमें पहली चीज विषय भोग है। यह दुःखकी बात है। वास्तवमें विवाहका उद्देश्य स्त्री और पुरुषकी आत्मासे सच्ची मित्रता होना चाहिये और है। उसमें विषय भोगके लिए तो जगह है ही नहीं। जिस विवाहमें विषय-भोगके लिए जगह है वह सच्चा विवाह ही नहीं सच्ची मित्रता ही नहीं। मैंने ऐसे विवाह भी देखे हैं जहां विवाहका हेतु केवल एक-दूसरेका साथ और सेवा ही रहा है। यह सच है कि ऐसे विवाह मैंने इनेगिनोंमें ही देखे हैं। मेरे अपने विवाहित जीवनका उदाहरण अप्रासंगिक न माना जाय तो मैं कहूंगा कि भर जवानीमें विषय भोगको छोड़नेके बाद ही हम पति-पत्नी जिन्दगीका सच्चा आनन्द भोग सके। तभी हमारी जोड़ी सचमुच खिली और हम साथ मिलकर भारतकी और मानव-समाजकी सच्ची सेवा कर

सक। यह बात मैं सत्यके प्रयोग अथवा आत्मकथा में लिख चुका हूं। हमारा ब्रह्मचर्य अच्छीसे अच्छी सेवा-भावनामें से पैदा हुआ था।

हजारों विवाह तो आम तौर पर जैसे हुआ करते हैं वैसे ही होंगे। उनमें विषय-भोग पहली चीज रहेगी। जनमित्र लोग स्वादके लिए खाते हैं। इससे स्वाद मानवका धर्म नहीं बन जाता। थोड़ ही लोग ऐसे हैं कि जो जीवित रहनेके लिए हो खाते हैं। वे ही खानेका धर्म जानते हैं। इसी तरह थोड़ ही लोग स्त्री और पुरुषके पवित्र संबंधका स्वाद लेनेके लिए, ईश्वरको पहचाननेके लिए विवाह करते हैं। सच्चे विवाहका धर्म तो वे ही पहचानते हैं और पालते हैं।

मालूम होता है कि तेन्दुलकर और इन्दुमतीके विवाहके बारेमें पूरी बातें सवाल पूछनेवाले भाई नहीं जानते। उनके विवाहकी प्रतिज्ञामें दोनोंकी इच्छाकी बात थी। प्रतिज्ञा हिन्दुस्तानीमें लिखी गई थी। अखबार वालोंने अपना ही अंग्रेजी अनुवाद प्रकाशित किया। इतनी बात पक्की है कि दोनोंकी ब्रह्मचर्य पालनकी इच्छा थी। यह विवाह विषय-भोगके खातिर नहीं था। दोनों एक-दूसरेको बरसोंसे पहचानते थे। इन्दुमतीके घरके लोगोंकी स्वीकृति बड़ी कठिनाईके बाद मिली थी। बादमें तेन्दुलकरको प्रेम उनके रास्तेमें आई। दोनोंकी बड़ी इच्छा थी कि विवाह आश्रममें हो तो अच्छा। इन्दुमती आश्रममें रह चुकी थी वहां उसे सान्त्वना मिली थी। मैंने माना था कि दोनोंमें खूब मैत्रीभाव है। मैं समझता हूं कि अभी भी ऐसा ही है। मैंने उनके लिए ब्रह्मचर्यको स्वाभाविक चीज माना था।

यह सब होते हुए भी ब्रह्मचर्यमें ढोंगको जगह हो सकती है। इसमें दोष ब्रह्मचर्यका नहीं ढोंगका है। एक अंग्रेज कविने कहा है कि ढोंग एक प्रकारसे अच्छे गुणोंकी तारीफ है। जहां सच्चे सिक्केकी कीमत है वहां झूठा सिक्का सच्चेकी छायामें रहेगा ही। जहां अच्छे गुणोंकी प्रतिष्ठा है वहां बुरे गुणोंका प्रदर्शन भी रहेगा। प्रदर्शनके भयसे अच्छे गुणोंको छोड़ना यह कैसी दुष्टता और मूर्खताकी बात है!

हरिजनसेवक ७-७-'४६

६७

मैंने कैसे शुरू किया?

पाठकोंने देखा होगा कि पिछले हफ्तेसे मैंने 'हरिजन' के लिए लिखना शुरू किया है। यह कहाँ तक चलेगा सो तो मैं नहीं जानता। ईश्वरको चलाना होगा वहाँ तक चलेगा।

सोचने बैठता हूँ तो जिस हालतमें लिखना बन्द किया था वह हालत आज भी मौजूद है। प्यारेलालजी मुझसे दूर पड़े हैं और मेरी दृष्टिसे नोआखालीमें वे बहुत महत्त्वका काम कर रहे हैं। जिसे मैंने महायज्ञ कहा है उसमें वे भाग ले रहे हैं। टाइपिस्ट परशुरामजीने अंग्रेजी विभागका काम ठीकसे हाथमें ले लिया था। वे अपनी इच्छासे अभी अहमदाबादमें जीवणजीकी मदद कर रहे हैं। कनु गांधीकी मुझे बहुत मदद थी मगर वह भी नोआखालीके महायज्ञमें पड़े हुए हैं। दूसरे मदद करनेवाले परिस्थितिवश या दूसरे कारणोंसे बहुत करके लिख नहीं सकते। ऐसी हालतमें 'हरिजन' के लिए लिखने बैठना आम तौर पर पागलपन ही कहा जायेगा। मगर लौकिक दृष्टिसे जो करने लायक नहीं मालूम होता ईश्वरके दरबारमें वह शक्य और आसान हो सकता है। मैं मानता हूँ कि मैं ईश्वरका नचाया नाचता हूँ। अगर यह मेरा भ्रम हो तो भी मुझे वह प्रिय है।

यह ईश्वर कौन है कैसा है? इसकी बहस करना यहाँ मुझे अच्छा लगेगा। मगर वह फिर कभी।

जो विषय हम सबके मन पर सवारी कर रहा है उसकी चर्चा तो मैं रोज शामकी प्रार्थनाके बाद करता ही हूँ। यहाँ जो लिख रहा हूँ वह सात दिनके बाद प्रकट होगा। जो चीज आज हमारे जीवनमें पहली जगह ले रही है उसके लिए इतना अरसा लम्बा गिना जायेगा। इसलिए 'हरिजन' में जीवनके शाश्वत अंगों पर बहस करना ठीक लगता है। उनमें एक ब्रह्मचर्य है। दुनिया मामूली चीजोंकी तरफ दौड़ती है। शाश्वत चीजोंके लिए उसके पास समय ही नहीं रहता। तो भी हम विचार करें तो देखेंगे कि दुनिया शाश्वत चीजों पर ही निभती है।

ब्रह्मचर्य किसे कहते हैं? जो हमें ब्रह्मकी ओर ले जाय वह ब्रह्मचर्य है। इसमें जननेंद्रियका संयम आ जाता है। वह संयम मन, वाणी और कर्मसे होना चाहिये। अगर कोई मनसे भोग करे और वाणी तथा स्थूल कर्म पर नियंत्रण रखे तो वह ब्रह्मचर्यमें नहीं चलेगा। मन चंगा तो कठौतीमें गंगा। यदि मन पर नियंत्रण हो जाय तो वाणी और कर्मका संयम बहुत आसान हो जाता है। मेरी कल्पनाका ब्रह्मचारी स्वभावतः तन्दुरुस्त होगा, उसका सिर तक नहीं दुखेगा, वह कुदरती तौर पर लम्बी उमरवाला होगा, उसकी बुद्धि तेज होगी, वह आलसी नहीं होगा। शारीरिक और मानसिक काम करनेमें वह थकेगा नहीं और उसकी बाहरी सुघड़ता सिर्फ दिखावा न होकर भीतरका प्रतिबिंब होगी। ऐसे ब्रह्मचारीमें स्थितप्रज्ञके सब लक्षण देखनेमें आयेंगे।

ऐसा ब्रह्मचारी हमें कहीं दिखाई न पड़े तो उससे घबरानेकी कोई बात नहीं।

जो स्थिरवीर्य है, जो ऊर्ध्वरेता है, उसमें ऊपरके लक्षण देखनेमें आवें तो कौन बड़ी बात है? मनुष्यके जिस वीर्यमें अपने जैसा जीव पैदा करनेकी ताकत है, उस वीर्यको ऊंचा ले जाना ऐसी-वैसी बात नहीं हो सकती। जिस वीर्यकी एक बूंदमें इतनी ताकत है उसकी हजारों बूंदोंकी ताकतका माप कौन लगा सकता है?

यहां एक जरूरी बात पर विचार कर लेना चाहिये। पतंजलि भगवानके पांच महाव्रतोंमें से किसी एकको लेकर उसकी साधना नहीं की जा सकती। यह हो सकता है तो सिर्फ सत्यके बारेमें ही, क्योंकि दूसरे चार व्रत तो सत्यमें छिपे हुए हैं, और इस युगके लिए तो पांच ही नहीं परन्तु ग्यारह व्रतोंकी जरूरत है। विनोबाने उन्हें मराठीमें सूत्ररूपमें रख दिया है :

अहिंसा सत्य अस्तेय ब्रह्मचर्य असंग्रह
शरीर-श्रम अस्वाद सर्वत्र भय-वर्जन।
सर्वधर्मी समानत्व स्वदेशी स्पर्श-भावना
ही एकादश सेवावीं नम्रत्वें व्रतनिश्चयें।

ये सब व्रत सत्यके पालनमें से निकाले जा सकते हैं। मगर जीवन इतना सरल नहीं है। एक सिद्धांतमें से अनेक उप-सिद्धांत निकाले जा

सकते हैं। तो भी एक सबसे बड़े सिद्धांतको समझनेके लिए अनेक उप-सिद्धांत जानने पड़ते हैं।

यह भी समझना चाहिये कि सब व्रत समान हैं। एक व्रत टूटा कि सब टूटे। हमें आदत पड़ गई है कि सत्य और अहिंसाके व्रतभंगको हम क्षमा कर सकते हैं। इन व्रतोंको तोड़नेवालेकी तरफ हम अंगुली नहीं उठाते। अस्तेय और अपरिग्रह क्या है, सो तो हम समझते ही नहीं। परन्तु स्वीकार हुआ ब्रह्मचर्य-व्रत टूटा तो तोड़नेवालेका बुरा हाल होता है। जिस समाजमें ऐसा होता है, उसमें कोई बड़ा दोष होना चाहिये। ब्रह्मचर्यका संकुचित अर्थ जिससे वह निस्तेज बनता है। उसका पूरा पालन नहीं होता सच्ची कीमत नहीं आंकी जाती और दंभ बढ़ता है। कमसे कम इस व्रतका पूरा स्थूल पालन भी असंभव नहीं तो बहुत कठिन तो होता ही है। इसलिए सब व्रतोंको एकसाथ लेना चाहिए। ऐसा हो तभी ब्रह्मचर्यकी व्याख्या सिद्ध की जा सकती है। आजकी भाषामें वही सच्चा ब्रह्मचारी है जो एकादश व्रतका पालन मनसे वाणीसे और कर्मसे करता है।

हरिजनसेवक ८-६-'४७

६८

ब्रह्मचर्यकी रक्षा

मैंने पिछले हफ्ते जिस ब्रह्मचर्यकी चर्चा की थी उसके लिए कैसी रक्षा होनी चाहिये। जवाब तो सीधा है। जिसे रक्षाकी जरूरत हो वह ब्रह्मचर्य ही नहीं है। परन्तु यह कहना आसान है इसे समझना और इस पर अमल करना बहुत कठिन है।

इतना तो साफ है कि यह बात पूर्ण ब्रह्मचारीके लिए ही सच्ची है। लेकिन जो मनुष्य ब्रह्मचारी बननेकी कोशिश कर रहा है उसके लिए तो अनेक बाड़ोंकी जरूरत है। आमके छोटे पेड़को सुरक्षित रखनेके लिए उसके चारों तरफ बाड़ लगानी पड़ती है। छोटा बच्चा पहले मांकी गोदमें सोता है फिर पालनेमें सोता है और फिर चालन-गाड़ी लेकर चलता है। जब बड़ा होकर खुद चलने-फिरने लगता है तब वह गाय

सहारा छोड़ देता है। न छोड़े तो उसे नुकसान होता है। ब्रह्मचर्यको भी यही बात लागू होती है।

ब्रह्मचर्य एकादश व्रतोंमें से एक व्रत है, यह पिछले प्रश्नमें मैं कह चुका हूं। इस परसे यह कहा जा सकता है कि ब्रह्मचर्यकी रक्षा या बाड़ एकादश व्रतोंका पालन है। लेकिन एकादश व्रतोंको कोई बाड़ न माने। बाड़ तो किसी खास स्थितिके लिए ही होती है। वह स्थिति बदली और बाड़ गई। परन्तु एकादश व्रतका पालन तो ब्रह्मचर्यका जरूरी अंग है। उसके बिना ब्रह्मचर्यका पालन नहीं हो सकता।

आखिरमें ब्रह्मचर्य मनकी स्थिति है। बाहरी आचार या व्यवहार उसकी पहचान और उसकी निशानी है। जिस पुरुषके मनमें जरा भी विषय-वासना नहीं रही वह कभी विकारके वश नहीं होगा। वह किसी स्त्रीको चाहे जिस स्थितिमें देखे चाहे जिस रूप-रंगमें देखे तो भी उसके मनमें विकार पैदा नहीं होगा। यही स्त्रीके बारेमें समझना चाहिये। लेकिन जिसके मनमें विकार उठा ही करते हैं उसे तो सगी बहन या बेटीको भी नहीं देखना चाहिये। मैंने अपने कुछ मित्रोंको यह नियम पालनेकी सलाह दी थी। और, जिन्होंने इसका पालन किया है उन्हें इससे लाभ हुआ है। अपने बारेमें मेरा यह अनुभव है कि जिन चीजोंको देखकर दक्षिण अफ्रीकामें मेरे मनमें कभी विकार पैदा नहीं हुआ था दक्षिण अफ्रीकासे वापस आने पर उन्हींको देखकर मेरे मनमें विकार पैदा हुआ। और, उसे शान्त करनेमें मुझे बहुत मेहनत करनी पड़ी। यह बात सिर्फ जननेन्द्रियके बारेमें ही सच थी ऐसा नहीं। मनुष्यको शोभा न देनेवाले डरके बारेमें भी यही बात सच पड़ी और मैं शरमिन्दा हुआ। बचपनमें मैं स्वभावसे डरपोक था। दीयेके बिना मैं आरामसे सो नहीं सकता था। मुझे पता नहीं कि आज अगर मैं रास्ता भूल जाऊं और काली रातमें घने जंगलमें भटकता होऊं तो मेरी क्या स्थिति हो? मेरा राम तो मेरे पास है यह खयाल भी कहीं उस समय भूल जाऊं तो? अगर बचपनका डर मेरे मनसे बिलकुल निकल न गया हो तो मैं मानता हूं कि निर्जन जंगलमें निडर रहना जननेन्द्रियके संयमसे भी

ज्यादा कठिन है। जिनकी यह स्थिति हो वह मेरी व्याख्याका ब्रह्मचारी तो नहीं ही गिना जायेगा।

ब्रह्मचर्यकी जो मर्यादा हम लोगोंमें मानी जाती है उसके अनुसार ब्रह्मचारीको स्त्रियों पशुओं और नपुंसकोंके बीच नहीं रहना चाहिये। ब्रह्मचारी अकेली स्त्री या स्त्रियोंके समूहको उपदेश न करे। वह स्त्रियोंके साथ एक आसन पर न बैठे। स्त्रियोंके शरीरका कोई हिस्सा वह न देखे। दूध दही घी वगैरा चिकनी चीजें न खाये। स्नान-मर्दन न करे। यह सब मैंने दक्षिण अफ्रीकामें पढ़ा था। वहां जननेन्द्रियका संयम करनेवाले पश्चिमके स्त्री-पुरुषोंके बीच मैं रहता था। मैं उन्हें इन सब मर्यादाओंको तोड़ते हुए देखता था। मैं खुद भी उनका पालन नहीं करता था। यहां आकर भी नहीं कर सका। दूध दही वगैरा मैं हठपूर्वक छोड़ता था। उसका कारण दूसरा था। इसमें मैं हारा। अभी भी अगर मुझे ऐसी कोई वनस्पति मिल जाये जो दूध-घीकी जरूरत पूरी कर सके तो मैं फौरन दूध वगैरा प्राणिज चीज छोड़ दूं और मेरी खुशीका पार न रहे। लेकिन यह तो दूसरी बात हुई।

ब्रह्मचारी कभी निर्वीर्य नहीं होता। वह प्रतिदिन वीर्य उत्पन्न करता है और उसे इकट्ठा करके प्रतिदिन उसे बढ़ाता जाता है। उसे कभी बुढ़ापा नहीं आता। उसकी बुद्धि कभी कुण्ठित नहीं होती।

मुझे लगता है कि जो ब्रह्मचारी बननेकी सच्ची कोशिश कर रहा है उसे भी ऊपर बताई हुई बाड़ोंकी मर्यादाओंकी जरूरत नहीं है। ब्रह्मचर्य जबरदस्तीसे यानी मनसे विरुद्ध जाकर पालनेकी चीज नहीं। वह जबरदस्तीसे नहीं पाला जा सकता। यह तो मनको वशमें करनेकी बात है। जो अन्तरमें पतन पर भी स्त्रीको छूनेसे भागता है वह ब्रह्मचारी बननेकी कोशिश ही नहीं करता।

इस वचनका मतलब यह नहीं कि लोग स्वच्छन्द बन जायें। इसमें तो सच्चा संयम पालनेकी बात बताई गई है। इसके लिए यहां कोई जगह हो ही नहीं सकती। जो छिपे तौरसे विषय-सेवनके लिए इस लेखका उपयोग करेगा वह दंभी और पापी ही गिना जायेगा।

ब्रह्मचारीको लकड़ी बाड़से मागना चाहिये। उसे अपने लिए अपनी बाड़ स्वयं बना लेनी चाहिये। जब उसकी जरूरत न रहे तब उसे छोड़ देना चाहिये। इस लेखका उद्देश्य तो यह है कि हम सच्चे ब्रह्मचर्यको पहचानें। उसकी कीमतको जान लें और ऐसे मूल्यवान ब्रह्मचर्यका पालन करें। इसमें देशसेवाका सच्चा ज्ञान रहा है इससे देशसेवा करनेकी शक्ति भी बढ़ती है।

हरिजनसेवक १५-६-'४७

९९

एक उलझन

स्त्री और पुरुषके सबंधोंके बारेमें मेरे मनकी स्थिति कुछ अजीब-सी है। मैंने आपको लिखा ही है कि कुछ बन्धन और मर्यादायें मैं रखने ही वाला हूं — और रखी भी हैं। लेकिन जब सोचता हूं तो अपनी स्थिति मुझे त्रिशंकु जैसी दिखाई देती है। एक ओर मुझे लगता है कि स्त्री-पुरुषके संबंधको ज्यादा कुदरती बनानेसे बुराई और पापाचार कम होगा। दूसरी ओर ऐसा लगता है कि एक-दूसरेको छूनेसे बुराई पैदा हुए बिना रह ही नहीं सकती। यहांकी अदालतोंमें जब भाई-बहन और बाप-बेटीके मुकदमे आते हैं तब भी ऐसा लगता है कि उन लोगोंने एक-दूसरेका स्पर्श जब शुरू किया तब उसमें दोष नहीं था। मुझे लगता है कि स्पर्शसुखकी वजहसे आदमी दुष्ट हो तो एक महीने या एक हफ्तेमें और ज्यादा हो तो धीरे धीरे १ बरसमें भी पापकी तरफ झुके बिना नहीं रह सकता। बचपनमें पाई हुई तालीमसे जो विचार बन गये हैं उनमें और आजकलके विचारकोंकी पुस्तकें पढ़नेसे जो विचार आते हैं उनमें हमेशा झगड़ा चला करता है। यह भी खयाल आता है कि स्पर्शमात्र छोड़ देनेसे क्या काम चल सकेगा? मैं तो

अभी तक किसी निर्णय पर नहीं पहुँच पाया हूँ। लेकिन थोड़ेमें मेरी यही स्थिति है।

बहुतेरे नौजवान लड़के-लड़कियोंकी यही स्थिति होती है। उनके लिए सीधा रास्ता एक ही है। उन्हें स्पर्शमात्रका त्याग करना ही चाहिये। पुस्तकोंमें लिखी हुई मर्यादायें उस उस समयके अनुभवके आधार पर बनाई गई हैं। लेखकोंके लिए वे जरूरी भी थीं। साधकको अपने लिए उनमें से कुछ मर्यादायें चुन लेनी होंगी या दूसरी नई मर्यादायें बना लेनी होंगी। आखिरी मंजिलको बीचमें रखकर उसके आसपास एक घेरा खींचें तो मंजिल तक पहुंचनेके कई रास्ते दिखाई देंगे। उनमें से जिसे जो रास्ता आसान मालूम हो उस पर वह चले और मुकाम पर पहुंचे।

जिस साधकको अपने-आप पर भरोसा नहीं है, वह अगर दूसरोंकी नकल करने लगे तो जरूर ठोकर खायगा।

इतना सावधान कर देनेके बाद मैं कहूंगा कि इंग्लैंडकी अदालतोंमें चलनेवाले मुकदमोंके या प्रेमके उपन्यास पढ़कर ब्रह्मचर्यका रास्ता खोजना आकाशका फूल लाने जैसी व्यर्थ कोशिश है। सच्चा इंग्लैंड वहांकी अदालतोंमें या उपन्यासोंमें नहीं है। इन दोनोंका अपनी अपनी जगह भले कुछ उपयोग हो परन्तु ब्रह्मचर्यकी साधना करनेवालोंको इन दोनोंको छूना भी नहीं चाहिये।

इंग्लैंडके या बड़े साधकोंके दिलमें तो इस पत्र लिखनेवाले भाईकी तरह उलझनें नहीं पैदा होतीं। क्योंकि वे सब जानते हैं कि उनका राम उनके दिलमें बसता है। वे न अपने-आपको धोखा देते हैं और न दूसरोंको धोखा देते हैं। उनकी बहन उनके लिए बहन ही है और मां मां ही है। ऐसे साधकके लिए सारी स्त्रियां बहन या मां हैं। उसे कभी यह ख्याल भी नहीं आता कि स्पर्शमात्र बुरा है। उसमें से दोष पैदा होनेका उसे डर नहीं रहता। वह सारी स्त्रियोंमें उसी भगवानको देखता है जिसे वह अपनेमें देखता है।

ऐसे लोग हमने नहीं देखे इसलिए यह मानना कि वे हो ही नहीं सकते घमण्डकी निशानी है। इससे ब्रह्मचर्यकी महिमा घटती है। ईश्वरको हमने नहीं देखा या ईश्वरको देखनेवाला कोई आदमी हमें नहीं मिला,

इसलिए ईश्वर है ही नहीं यह माननेमें जितनी भूल है उतनी ही बड़ा धर्मकी शक्तिको अपने नापसे नापनेमें है।

हरिजनसेवक ९–७–'४७

७०

पुराने विचारोंका बचाव

कुछ दिन पहले मैंने एक पत्रका कुछ हिस्सा हरिजनसेवक में दिया था। उस परसे पत्र लिखनेवाले भाई लिखते हैं

> मेरे ग्यारह साल पहले लिखे हुए पत्र पर आपने जो विचार बताये हैं उनसे मैं पूरी तरह सहमत हूं। परन्तु उन पर चलनेकी हिम्मत मुझमें कम है। मनमें आता है कि आपके विभमें हाथ डाला ही क्यों जाय? आप आदर्श पुरुषकी कल्पना जनताके सामने रखें तो भी लोक-समझकी दृष्टिसे यह अच्छा होगा कि आप लोगोंको मर्यादा और बन्धन रखनेकी सलाह दें। यह ज्यादा सुरक्षित होगा। स्त्री-पुरुषका भेद माननेकी जरूरत नहीं। यह स्त्री मेरी है ऐसा भाव मनसे निकाल देना चाहिये। बिलकुल तात्त्विक भूमिकाका ही प्रचार करके कम्यूनिस्ट पार्टीने अनजानमें हमारे समाजको जो नुकसान पहुंचाया है वह सचमुच भयानक है। श्री किशोरलाल मशरूवाला तो यहां तक कहते हैं कि स्त्रीके साथ एक चटाई पर भी नहीं बैठना चाहिये। इसमें उनका पुरानपंथीपन हो, तो भी उनकी बात मानने लायक तो है। यदयदाचरति श्रेष्ठः तत्तदेवेतरो जनः गीताकी यह चेतावनी भूली नहीं जा सकती। उच्च कक्षाको पहुंचे हुए लोगोंको यह डर मनमें रखना चाहिये कि मामूली शक्तिवाले लोग बिना समझे सिर्फ उनकी नकल ही करेंगे। इसलिए उन्हें बन्धनोंका पालन करके अपनी कक्षासे नीचेका ही आचरण करना चाहिये। मुझे लगता है कि इसीमें समाजका

कल्याण है। हां, एक सचोट तर्क आपके पक्षमें है। वह यह कि उच्च कक्षा तक पहुंच सकनेका उदाहरण जगतके सामने रखनेवाला कोई न हो तो समाजकी श्रद्धाका लोप हो जावे। मनुष्यके भीतर रहनेवाले भगवानकी ज्योति किसीको तो बतानी ही चाहिये। इसके जवाबमें मैं इतना ही कहूंगा कि इस बातका निर्णय जमा-खर्चका हिसाब निकालकर श्रेष्ठ पुरुषको स्वयं करना होगा।

यह टीका मुझे अच्छी लगती है। सबको अपनी कमजोरी पहचाननी चाहिये। जान-बूझकर जो उसे छिपाता है और भगवानकी नकल करने जाता है, वह ठोकर खायगा ही। इसीलिए मैंने कहा है कि हरएकको अपनी मर्यादा खुद बांधनी चाहिये।

मुझे नहीं लगता कि श्री किशोरलालभाई जिस चटाई पर स्त्री बैठी हो उस पर बैठनेसे इनकार करेंगे। अगर ऐसा हो तो मुझे आश्चर्य होगा। मैं तो ऐसी मर्यादाको समझ ही नहीं सकता। मैंने उनके मुंहसे ऐसा कभी नहीं सुना।

स्त्रीकी निर्दोष संगतिकी तुलना सापके विषसे करनेमें मैं तो अज्ञान ही पाता हूं। इसमें स्त्री-जातिका और पुरुषका अपमान है। क्या जवान लड़का अपनी माके पास नहीं बैठेगा? बहनके पास नहीं बैठेगा? रेलमें उनके साथ एक बेंच पर नहीं बैठेगा? ऐसे प्रसंगसे भी जिसका मन चंचल और विकारवश होता हो उसकी स्थिति कितनी दयाजनक मानी जायेगी?

मैं इस वचनको मानता हूं कि लोक-समाजके लिए बहुत कुछ छोड़ना चाहिये। परन्तु इसमें भी विवेकसे काम लेना होगा। यूरोपमें नग्नोंका एक पंथ है। उन्होंने मुझे उसमें खींचनेकी कोशिश की। मैंने साफ इनकार कर दिया और कहा, लोग इस तरहकी बात सहन नहीं कर सकते। जब तक असली पवित्रता हममें न हो तब तक उसका (नग्नताका) प्रदर्शन नहीं किया जा सकता। तात्त्विक दृष्टिसे मैं यह मानता हूं कि स्त्री-पुरुष बिलकुल नंगे हों तो भी उससे कुछ नुकसान नहीं होना चाहिये। आदम और हौवा अपने निर्दोष जमानेमें नंगे ही घूमते थे। जब उन्हें अपने नंगेपनका भान हुआ तब उन्होंने अपने अंग ढकने शुरू किये और वे स्वर्गसे निकाल दिये गये। हम गिरे हुए हैं। इसे भूलकर यदि चलेंगे तो

हमें नुकसान ही होगा। इस उदाहरणको मैं लोक-संग्रहकी आवश्यकतामें गिनाऊँगा।

परन्तु लोक-संग्रहकी दलील देकर मुझ पर दबाव डाला गया कि मैं छूआछूत मिटानेकी बातको छोड़ दूं। लोक-संग्रहकी दृष्टिसे ही बरसकी लड़कीकी शादी करनेका रिवाज चालू रखनेकी बात कही गई है। लोक-संग्रहके खातिर समुद्र-पार जानेसे लोगोंको रोका जाता था। ऐसी और भी कई मिसालें दी जा सकती हैं। लेकिन घरके कुएंमें हम तैरें, डूब न मरें।

बन्धन ऐसे तो नहीं होने चाहिये कि स्त्री-पुरुषका भेद हम भूल ही न सकें। हमें याद रखना चाहिये कि हमारे अनेक कार्योंमें इस भेदके लिए कोई जगह नहीं है। दरअसल इस भेदको याद करनेका मौका एक ही होता है और वह तब होता है जब काम हम पर सवारी करता है। जिन स्त्री-पुरुषों पर सारे दिन ही काम सवार रहता है उनके मन सड़े हुए हैं। मैं मानता हूं कि ऐसे लोग लोक-कल्याण नहीं कर सकते। मनुष्यकी स्थिति सामान्यतः ऐसी नहीं होती। करोड़ों देहाती अगर सारे दिन इसी चीजका खयाल किया करें, तो वे किसी भी शुभ कामके लायक नहीं रह सकते।

हरिजनसेवक २७–७–'४७

७१

संतति नियमनके कृत्रिम साधनों पर

अपनी पिछली बंगाल-यात्राके दिनोंमें कार्यकर्ताओंकी एक सभामें सवालोंका जवाब देते हुए गांधीजीने कहा था कि जो स्त्री अपने बच्चोंको मातृभूमिकी सेवाके लिए सही तौर पर तैयार करती है, उसे इससे ज्यादा और कुछ करनेकी जरूरत नहीं। एक मित्रने इसका यह मतलब निकाला कि गांधीजीकी इस बातसे लोगोंकी इस प्रचलित धारणाका समर्थन होता है कि घर संभालना और बच्चोंकी अच्छी तरह परवरिश करना ही स्त्रियोंका कर्तव्य है। इस पर गांधीजी हंस दिये और बोले "ऐसी बातोंमें लोग हमेशा अपने मतलबका अर्थ निकाल लिया करते हैं। जो स्त्री-पुरुष विषय-भोगमें रचे-पचे रहते हैं वे अपने बच्चोंको कभी भी मातृभूमिकी सेवाके लिए तैयार नहीं कर सकते। जो संयमके नियमका पालन करके जीवन बिताते हैं वे ही यह काम कर सकते हैं और ऐसे लोगोंको घरसे बाहरके कार्योंमें अपनी सेवा देनेके लिए हमेशा समय भी मिल जाता है।

कृत्रिम साधनों द्वारा संतति-नियमनके खिलाफ गांधीजीके विचार बहुत कड़े हैं। वे कहते हैं संतति-नियमनके कृत्रिम साधनोंका उपयोग स्त्री-जातिके लिए अपमानजनक है। एक वेश्याके और संतति-नियमनके साधनोंका उपयोग करनेवाली स्त्रीके बीच फर्क सिर्फ यही है कि पहली अनेक पुरुषोंको अपना शरीर बेचती है जब कि दूसरी एक पुरुषको। जब तक पत्नीको सन्ततिकी इच्छा न हो तब तक पतिको कोई अधिकार नहीं कि वह उसे हाथ लगाये और स्त्रीमें इतना संकल्प-बल होना चाहिये कि वह अपने पतिकी इच्छाके वशमें न हो।"

सुशीला नय्यर

हरिजनसेवक ५-५-'४६

परिशिष्ट

१

कुछ महत्त्वपूर्ण सूचनायें

[अंग्रेजी पुस्तक 'सेल्फ-रेस्ट्रेन्ट वर्सेस सेल्फ-इंडल्जेन्स' में गांधीजीके संयम तथा सन्तति-नियमन विषयक लेखोंका संग्रह किया गया है। उसकी दूसरी आवृत्तिकी प्रस्तावना इस प्रकार है]

इस पुस्तककी पहली आवृत्ति प्रकट होनेके लगभग एक ही हफ्तेके भीतर बिक गई, यह मेरे लिए आनन्दकी बात है। इस पुस्तकमें एकत्र की हुई लेखमालाको पढ़कर पाठकोंने मुझे जो पत्र भेजे हैं वे ऐसी पुस्तककी आवश्यकताको सिद्ध करते हैं। जिन्होंने विषय-भोगको ही अपना धर्म नहीं बनाया है परन्तु जो अपने खोये हुए आत्म-संयमको पुनः प्राप्त करनेके प्रयत्नमें लगे हैं — सामान्य परिस्थितियोंमें यही स्वाभाविक स्थिति होनी चाहिये — उनके लिए इस पुस्तकका पठन सहायक होगा। उनके मार्ग-दर्शनके लिए मैं नीचेकी सूचनायें दे रहा हूं

१ आप यदि विवाहित हों तो आप याद रखें कि आपकी पत्नी आपकी मित्र, संगिनी और सहयोगी है, विषय-भोग भोगनेका साधन नहीं है।

२ आत्म-संयम आपके जीवनका नियम है। इसलिए स्त्री-संग दोनोंकी इच्छा हो तभी हो सकता है और वह भी दोनोंके स्वीकार किये हुए नियमोंकी मर्यादाका पालन करके ही।

३ आप अविवाहित हों तो आपको अपने लिए, समाजके लिए तथा भविष्यके अपने साथीके लिए अपनी पवित्रताकी रक्षा करनी चाहिये। आप वफादारीकी ऐसी भावनाका अपने भीतर विकास करेंगे, तो वह आपके लिए हर प्रकारके प्रलोभनके सामने अमोघ कवचका काम करेगी।

४ हमसे अगोचर रहनेवाली शक्तिका — ईश्वरका — सदा विचार करना चाहिये। उस शक्तिको हम आंखोंसे देख नहीं सकते, परन्तु वह

हमारी चौकी करती रहती है और हमारे प्रत्येक अशुद्ध विचारको वह जानती है ऐसा अनुभव हम सब अपने जिम्मे करते हैं। और आपको अनुभव होगा कि वह शक्ति सदा ही हमारी सहायता करती है।

५ संयमय जीवनके नियम विषय-भोगमें भरे जीवनके नियमोंसे अवश्य ही भिन्न होने चाहिए। इसलिए आपको अपने सहवास पर, अपने वाचन पर, अपने मनोरंजनके स्थानों पर तथा अपने आहार पर नियंत्रण रखना चाहिये।

आप भले तथा शुद्ध मनुष्योंका सहवास ही चाहें।

वासनाओंको उत्तेजित करनेवाले उपन्यास और मासिक पत्र कभी न पढ़ने चाहिए। मनुष्यताको टिकाने रखें ऐसी ही पुस्तकें आपको पढ़नी चाहिए। मार्गदर्शन तथा पाठके लिए कोई एक पुस्तक आपको सदा ही अपने पास रखनी चाहिए।

नाटक और सिनेमासे आपको बचना चाहिए। सच्चा मनोरंजन वही है जिससे आपकी शक्ति क्षीण न हो बल्कि आपको स्फूर्ति और ताजगी मिले। इसलिए आप भजन-मंडलमें जाइए। वहां गाये जानेवाले भजनोंकी वाणी और स्वर आपकी आत्माको उन्नत बनायेंगे।

आप अपनी जीभको संतुष्ट करनेके लिए नहीं परन्तु अपनी भूख शान्त करनेके लिए खाइए। विषयी मनुष्य खानेके लिए जीता है, संयमी मनुष्य जीनेके लिए खाता है। इसलिए आपको तेज मिर्च-मसालोंसे, वासनाओंको उत्तेजित करनेवाले उत्तेजक पेयोंसे तथा भले-बुरेका विवेक करनेवाली शक्तिको कुंठित कर देनेवाली मादक वस्तुओंसे हमेशा दूर रहना चाहिए।

६ जब आपकी कामवृत्तियां आपके ऊपर सवार हो जायं और आपको लाचार बना डालें तब आप घुटने टेककर ईश्वरकी सहायता मांगें। रामनाम अचूक मददका काम करता है। बाहरी मददके रूपमें आप कटिस्नान करें। अर्थात् ठंडे पानीसे भरे हुए टबमें अपने पैर बाहर रखकर बैठें। ऐसा करनेसे आपकी उत्तेजित बनी हुई वृत्तियां तुरन्त शांत पड़ जायंगी। आप शरीरसे कमजोर हों और आपको सर्दी लग जानेका

डर रहता हो तो बात अलग है; लेकिन अगर यह डर न हो तो आप कुछ मिनट ठंडे पानीके टबमें बैठें।

७ बड़े सवेरे और रातको सोनेसे पहले खुली हवामें तेजीसे घूमनेकी कसरत करें।

८ जो मनुष्य रातको जल्दी सोकर सुबह जल्दी उठता है उसका बल, बुद्धि और धन खूब बढ़ते हैं तथा उसका शरीर सुखी रहता है — यह कथन बड़ा विवेकपूर्ण है। रातको ९ बजे सोकर सवेरे ४ बजे उठनेका नियम बहुत अच्छा है। सोते समय आपका पेट खाली हो जाना चाहिये। इसलिए आपको अपना अंतिम भोजन शामको छह बजे बाद नहीं करना चाहिये।

९ याद रखिये कि मनुष्य जीवमात्रकी सेवा करनेके लिए तथा इस प्रकार ईश्वरका गौरव और प्रेम प्रकट करनेके लिए ईश्वरका प्रतिनिधि बनकर जगतमें आता है। अगर सेवा ही आपका एकमात्र आनन्द बन जाय तो आपको जीवनमें दूसरा कोई आनन्द नहीं खोजना पड़ेगा।

२

स्पष्ट चेतावनी

['सेल्फ-रेस्ट्रेन्ट वर्सेस सेल्फ-इंडल्जेन्स' की तीसरी आवृत्तिकी गांधीजी द्वारा लिखी हुई प्रस्तावना।]

जनताने इस पुस्तककी तीसरी आवृत्तिकी मांग की, यह जानकर मुझे आनन्द होता है। मेरे पास समय होता तो इसमें एक या दो लेख जोड़नेकी मेरी इच्छा थी। परन्तु इसके लिए मैं पुस्तकके प्रकाशनको रोक नहीं सकता। यह काम करनेके लिए आवश्यक समय मिलनेका मुझे विश्वास होता तो मैं ऐसा करता।

पूछताछ करनेवाले लोगोंके जो पत्र मुझे नियमित रूपसे मिलते हैं उनमें लिखी बातोंको जानकर मैं एक स्पष्ट चेतावनी देना चाहता हूं। संयममें विश्वास रखनेवालोंको निराश और निरुद्यम कभी नहीं होना चाहिये।

मुझे लिखे जानेवाले पत्रोंसे पता चलता है कि बहुतसे पत्रलेखक संयम पालनमें मिलनेवाली निष्फलताका ही मनमें सदा रटन किया करते हैं। अन्य सारी अच्छी बातोंकी तरह संयम-पालनके लिए भी अटूट धीरजकी आवश्यकता है। इससे खिन्न या निराश होनेका कोई कारण ही नहीं है। और मनमें सदा एक ही बातको घोटते रहना ठीक नहीं है। बुरे विचारोंको मनसे निकाल फेंकनेके लिए इरादतन् कोशिश नहीं करनी चाहिये। यह प्रक्रिया स्वयं ही एक प्रकारका विषम-भोग है।

इसका उत्तम उपाय शायद अप्रतिकार अर्थात् बुरे विचारोंके अस्तित्वकी अवगणना करना और हमारे सामने जो कर्तव्य खड़ा हो उसीके पालनमें लीन रहना है। इसका अर्थ यह हुआ कि इसके लिए एसा कोई सेवाकार्य होना चाहिये जिसमें हमारे मन हमारी आत्मा तथा हमारे शरीर तीनोंको केन्द्रित करना आवश्यक हो। निकम्मे आदमीका मन शैतानका घर बन जाता है—यह कथन बुरे विचारोंको मनसे निकालनेकी बात पर सबसे ज्यादा लागू पड़ता है। हमारा ध्यान सेवाकार्य पर ही निरन्तर केन्द्रित रहे, तो फिर बुरे विचारोंके लिए और खास करके बुरे कार्योंके लिए मौका ही नहीं रह जायगा। इसलिए वैयक्तिक तथा सामाजिक प्रवृत्तिके लिए जो आत्म-संयम अनिवार्य है उसके नियमोंका पालन करनकी इच्छा रखनेवालेको अपनी शारीरिक शक्तिके अनुसार सतत परिश्रम करना ही चाहिये।

सत्याग्रहाश्रम साबरमती १–८–२८

संयम और सतति-नियमन

दूसरा भाग

महादेव देसाईके लेख

१

सब रोगोंकी जड़*

मद्रासके श्री पद्मनाभनने बर्स्न नामक एक अमेरिकन लेखककी विवाहका तत्त्वज्ञान नामकी एक छोटीसी पुस्तक छापी है। उसी पुस्तकका सार यहां दिया जाता है।

पुस्तकके प्रकाशक कहते हैं कि लेखकने अमेरिकाकी सेनामें दस वर्ष तक नौकरी की थी और मेजर के पद तक पहुंचकर सन् १ ? में सेवा-निवृत्त हो जानेके बादसे वे न्यूमार्कमें रहते हैं। पिछले १८ वर्षोंमें उन्होंने जर्मनी, फ्रान्स, फिलिपाइन द्वीप, चीन और अमेरिकामें विवाहित पति-पत्नियोंकी स्थितिका गहराईसे अध्ययन किया है। इस अध्ययनके मूलमें लेखकका अपना अवलोकन है तथा प्रसूतिशास्त्रके निष्णात और स्त्रीरोगोंके कुशल चिकित्सक सैकड़ों डॉक्टरोंसे हुई उनकी मुलाकात तथा पत्र-व्यवहार है। इसके अलावा लेखकने लड़ाईमें जूझनेवाले उम्मीदवारोंकी शारीरिक योग्यताकी जांचके पत्रकों तथा सामाजिक स्वास्थ्य-रक्षक मंडलों द्वारा एकत्र की गई जानकारीका भी काफी उपयोग किया है।

लेखकने सैकड़ों डॉक्टरोंसे जो प्रश्न पूछे थे और उनके जो उत्तर मिले थे वे इस प्रकार हैं :

प्र० —आजकल विवाहित स्त्री-पुरुषोंमें गर्भावस्थामें भी समागम करनेका रिवाज है या नहीं?

लगभग सभी डॉक्टरोंका उत्तर था : ऐसा रिवाज है।

प्र० —गर्भावस्थामें समागम करनेसे गर्भपातकी और जच्चाको जहर चढ़नेकी संभावना रहती है या नहीं?

उ० —जरूर संभावना रहती है।

---

* यह लेख पुस्तकके पृ० १४–७० पर छपे 'नीतिनाशकी राह पर' नामक लेखके विषय पर अधिक प्रकाश डालता है।

प्र० — इस संयोगके फलस्वरूप होनेवाले बालकोंके अंगोंमें दोष पड़नेकी संभावना रहती है या नहीं?

अनेक डॉक्टर अमुक समय तक ऐसा संयोग करनेकी इजाजत देते हैं इसलिए वे अपने विरुद्ध कोई मत क्यों देने लगे? परन्तु २५ प्रतिशत डॉक्टरोंने कहा कि ऐसे संयोगके फलस्वरूप विकलांग बालक पैदा होते हैं।

प्र० — यदि विकलांग बालकोंका कारण सगर्भा स्त्रीके साथ किया जानेवाला संयोग न हो, तो इसका दूसरा कारण क्या हो सकता है?

इस प्रश्नके उत्तरोंमें बड़ा मतभेद है। अनेक डॉक्टर कहते हैं कि वे इसका कारण नहीं बता सकते।

प्र० — आजकलकी शिक्षित स्त्रियाँ गर्भाधान रोकनेके कृत्रिम साधनोंका उपयोग करती हैं या नहीं?

उ० — करती हैं।

प्र० — इन साधनोंसे और कुछ नहीं तो स्त्रीकी जननेन्द्रियको अपार हानि होनेकी संभावना है या नहीं?

७५ प्रतिशत डॉक्टर कहते हैं कि हानि होनेकी संभावना है।

इसके सिवा लेखकने कुछ चौंकानेवाले आंकड़े दिये हैं जो जानने जैसे हैं। १९२ में अमेरिकन सरकारने एक पुस्तक प्रकाशित की थी जिसमें सेनामें भरती किये जानेवाले मनुष्योंके दोष बताये गये थे। उसमें नीचेकी बातें दी गई हैं

१ सेनामें भरती होनेकी योग्यताके बारेमें कितनोंकी परीक्षा की गई?	२५ लाख १ हजार
२ उनमें से कितनोंमें शारीरिक और मानसिक दोष मिले?	१२ लाख ८९ हजार
३ किसी भी प्रकारके सैनिक कार्यके लिए अयोग्य सिद्ध हुए	५ लाख ४९ हजार

इन उम्मीदवारोंकी उमर १८ से ४५ वर्ष तककी थी।

इतनी जांचके और अपने अनेक देशोंके अवलोकनके फलस्वरूप लेखकने कुछ अनुमान निकाले हैं जो उन्हींके शब्दोंमें इस प्रकार हैं

१ पुरुष स्त्रीके लिए खाने-पीनेकी और रहनेकी सुविधा कर दे उसके बदलेमें स्त्री पुरुषकी दासी बनकर रहे और उसकी पत्नी कहलानेके कारण ही उसके साथ एक ही घरमें रहकर या एक ही बिस्तर पर सोकर नित्य उसके विषय-भोगका साधन बन एसी कुप्रथाने तो कोई रचना की ही नहीं है।

२ विवाहके बन्धनमें बंधनेके कारण ही पुरुषकी विषयेच्छा पूरी करना स्त्रीका कर्तव्य है ऐसी प्रथा सर्वत्र पड़ गई है और इसके फलस्वरूप रात-दिन अमर्यादित विषय-भोगका साधन बनकर विवाहित स्त्रियोंमें से ९ प्रतिशत स्त्रियां वेश्याकी तरह जीवन बिताती हैं। यह स्थिति इसलिए उत्पन्न हुई है कि इस वेश्यापनको स्वाभाविक और उचित माना गया है। विवाहका नियम ऐसा मनवाता है और यह भी माना जाता है कि पतिके प्रेमकी रक्षा करनेके लिए ऐसा करना पत्नीका कर्तव्य है।

ऐसे नित्यके निरंकुश विषय-भोगके अनेक भयंकर परिणाम आते हैं

(१) स्त्रीके ज्ञानतन्तु अत्यन्त दुर्बल हो जाते हैं उसे असमय बुढ़ापा घर दबाता है उसका शरीर रोगका घर बन जाता है उसका स्वभाव चिड़चिड़ा और उग्रकी हो जाता है और जो बच्चे पैदा होते हैं उनका भी वह सावधानीसे पालन-पोषण नहीं कर सकती।

(२) गरीब लोगोंमें इतने बालक पैदा होते हैं कि उन्हें काफी पोषक भोजन देना और उनकी सार-सम्भाल करना असंभव हो जाता है। ऐसे बालकोंको तरह तरहके रोग होते हैं और बड़े होने पर वे अपराधी बन जाते हैं।

(३) उच्च स्तरके लोगोंमें निरंकुश विषय-भोगके फलस्वरूप होने वाली प्रजोत्पत्तिको रोकनेके तथा गर्भ गिरानेके कृत्रिम साधनोंका उपयोग किया जाता है। इन साधनोंका उपयोग अगर आम वर्गकी स्त्रियोंको सिखाया जाय तो उनकी प्रजा रोगी दुराचारी और भ्रष्ट होगी और अन्तमें उसका नाश हो जायगा।

(४) अतिशय सम्भोगकी वजहसे पुरुषका पुरुषत्व नष्ट हो जाता है, वह कोई श्रमका काम करके अपना निर्वाह करनेमें भी असमर्थ हो जाता है और अनेक रोगोंका शिकार होकर असमय ही मौतकी शरणमें चला जाता है। अमेरिकामें आज विधुरोंकी अपेक्षा २ लाख अधिक विधवायें हैं। उनमें बहुत ही थोड़ी ऐसी हैं जो युद्धके कारण विधवा बनी हों। विवाहित पुरुषोंका बहुत बड़ा भाग ५ की उमर तक पहुँचनेसे पहले ही शरीरसे निर्बल और जर्जर हो जाता है।

(५) अतिशय सम्भोगके फलस्वरूप पुरुष और स्त्री दोनोंमें एक प्रकारकी निराशा और हताशा आ जाती है। दुनियामें आज जो दरिद्रता है, शहरोंमें जो गंदी बस्तें और गरीब बस्तियां हैं वे आदमीको काम न मिलनेके कारण नहीं खड़ी हुई हैं। वे विवाहकी वर्तमान स्थितिके फल-स्वरूप चलनेवाले निरंकुश विषय-भोगके परिणामस्वरूप खड़ी हुई हैं।

(६) गर्भावस्थामें स्त्री विषय-भोगका साधन बनती है इसके परि-णाम प्रजाके भविष्यकी दृष्टिसे अतिशय भयंकर होते हैं। गर्भावस्थामें किया जानेवाला संभोग मनुष्यको पशुसे भी हीन बनाता है। गर्भवती गाय कभी साँडको अपने पास आने ही नहीं देती। इतने पर भी अगर साँड उस पर अत्याचार कर डाले तो जो बछड़ा पैदा होगा वह तीन या पाँच पैरोंवाला होगा अथवा दो पूँछवाला या दो सिरवाला होगा। केवल मनुष्य ही ऐसा मानता लगता है कि पशुओंमें ऐसे अत्याचारके जो परिणाम आते हैं वे मनुष्यको नहीं भोगने पड़ते। इस मान्यताके पीछे भी एक भ्रम है। वह भ्रम यह है कि पुरुष लम्बे समय तक अपनी विषय वासनाको तृप्त किये बिना रह ही नहीं सकता। इस भ्रमकी उत्पत्ति भी स्पष्ट है। अपने बिस्तर पर सदा विकारोंको उत्तेजित करनेवाली संगिनी मौजूद हो तब भला पुरुष अपनी विषय-वासनाको शान्त किये बिना कैसे रह सकता है?

परन्तु डॉक्टरोंके मत और अवलोकनके फलस्वरूप यह मालूम हुआ है कि गर्भाधानके बादकी स्थितिमें अतिशय संभोग यदि अनिष्टकारी है तो गर्भावस्थामें हानिकारक प्रमाण नगण्य नहीं है — इसके फलस्वरूप

बच्चोंमें पागलपन तकके दोष आनेकी संभावना रहती है और स्त्रीको अपार कष्ट होता है क्योंकि गर्भावस्थामें कोई भी स्त्री संभोग नहीं चाहती।

इसके बाद लेखकने इस बातकी चर्चा की है कि चीन हिन्दुस्तान और अमेरिकामें एक ही घरमें और एक ही कमरेमें अनेक स्त्री-पुरुषोंके सोनेसे दुराचार और निर्वीर्यताकी कैसी खराब समाजमें पैठ गई है और फिर इस स्थितिको दूर करनेके उपाय बताये हैं।

इन उपायोंमें कुछ तो विवाहके कानूनमें सुधार करनेसे सम्बन्ध रखते हैं। लेकिन लेखकने ऐसे उपाय भी बताये हैं जो मनुष्यके अपने हाथमें हैं। कानून तो जब सुधरना होगा तब सुधरेगा। परन्तु मनुष्यको अमुक सुधार करनेका अधिकार तो है ही

(१) प्रजोत्पत्तिके हेतुके बिना स्त्री-पुरुषको संभोग करना ही नहीं चाहिये इस कुदरती नियमके ज्ञानका खूब प्रचार करना।

(२) स्त्रीकी प्रजोत्पत्तिकी इच्छा न होने पर पुरुषको उसका पति होनेकी वजहसे ही उसका स्पर्श करनेका अधिकार नहीं मिल जाता इस सिद्धान्तका प्रचार करना।

(३) विवाह-सम्बन्धमें बंध जानेके कारण स्त्रीका पतिके साथ एक ही कमरेमें तथा एक ही शय्या पर सोना अनिवार्य नहीं है इतना ही नहीं बल्कि प्रजोत्पत्तिका हेतु न होने पर इस तरह सोना अपराध है — इस ज्ञानका प्रचार करना।

लेखक कहते हैं कि यदि इतने नियमोंका पालन हो तो जगतके आधे रोगोंका नाश हो जायगा — गरीबी मिट जायगी रोगी और कमदोषवाले बच्चे पैदा नहीं होंगे विरोध और लड़ाई झगड़े टलेंगे इसलिए युद्ध भी टल जायगा और स्त्री तथा पुरुषके लिए जन-कल्याणका प्रयत्न करनेका मार्ग खुल जायगा।

२

एक बहनके प्रश्न

विवाहका सत्यनाश पुस्तकके लेखक मि. बर्स्टनने अपनी यह पुस्तक अपने मित्रोंके पास भेजी होगी। उनमें से एक बहनने उन्हें एक पत्र लिखा। उस पत्रके उत्तरमें अपने विचारोंको स्पष्ट करनेवाली और अपने व्यक्त किये हुए मतोंको अकाट्य तर्कसे अधिक दृढ़तापूर्वक प्रस्तुत करनेवाली दूसरी छोटी पुस्तक उन्होंने प्रकाशित की है। यह पुस्तक पहलीसे अधिक मननीय और अधिक महत्त्वपूर्ण है।

उस बहनके पत्रका आशय संक्षेपमें इस प्रकार था: आपने जो पुस्तक भेजी उसके लिए मैं आपकी बहुत आभारी हूँ। अतिशय विषय-भोग ही हमारे रोगोंका मुख्य कारण है, यह बात पहले-पहल आपकी ही पुस्तकमें कही गई है। विषयेच्छा महापुरुषोंमें भी होती है। कुछ महापुरुष इससे मुक्त हैं और कुछ सामान्य मनुष्योंमें यह अतिशय प्रबल होती है। परन्तु इस बातकी जाँच होना जरूरी है कि विषयेच्छाकी सच्ची शारीरिक आवश्यकता कितनी है, तथाकथित मानी हुई आवश्यकता कितनी है और केवल डाली हुई आदतके कारण वह कितनी उत्पन्न होती है। उदाहरणके लिए, यह जानना आवश्यक है कि तीन वर्षके लिए समुद्र पर व्हेल मछलियोंका शिकार करने गये हुए पुरुष पर अथवा ऐसे ही किसी अन्य कारणसे लम्बे समय तक स्त्रीसे दूर रहनेवाले पुरुष पर इसका क्या शारीरिक असर होता है। एक बात और है। अतिशय विषय-भोग हानिकारक है यह बात मैं स्वीकार करती हूँ परन्तु क्या गर्भाधानको रोकनेवाले कृत्रिम साधन भी आवश्यक नहीं हैं? गर्भपातकी अपेक्षा अथवा विवाह-सम्बन्धके बिना उत्पन्न होनेवाली सन्तानकी अपेक्षा कृत्रिम साधनोंका उपयोग करके प्रजोत्पत्तिको रोकना क्या अधिक अच्छा नहीं होगा? कुदरतके नियमके विरुद्ध काम करनेवाले मनुष्य प्रजोत्पत्तिको रोकनेके परिणामस्वरूप अगर बन्ध्य होकर निःसन्तान मर जायें तो इससे समाजको क्या

नुकसान पहुंचानेवाला है? तीसरी बात भी है। मान लीजिये कि हम सब संयमी बन जाते हैं। फिर भी सामान्यतः दंपतीको तीन सन्तानसे अधिक न हों तो ही समाजका सन्तुलन कायम रहेगा। इसका अर्थ यह हुआ कि दंपतीको संपूर्ण जीवनमें कुछ गिनतीके अवसरों पर ही विषय भोग करना चाहिये। इतना संयम क्या आपको संभव मालूम होता है? बलवान और सुन्दर स्वास्थ्यवाले पुरुषार्थी मनुष्य लम्बे समय तक संयमका पालन कर सकते हैं?"

दो कामनायें

इस पत्रके उत्तरमें लेखकने जो पुस्तक लिखी उसका सार यह है।

सामान्यतः पुरुषोंमें आहारकी इच्छाके अलावा दो कामनायें और रहती हैं एक कामना सुन्दर स्त्रीके साथ विषय-भोग करनेकी और दूसरी कामना पुरुषार्थकी — अर्थात् धर्म अर्थ तथा मोक्षकी। इन दोनोंका परस्पर सम्बन्ध है। दोनों एक-दूसरे पर प्रभाव डालनेवाली हैं। बहुतेरे पुरुषोंमें अतिशय विषय-भोग (विवाहके पहले) के फलस्वरूप पुरुषार्थकी कामना नष्ट हो जाती है बहुतोंमें विवाहके बादके कुछ वर्षोंमें अतिशय विषय-भोगके कारण यह कामना मर जाती है या मंद पड़ जाती है। स्वस्थ वीर्यवान पुरुषोंमें विषयेच्छा समान मात्रामें होती है और पुरुषार्थकी कामना प्रबल बन जाय तो लम्बे समय तक उनकी विषयेच्छा मंद पड़ जाती है। इसकी आवश्यकता किसी महान ध्येयकी है जिस ध्येयके पीछे मनुष्य अपनी संपूर्ण शक्ति खर्च कर देनेका मकसद कर सका है।

ऐसे ध्येय अनेक हैं। एक सामान्य ध्येय तो उत्तम सन्तान उत्पन्न करना है। अपनी पत्नीमें जो स्वाभाविक सन्तानेच्छा हो उसे तृप्त करने तथा पत्नीको प्रसन्न रखकर स्वस्थ बालकको जन्म देनेके बाद उस बालकको पालने-पोसनेमें उसे शिक्षा देनेमें तथा उसे योग्य नागरिक बनानेके प्रयत्नमें पुरुषकी विषयेच्छा मन्द होनी चाहिए। इन सारे कामोंके लिए उसे अपना शरीर कसना होगा और काफी शारीरिक श्रम करना होगा। इसके सिवा उसे एक शय्या पर पत्नीके साथ सोना भी छोड़ना होगा। दूसरा ध्येय कौनसा है — मनुष्योंकी सेवा करके और उनका कल्याण करके

अथवा कोई महान पराक्रम करके प्रसिद्धि पाता है। यह संभव है कि इस प्रकारकी प्रसिद्धि पानेके बाद अधिक अच्छे ढंगसे विषय-भोग भोगनेका अवसर प्राप्त करनेकी इच्छा मनुष्य करे। परन्तु यह कीर्तिकी लालसा तत्काल तो मूल विषय-वासनाको दबा ही देती है।

स्त्री ही प्रजाके आदर्शोंकी जननी है। ये आदर्श स्त्रियोंसे पुरुषोंमें उतरते हैं। इन आदर्शोंकी सिद्धिकी प्रेरणा भी स्त्रीसे ही मिलती है। इसलिए मैं तो यह कहूंगा कि जिस समाजमें स्त्रीका मूल्य अधिक है — जिस समाजमें स्त्री उर्वशीके समान पराक्रमके वश है — वह समाज अधिक उत्कर्षवाला होता है। जिस देशमें स्त्रीका मूल्य अल्प है — अर्थात् स्त्रीको प्राप्त करनेमें पुरुषको कोई मेहनत नहीं करनी पड़ती — उस देशमें गरीबी और नरमी अधिक होती है। इसके विपरीत जहां स्त्रीका बहुत बड़ा मूल्य आंका जाता है वहांकी जनता समृद्धिशाली हो सकती है।

ह्वेल मछलीके शिकारके लिए जानेवाले तथा स्त्रीसे लम्बे समय तक दूर रहनेवाले नाविकोंकी स्थितिका प्रश्न आपने पूछा है। उन लोगोंको बहुत अधिक काम करना पड़ता है इसलिए उनके स्वास्थ्य पर तो विषय वासनाकी अतृप्तिका कोई बुरा असर नहीं पड़ेगा। लेकिन जब उन लोगोंके पास कोई काम नहीं होता तब तो उन्हें विषय-वासनाकी तृप्तिकी अनेक बुरी आदतें पड़ जाती हैं। ये लोग शिकारसे लौटनेके बाद अपनी कमाई विषय भोग और शराबखोरीमें बरबाद कर देते हैं क्योंकि यही ध्येय लेकर वे शिकारके लिए जाते हैं।

कृत्रिम साधन

आपने कृत्रिम साधनों द्वारा सन्तानकी उत्पत्ति रोकनेका जो प्रश्न किया है वह बड़ा गंभीर है। उसका थोड़ा विस्तृत उत्तर देना होगा। मैं अपनी खोजों और अवलोकनके परिणामस्वरूप इतना तो आग्रहपूर्वक कह सकता हूं कि इन साधनोंसे कोई हानि न होनेका प्रमाण बिलकुल नहीं मिलता। परन्तु अनुभवी और ज्ञानी स्त्रीरोग-चिकित्सक तो स्पष्ट शब्दोंमें कहते हैं कि इन साधनोंका स्त्रीके शरीर और उसकी नैतिकता पर बहुत बुरा असर पड़ता है। और यह बिलकुल साफ बात है। इस

सम्बन्धमें एक-सा बातें ध्यानमें लेने जैसी हैं। सन्तान पैदा करनेकी इच्छा न हो तो संयमका एक भी प्रेरक बल जीवनमें नहीं रहता। पुरुष एसी स्त्रीसे ऊब जाता है और उसकी पुरुषार्थकी कामना मंद पड़ती जाती है। स्त्री पुरुषको दूसरी स्त्रियोंके पास जानेसे रोकनेके लिए उसे अपना ही गुलाम बनानेका भी जोड़ प्रयत्न करती है। लम्बे समय तक गर्माधानको रोकनेके कारण उसकी अपनी विषय-वासना प्रबल बनती जाती है। इसके परिणामस्वरूप पुरुष कुछ वर्षोंमें निर्वीर्य बन जाता है और किसी भी रोगसे टक्कर लेनेकी उसकी शक्ति नष्ट हो जाती है। बहुत बार निर्वीर्यताको रोकनेके लिए भई और नये साधनोंका उपयोग किया जाता है। इसके फलस्वरूप स्त्री-पुरुषमें एक-दूसरेके प्रति तिरस्कार पैदा होता है और मनमें तकलीफकी नौबत आ जाती है।

जानकार लोगोंका कहना है कि स्त्रियोंको केन्सर जैसे जो रोग होते हैं उनकी जड़ इन कृत्रिम साधनोंके उपयोगमें होती है। स्त्रियोंके कोमलसे कोमल मज्जातन्तुओं पर इन कृत्रिम साधनोंका बहुत बुरा असर होता है और उसके फलस्वरूप अनेक रोगोंका जन्म होता है।

अनेक अनुभवी डॉक्टर यह मानते हैं कि इन साधनोंके उपयोगसे कन्सर जैसे रोग होते हैं। और बाकी दूसरे रोग इन साधनोंकी मददसे किये जानेवाले अनिर्संयोगम होते हैं।

अनेक अनुभवी डॉक्टरोंने यह प्रमाण भी दिया है कि इन कृत्रिम साधनोंके फलस्वरूप बहुतसी स्त्रियां बन्ध्या हो जाती हैं स्त्रीका जीवन सूखा और नीरस बन जाता है तथा उसे ससार बहुरकी तरह मालूम होने लगता है।

न्यायाधीश लिण्डसेका काम

हमारे न्यायाधीश लिण्डसेने इन कृत्रिम साधनोंकी खोजको बड़ा वन दे दिया है और उससे जो नतीजा हो रहा है उसका कहीं नाम नहीं है। इसीलिए न पेरिसमें तीन लाखकी मददमें रजिस्टर्ड वेश्यायें हैं और उसमें कई गुनी ज्यादा ऐसी खानगी वेश्यायें हैं जिनके नाम सरकारी रजिस्टरमें दर्ज नहीं हैं। कामके दूसरे शहरोंमें भी इन दुराचारका पार

नहीं है। जननेन्द्रियके रोगोंका भी वहां कोई पार नहीं है। हजारों स्त्रियां इसी रोगसे पीड़ित होकर डॉक्टरोंके घर धोया करती हैं। नैतिकताकी दृष्टिसे फ्रान्सके लोगोंका नाम अतिशय अरुचिकर बन गया है। और फ्रान्सकी लड़कियां गुलामीके व्यापारमें सबसे आगे बढ़ी हुई हैं। पिछले सौ वर्षमें फ्रान्सकी यह दशा हो गई है। फिर भी न्यायाधीश लिण्डसेका अपना कृत्रिम साधनोंको नई खोज कहनेमें शर्म नहीं आती।

महा भयंकर बात तो यह है कि एक बार ऐसे कृत्रिम साधनोंका प्रचार चुके आम होने लगा कि इस नये आलको रोकनेका एक भी साधन नहीं रह जायगा इस प्रचारको रोकनेकी कोई भी सत्ता हमारे हाथम नहीं रह जायगी। और ऐसी बातें सबसे पहले प्रजाके युवक युवतियोंके पास पहुंचती हैं। फ्रान्सके वेश्यागृहोंमें सुकुमार अनकी कुमारियों तथा विवाहित अभागिनी स्त्रियोंके यौवन और शीलका हाट लगा रहता है।

न्यायाधीश लिण्डसे वर्षों तक हमारे देशके नौजवान अपराधियोंकी अदालतके न्यायाधीश रहे हैं। उन नौजवान अपराधियोंकी साक्षीमें जो प्रमाण उन्हें मिलते थे उनका न्यायाधीशने उलटा उपयोग किया है और अपनी पुस्तकमें हानिकर साधनोंकी सिफारिश करके उन्होंने सारी प्रजाको गलत रास्ता बताया है।

परन्तु अपनी ही पुस्तकमें उन्होंने जो प्रमाण दिये हैं उनका रहस्य उन्हें क्यों नहीं सूझा होगा? कॅलिफोर्निया एडिथ नामक एक स्त्रीका एक पत्र न्यायाधीशने अपनी पुस्तकमें दिया है। यह बेचारी लिखती है कि मैं चार कुशल डॉक्टरोंके पास हो आई हूं। मेरा पति अन्य दो डॉक्टरोंकी सलाह ले आया है। इन्हीं डॉक्टरोंने यह कहा कि कृत्रिम उपायोंका प्रयोग करनेसे थोड़े समय तक भले ही स्वास्थ्य पर कोई बुरा असर न पड़े परन्तु कुछ ही समय बाद स्त्री-पुरुष दोनों उनके उपयोगसे पछताने लगते हैं और इस कारण से उन्हें रोग पैदा होते हैं जिन्हें एपेंडिसाइटीज कहकर रोगियोंका ऑपरेशन किया जाता है जब कि वास्तवमें रोग कोई दूसरा ही होता है। क्या ये डाक्टर झूठ होंगे? ऐसा कहनेसे उन्हें तो कोई

व्याप्त नहीं होगा। उलटे कृत्रिम साधनोंका प्रयोग किया जाय तो रोग बढ़ेंगे और इन डॉक्टरोंका धंधा ज्यादा चलेगा। परन्तु ये डॉक्टर अनुभवी प्रतिष्ठित और लोकहितको समझनेवाले थे।

न्यायाधीश लिण्डसे और उनके अनुयायी अब जी-जानसे कृत्रिम साधनोंके प्रचारके पीछे पड़ गये हैं। अगर यह प्रचार बढ़ता ही गया तो देशमें हजारों नीम-हकीम ये साधन लेकर फिरने लगेंगे और इससे समाजको अपार नुकसान होगा।

न्यायाधीश लिण्डसेने स्वयं प्रजोत्पत्ति रोकनेके साधनोंका प्रचार करनेवाला एक मंडल खोला है। वे इस मंडलको सत्ययुगका उदय करनेवाली एक संस्था कहते हैं। सत्ययुग तो नहीं लेकिन भयंकर कलियुग इसमें से जन्म लेगा इस बारेमें जरा भी शंका नहीं। यदि आम लोगोंमें इन साधनोंका प्रचार हुआ तो मनुष्य बिना मौत मरने लगेंगे बारबार मातना भोगते भोगते मरेंगे और इस तरह सत्यानाश होगा तभी शायद भावी प्रजा इन साधनोंसे महामारीकी तरह दूर भागना सीखेगी।

न्यायाधीश लिण्डसेकी नीयत बुरी नहीं है। वे तो बेचारे यही चाहते हैं कि प्रत्येक परिवारमें बालकोंकी संख्या अधिक न बढ़े अथवा स्त्रीको चाहिये उतने ही बालक पैदा हों और पुरुष जितनोंका पालन-पोषण अच्छी तरह कर सके उतने ही बालक जन्म लें। उनका दूसरा उद्देश्य यह है कि स्त्रियोंमें विषय-भोगकी जो कुदरती इच्छा है उसे तृप्त करनेका उचित साधन उन्हें दिया जाय। यह भूत उनके मनमें उनकी अदालतमें आनेवाली निर्लज्ज लड़कियोंने भर दिया है। मैं तो ऐसा मानता हूं कि उनकी अदालतमें आनेवाली लड़कियोंके जैसे प्रमाण देनेवाली लड़कियां अपवादरूप ही होंगी। दूसरी अनेक लड़कियोंसे मैं मिला हूं। वे अपनी विषय वासनाकी बात न्यायाधीश लिण्डसेके समक्ष बताई देनेवाली लड़कियोंकी तरह उस पर कवित्व और तत्त्वज्ञानका मुलम्मा चढ़ा कर तो नहीं ही कह सकतीं। अनेक समझदार लड़कियां और अनेक समझदार मातायें जानती हैं कि यह विषयेच्छाकी बात निरा भ्रम है। परन्तु न्यायाधीश लिण्डसेके सामने ऐसी कुछ लड़कियां कितने ही बरसोंसे आती हैं इसलिए उनके जैसे विद्वा-

हित अपनी उमरके विद्वान पुरुष भी सही रास्तेसे भटक गये और अनिच्छित बालकोंकी उत्पत्तिको रोकनेवाले साधनों पर उन्होंने एक पुस्तक लिख डाली। वरना ऐसा कौन होगा जो इतना ज्ञान होने पर भी गलत मार्ग पर चलकर कॉलेजके लड़के-लड़कियोंको निश्चिन्ततासे सहचार भूल मागनेकी बात कहे और इसके लिए कानून बनवानेकी हलचल करे? यदि उनका दिमाग ठिकाने होता तो उन्हें पता चलता कि कितने ही सुन्दर, तेजस्वी नौजवान इस पापके कारण आत्महत्या करना सीखते हैं क्योंकि अतिशय विषय-भोगके कारण उनका पुरुषत्व नष्ट हो जाता है। न्यायाधीश लिण्डसेको पता न हो तो मानसिक रोगोंके चिकित्सक उन्हें यह बात बता सकते हैं कि जवानीमें विषयभोगको मन्द रास्ते ले जानेके कारण नौजवान लोग शराबी चोर, डाकू और खूनी बन जाते हैं। न्यायाधीश लिण्डसेकी बुद्धि यदि कुण्ठित न हो गई होती तो क्या वे ऐसा लिखते कि पुरुषकी विषयेच्छा तृप्त करना और उसकी वेश्या बनना स्त्रीका धर्म है?

एकमात्र उपाय

इन बुद्धिके दुश्मनोंको कौन समझाये कि प्रजामें जन्म या मरणको बहुत न बढ़ने देनेका एकमात्र उपाय है विषय-भोगसे दूर रहना। इन लोगोंकी आंखें यह क्यों नहीं देख पातीं कि पशुओंमें यही उपाय अमोघ सिद्ध होता है। ये लोग यह क्यों नहीं समझते कि कृत्रिम साधनोंके उपयोगसे स्त्रियां वेश्यायें और दुराचारिणी बनती हैं तथा पुरुष नपुंसक हिजड़े बन जाते हैं?

स्वास्थ्यके लिए विषय-भोग आवश्यक है इस भ्रमको मिटाना प्रत्येक डॉक्टर और अनुभवी सलाहकारका फर्ज है। मैं अपने अनुभवके आधार पर और अनेक डॉक्टरोंसे होनेवाले अपने संपर्कके आधार पर कह सकता हूं कि अनेक वर्षों तक विषय-भोग न करनेसे स्वास्थ्यकी कोई हानि नहीं होती बल्कि असीम लाभ ही होता है। हम कुछ नौजवानोंमें जो उमड़ता उत्साह और चमकता तेज देखते हैं वह उनके विषय-भोगका नहीं परन्तु उनके संयमका परिणाम है। प्रत्येक पुरुषार्थी मनुष्य जाने-अनजाने इस सूत्रका

पालन करता है विषय-वासनाको तृप्त करनेमें जिस शक्तिका उपयोग किया जाता है उसे पुरुषार्थकी सिद्धिमें आसानीसे मोड़ा जा सकता है। जितना अधिक इस शक्तिका संयम होगा उतनी ही अधिक सिद्धि प्राप्त होगी।

मनुष्य सदियोंसे रसायन-विद्याकी खोजमें घूमता रहा है। लेकिन इस सूत्रमें जो रसायन-विद्या भरी है वैसी दूसरी कहां मिलेगी?

स्त्रियोंका कर्तव्य

स्त्रियोंको भी जाग्रत बनना चाहिये सावधान होना चाहिये। उन्हें यह दृढ़ निश्चय करना चाहिये कि वे पुरुषोंके विषय-भोगका साधन नहीं है और ऐसे साधनके रूपमें उपयोग किये जानेका उन्हें कड़ा विरोध करना चाहिये। पुरुष कमाकर उन्हें खिलाते हैं इतनी-सी बातके लिए इतना उत्पात क्यों? वे घर चलायें बालकोंका पालन-पोषण करें, बालकोंको शिक्षा दें घरको प्रसन्नतासे भर दें घरमें पति और बालकोंमें नव चेतन पूरे तथा अपने बढ़नेवाले पुत्रों और पुत्रियोंको सीधे मार्ग पर चलायें — इससे अधिक स्त्रियोंका कर्तव्य और क्या हो सकता है? अपने इस कर्तव्यके पालनके लिए तो स्त्रियोंको पुरस्कार दिये जाने चाहिये स्त्रियोंके लिए विशेष सुविधायें भी उत्पन्न की जानी चाहिये।

ब्रह्मचारिणी जोन

जिस प्रकार पुरुष अपनी विषयेच्छाको पुरुषार्थकी इच्छामें बदल सकता है उसी प्रकार स्त्री भी बदल सकती है। महान आदर्शोंकी सिद्धिके लिए स्त्री अपने यौवन-धन अपने सौन्दर्य तथा अपने समस्त आकर्षणके बल पर महानसे महान पुरुषार्थ कर सकती है। इतिहासमें बड़से बड़ा आदर्श जोनका (जोन ऑफ आर्क) का है। उसमें निष्कलंक कौमार्य और उसके पारदर्शक ब्रह्मचर्यके सिवा दूसरा कौनसा बल था? पन्द्रहवीं शताब्दीमें फ्रान्सकी कैसी भयंकर स्थिति थी? देशमें सबत्र दरिद्रता दुःख और दुष्टताका साम्राज्य था। फ्रेन्च सेना वर्षोंसे अंग्रेज सेनाके सामने हारती चली आ रही थी। सेनाके सैनिक निःसत्त्व और निर्वीर्य थे। फ्रान्समें इरीं भूखें पड़े पड़ रहते रहते थे राजा भाग गया था और स्त्रियोंमें शील जैसी कोई वस्तु रह नहीं

गई थी। ऐसे समयमें जोदार्क नामक एक अपढ़ किन्तु अत्यन्त शूरवीर और बुद्धिमान कुमारी आगे आई। लोगोंको विश्वास ही नहीं होता था कि वह पवित्र है। वे तो यही मानते थे कि वह फ्रान्सकी दूसरी हजारों कुमारियोंकी तरह ही दुराचारिणी होगी। सोलह वर्षकी लड़की अखंड कौमार्यवाली कभी हो सकती है?

उसके कौमार्यकी जांच करनेके लिए एक कमीशन नियुक्त किया गया। उसके सामने जोदार्कका अखंड-कौमार्यका दावा सिद्ध हुआ। सबने लोगोंने उसे चांदीका कवच पहनाया और सेनाके आगे रखा। और फ्रान्सकी मृतप्राय बनी हुई सेना प्राणों पर खेल कर अंग्रेज सेनासे इस तरह जूझी कि मानो जोदार्कने सेनामें बिजलीका संचार कर दिया हो। उसके ब्रह्मचर्यका लोगों पर अनोखा प्रभाव पड़ा। कायरोंमें शौर्यका संचार हुआ और कितने ही वर्षोंसे चल रही लड़ाईका गिनतीके दिनोंमें ही अंत आ गया। अंग्रेजोंको फ्रान्स छोड़कर भाग जाना पड़ा। इतिहासमें इस घटनाकी तुलनामें आये ऐसी दूसरी कोई घटना नहीं है। परन्तु आज जैसा प्रवाह चल रहा है उस प्रकार स्त्री यदि विषय-भोगका ही साधन बने पुरुष उसे भ्रष्ट ही करते रहें और प्रजोत्पत्तिको रोकनेके कृत्रिम साधन ही सब जगह फैलते जायं तो इसके फलस्वरूप जो सत्यानाश होगा उससे समाजको बचानेके लिए फिरसे किसी ब्रह्मचारिणी और तपस्विनी जोदार्ककी आवश्यकता होगी और वह पन्द्रहवीं शताब्दीकी उस वीरांगनाकी कोटिकी ही होगी।

सारी स्त्रियां जोदार्क न बनें तो कोई हर्ज नहीं। वे पवित्र विवाह सम्बन्धमें बंध सकती हैं। परन्तु इस सम्बन्धमें बंध कर भी यह आवश्यक है कि वे अपने सम्बन्धकी पवित्रताको बनाये रखें उस वैराग्यका रस न लेने दें माताके स्वत्वको समझें तथा पुरुषोंके पुरुषार्थको प्रेरित करनेवाली शक्ति बनें।

उपसंहार

यह सार अनुवाद नहीं है परन्तु लेखकके भावोंका दोहन है। सारी पुस्तक नहीं गई बल्कि माना हमारे इस महामनन आ जाती है

मरणं बिन्दुपातेन जीवनं बिन्दुधारणात्।" और आचार्यके ज्वलन्त उदाहरण वैसे उदाहरण हमारे यहां वैधव्यको तथा ब्रह्मचर्यको सुशोभित करनेवाली मीराबाई, झांसीकी रानी लक्ष्मीबाई और अहल्याबाई होल्करमें तथा सम्पूर्ण जीवनको कौमार्यम — ब्रह्मचर्यसे सुशोभित करनेवाली दक्षिण भारतकी साध्वी अव्वै और आण्डालमें देखनेको मिलते हैं।

[नवजीवनमें श्री महादेव देसाई द्वारा दिया हुआ मि० बस्टनकी दो पुस्तकोंका सार।]

२

दो धार्मिक संस्कार

इस वर्ष गांधी-सेवा-संघका तीसरा अधिवेशन हुदलीमें हुआ। यद्यपि लगातार बारिशने काममें काफी बाधा डाली तो भी अधिवेशन कई कारणोंसे विशेष महत्त्वपूर्ण रहा। इस सम्बन्धमें अगले अंकमें मैं विस्तारसे लिखनेका विचार कर रहा हूं। इस अंकमें तो सिर्फ दो विवाहों और यज्ञोपवीत-संस्कारोंके सम्बन्धमें ही मैं लिखूंगा। इन मंगल संस्कारोंको हमने सबके सम्मिलित शुभ आशीर्वादोंकी छायामें सम्पन्न किया।

गांधी-सेवा-संघ स्वयं एक नैतिक संस्था है — ऐसे कार्यकर्ताओंकी संस्था जो मुख्यतया धार्मिक भावनाको लेकर जनताके प्रश्नोंको सुलझानेका प्रयत्न करते हैं और इसीसे उनकी तमाम चर्चाएं अन्तर-दर्शन से भरी हुई होती हैं। अतः सबकी मानसिक तत्परतामें गांधीजीने अपनी पोती और मेरी बहनका विवाह और मेरे भाई तथा लड़केका उपनयन-संस्कार करनेका जो निश्चय किया वह बिलकुल उचित था। वर-वधुओंके लिए अगर वे समझें तो इससे बढ़कर अच्छा और क्या हो सकता है कि जीवनके जिस गम्भीर क्षणमें वे कदम रख रहे थे उसमें सबसे बड़ी चीज उनका यह दृढ़ विश्वास था कि ये विवाह कोई उत्सव-समारोह नहीं थे बल्कि सेवाके निमित्त स्थापित करनेके पवित्र और उदात्त संस्कार थे। एक भी बाह्य प्रदर्शन और नेगचार इन विवाहोंमें नहीं किया गया

न मित्रों या रिश्तेदारोंको निमंत्रण दिया गया। हमारी दृष्टिमें तो वीर गंभीर और आत्मत्यागी लोकसेवकोंका आशीर्वाद रिश्तेदारों और मित्रोंके आशीर्वादोंसे बहुत अधिक मूल्यवान था और संबंधियों तथा मित्रोंका आशीर्वाद तो वर-वधुओंको मिलेगा ही। विवाह-संस्कार बेलगांवके शास्त्री रामभट्टजी और वाईकी सुप्रसिद्ध प्रज्ञा पाठशालाके शास्त्री लक्ष्मण जोशीने कराये। इन दोनों विद्वान शास्त्रियोंने बगैर कोई दक्षिणा लिये बड़ी अच्छी तरह संस्कार कराया। श्री लक्ष्मण शास्त्रीने हरएक मंत्रका अनुवाद बहुत स्पष्ट हिन्दीमें कर दिया था और उनका यह आग्रह था कि मंत्रोच्चारके साथ साथ उसके हरएक शब्दका अर्थ भी वर-वधू समझते जायं।

अपने स्वभावके विपरीत गांधीजीने उस दिन सबकी उपस्थितिमें वर-वधुओंसे जो कहना था वह नहीं कहा बल्कि खानगी तौर पर उन्हें उपदेश दिया। किन्तु गांधीजीके ये विचार सभी दंपतियोंके लिए हितकर हैं। अतः मैं उन विचारोंको नीचे सार रूपमें देनेका प्रयत्न करता हूं।

उन्होंने कहा "तुम्हें यह जानना ही चाहिये कि मैं इन संस्कारोंमें उसी हद तक विश्वास करता हूं जहां तक वे हमारे भीतर कर्तव्य पालनकी भावनाको जमाते हैं। जबसे मैंने अपने संबंधमें विचार करना शुरू किया तभीसे मेरी यह मनोवृत्ति रही है। तुमने जिन मंत्रोंका उच्चार किया है और जो प्रतिज्ञायें ली हैं वे सबकी सब संस्कृतमें थी। पर तुम्हारे लिए उन सबका अनुवाद कर दिया गया था। संस्कृतका हमने इसलिए आश्रय लिया कि मैं जानता हूं कि संस्कृत शब्दोंमें यह शक्ति है जिसके प्रभावके नीचे आना मनुष्य पसन्द करेगा।

विवाह-संस्कारके समय पतिने जो इच्छाएं प्रगट कीं उनमें एक यह भी है कि वधू अच्छे नीरोग पुत्रकी जननी बने। इस कामनाने मुझे आघात नहीं पहुंचा। इसके मानी यह नहीं है कि संतान पैदा करना अनिवार्य है। पर इसका अर्थ यह है कि यदि संतानकी आवश्यकता है तो शुद्ध धर्म-भावनासे विवाह करना जरूरी है। जिसे संतानकी जरूरत नहीं उसे विवाह करनेकी आवश्यकता ही नहीं। विषय-भोगकी तृप्तिके लिए किया हुआ विवाह विवाह नहीं है वह तो व्यभिचार है। इसलिए

नाथके विवाह-संस्कारका अर्थ यह है कि जब पति-पत्नी दोनोंकी ही संततिके लिए स्पष्ट इच्छा हो केवल तभी उन्हें संयोगकी अनुमति मिलती है। यह सारी कल्पना बड़ी पवित्र है। इसलिए यह काम प्रार्थनाके साथ ही करना चाहिये। कामोत्तेजना और विषय-सुखकी प्राप्तिके लिए साधारणतया स्त्री-पुरुषमें जो प्रेमाश्रित वेदनमें आती है उसका इस पवित्र कल्पनामें नाम भी नहीं है। अगर दूसरी संतान नहीं चाहिये तो स्त्री-पुरुषका ऐसा संयोग जीवनमें केवल एक ही बार होगा। जो अपनी परिस्थिति और शरीरसे स्वस्थ नहीं हैं उन्हें संयोग करनेकी कोई खास स्वतन्त्रता नहीं और अगर वे ऐसा करते हैं तो वह व्यभिचार है। अगर तुमने यह सीखा हो कि विवाह विषय-तृप्तिके लिए है तो तुम्हें यह चीज भूल जानी चाहिये। यह तो एक वहम है। तुम्हारा सारा ही संस्कार पवित्र अग्निकी साक्षीमें हुआ है। तुम्हारे भीतर जो भी काम वासना हो उसे यह पवित्र अग्नि भस्म कर दे।

"एक और वहमसे अलग रहनेके लिए मैं तुम्हें कहूंगा। यह दुनियामें आजकल जोरोंसे फैलता जा रहा है। यह कहा जा रहा है कि इन्द्रिय-निग्रह और संयम गलत चीज है और विषय-वासनाकी अबाध तृप्ति और स्वच्छन्द प्रेम सबसे अधिक प्राकृतिक वस्तु है। इससे अधिक विनाशकारी वहम कभी सुननेमें नहीं आया। हो सकता है कि तुम आदर्श तक न पहुंच सको तुम्हारा शरीर असमर्थ हो परन्तु इस कारण तुम आदर्शको नीचा नहीं कर देना अधर्मको धर्म न बना लेना। अपनी आत्म-निर्बलताके क्षणोंमें मेरा यह कहना याद रखना। इस पवित्र अवसरकी स्मृति तुम्हें डांवाडोल न होने दे और तुम्हें इन्द्रिय-निग्रहकी ओर ले जाय। विवाहका अर्थ ही इन्द्रिय-निग्रह और काम-वासनाका दमन है। अगर विवाहका कोई दूसरा अर्थ है तो फिर वह स्वार्थमें नहीं किन्तु सन्तति प्राप्तिके सिवा किसी दूसरे प्रयोजनसे किया हुआ विवाह है।

विवाहने तुम्हें मैत्री और समानताके स्वयंसूत्रसे बांध दिया है। पतिको अगर स्वामी कहा गया है तो पत्नीको स्वामिनी कहा गया है। दोनों एक-दूसरेके सहायक हैं जीवनके समस्त कार्य और कर्तव्य पूरे

करनेमें वे एक-दूसरेका सहयोग करनेवाले हैं। लड़को तुमसे मैं यह कहूँगा कि अगर ईश्वरने तुम्हें अच्छी बुद्धि और उज्ज्वल भावनाएं प्रदान की हैं तो तुम अपनी पत्नियोंमें भी अपने इन सद्गुणोंका प्रवेश कराओ। तुम उनके सच्चे शिक्षक और मार्गदर्शक बनना, उन्हें मदद देना और रास्ता दिखाना परन्तु कभी उनके रास्तेमें बाधक न बनना, न उन्हें तुम गलत रास्ते पर ले जाना। तुम्हारे बीचमें विचार, वचन और कर्मका पूर्ण सामंजस्य हो, तुम अपने हृदयकी बात एक-दूसरेसे न छिपाना, तुम एकात्म बन जाना।

मिथ्याचारी या दंभी न बनना। जिस कामका करना तुम्हारे लिए असंभव हो उसे पूरा करनेके निष्फल प्रयत्नोंमें अपना स्वास्थ्य न बिगाड़ बैठना। इन्द्रिय-निग्रहसे कभी किसीका स्वास्थ्य नष्ट नहीं होता है। जिससे मनुष्यका स्वास्थ्य नष्ट होता है वह निग्रह नहीं किन्तु बाह्य अवरोध है। सच्चे आत्म-निग्रही व्यक्तिकी शक्ति तो दिन-दिन बढ़ती है और वह शान्तिके अधिकाधिक समीप पहुंचता जाता है। आत्म-निग्रहकी सबसे पहली सीढ़ी विचारोंका निग्रह है। अपनी मर्यादाओंको समझ लो और जितना तुमसे हो सके उतना ही करो। मैंने तुम्हारे सामने एक आदर्श रख दिया है — एक समकोण खींच दिया है। अपनी शक्तिके अनुसार जितना तुमसे हो सके उतना प्रयत्न इस आदर्श तक पहुंचनेका तुम करना। लेकिन अगर तुम असफल हो जाओ तो दुःख या शर्मका कोई कारण नहीं। मैंने तो तुम्हें सिर्फ यह बतलाया है कि यज्ञोपवीत-संस्कारकी तरह विवाह भी एक स्वार्पणका संस्कार है, एक नया जन्म धारण करना है। मैंने तुमसे जो कुछ कहा है उससे भयभीत न होना और न कोई दुर्बलता महसूस करना। हमेशा विचार, वचन और कर्मकी पूर्ण एकताको अपना लक्ष्य बनाये रखना। विचारमें जितना सामर्थ्य है उतना और किसी वस्तुमें नहीं। कर्म वचनका अनुसरण करता है और वचन विचारका। संसार एक महान प्रबल विचारका ही परिणाम है, और जहां विचार प्रबल और पवित्र है वहां परिणाम भी हमेशा प्रबल और पवित्र होगा। मैं चाहता हूं कि तुम एक उच्च आदर्शका अभय कवच धारण करके जाओ और मैं तुम्हें विश्वास दिलाता हूं कि कोई भी प्रलोभन

तुम्हें हानि नहीं पहुंचा सकेगा, कोई भी अपवित्रता तुम्हारा स्पर्श नहीं कर सकेगी।

जो विधियाँ तुम्हें समझाई गयी हैं, उन्हें तुम याद रखना। मधुपर्क की सीधी-सादी दीखनेवाली विधिका ही ले लो। इसका अभिप्राय यह है कि सारा संसार मधुसे परिपूर्ण है। शर्त केवल यह है कि जब बाकी सब लोग उसमें से अपना हिस्सा ले लें तब तुम स्वयं उसे ग्रहण करो। अर्थात् त्यागमें ही आनन्द मिलता है।

लेकिन एक वरने पूछा, अगर सन्तानोत्पत्तिकी इच्छा न हो तो क्या विवाह करना ही नहीं चाहिये?

निश्चय ही नहीं, गांधीजीने कहा, आध्यात्मिक विवाहोंमें मेरा विश्वास नहीं है। कई ऐसे उदाहरण जरूर मिलते हैं कि जिनमें पुरुषोंने शारीरिक समागमका कोई खयाल न करके सिर्फ स्त्रियोंकी रक्षा करनेके विचारसे ही विवाह किये। लेकिन यह निश्चित है कि ऐसे उदाहरण विरल ही हैं। पवित्र वैवाहिक जीवनके बारेमें मैंने जो कुछ लिखा है वह सब तुम्हें जरूर पढ़ लेना चाहिये। मैंने महाभारतमें जो कुछ पढ़ा है उसका मुझ पर तो दिन प्रतिदिन ज्यादासे ज्यादा असर पड़ता जा रहा है। उसमें व्यासका नियोग करनेका वर्णन है। उसमें व्यासको सुन्दर नहीं बताया है, बल्कि वे तो इससे विपरीत थे। उनकी शकल-सूरतका उसमें जो वर्णन आया है उससे मालूम पड़ता है कि दीखनेमें वे बड़े कुरूप थे। प्रेम प्रदर्शनके लिए कोई हाव-भाव भी उन्होंने नहीं बताये, बल्कि संभोगसे पहले अपने सारे शरीर पर उन्होंने घी चुपड़ लिया था। उन्होंने जो संभोग किया वह विषय-वासनाकी पूर्तिके लिए नहीं, बल्कि सन्तानोत्पत्तिके लिए किया था। सन्तानकी इच्छा बिलकुल स्वाभाविक है और जब एक बार यह इच्छा पूर्ण हो जाय तो फिर संभोग नहीं करना चाहिये।

मनुने पहली सन्तानको धर्मज अर्थात् धर्म भावनासे उत्पन्न होनेवाली बताया है और उसके बाद पैदा होनेवालीको कामज अर्थात् कामवृत्तिसे उत्पन्न होनेवाली कहा है। सार रूपमें वैयक्तिक संबंधोंका यही विधान है। और विधान ही ईश्वर है तथा विधान या नियमका पालन

ही ईश्वरकी आज्ञाका पालन है। यह याद रखो कि तीन बार तुमसे यह वचन लिया गया है कि किसी भी रूपमें मैं इस विधानका भंग नहीं करूंगा। अगर मुट्ठीभर स्त्री-पुरुष भी हमें ऐसे मिल जायं जो इस विधानमें चलनेको तैयार हों तो बलवान और भव्य स्त्री-पुरुषोंकी एक जातिकी जाति पैदा हो जायेगी।

याद रखो कि जबसे मैंने बाको काम-वासनाकी दृष्टिसे देखना छोड़ा तभीसे मुझे विवाहित जीवनका सच्चा सुख मिलने लगा। मैंने भरी जवानी और पूर्ण स्वस्थ दशामें ब्रह्मचर्यकी प्रतिज्ञा ली थी। तब मैं माने हुए अर्थमें विवाहित जीवनका आनन्द लूट सकता था। परन्तु मैंने अनुभवमें देख लिया कि मैं — और हम सभी — एक पवित्र कर्मके लिए पैदा हुए हैं। जब मेरा ब्याह हुआ था तब मैं यह नहीं जानता था। लेकिन समझ आने पर मुझे लगा कि जिस कामके लिए मैंने जन्म लिया है उसमें विवाहसे मदद मिलनी चाहिये। तब मुझे सच्चे धर्मका पता चला। ब्रह्मचर्यकी प्रतिज्ञा लेनेके बाद ही हम दोनोंके जीवनमें सच्चा सुख आया। बा दीखती कमजोर है मगर उसकी काठी मजबूत है। वह सुबहसे शाम तक मेहनत करती रहती है। अगर बा मेरी इच्छातृप्तिका साधन बनी रहती तो वह ऐसा कभी न कर पाती।

फिर भी मैं बड़ी देरसे चेता — इस अर्थमें कि मैं कुछ बरस तक विवाहित जीवन बिता चुका था। तुम्हारा भाग्य अच्छा है जो समय रहते तुम्हें सावधान कर दिया गया। जब मेरा ब्याह हुआ था तब परिस्थितियां बहुत खराब थीं। तुम्हारे लिए तो बड़ी अनुकूलता है। हां एक बात थी जिससे मेरी नैया पार लग गई। मेरे पास सत्यका कवच था। उसने मुझे बचाया। सत्य मेरे जीवनका आधार रहा है। ब्रह्मचर्य और अहिंसा तो बादमें सत्यसे निकले। इसलिए तुम जो कुछ भी करो उसमें अपने प्रति और दुनियाके प्रति सच्चे रहो। अपने विचारोंको छिपाओ मत। अगर उन्हें प्रगट करना शर्मकी बात है तो उन्हें सोचना और भी बड़ी शर्मकी बात है।

हरिजनसेवक २८–८–३९

४

संतति-नियमनकी उत्साही समर्थिका

दरिद्र-नारायणकी सेवामें अपना सब-कुछ समर्पण कर देनेवाले बूढ़े किसानसे सर्वथा विपरीत इंग्लैंडकी एक श्रीमती हाउ-मार्टिन हैं जो कृत्रिम सन्तति-नियमनकी जबरदस्त प्रचारिका हैं और भारतके गरीबोंकी मददके लिए अपना संदेश लेकर भारतमें पधारी हैं। गांधीजीके पास वे इस इरादेसे आई हैं कि या तो उन्हें अपने विचारोंका बना लें या खुद उनके विचारों पर आ जायें। निस्सन्देह वे हिन्दुस्तानमें पहली ही बार आई हैं और यहांके गरीबोंकी हालत अभी आपने मुश्किलसे ही देखी होगी। इसलिए स्त्रियोंकी गन्दी बस्तियोंके अपने अनुभवकी ही उन्होंने चर्चा की और उन मुद्दोंको बड़ा पक्ष लिया जिन्हें समस्त पुस्तक आगे मुकना पड़ता है।

लेकिन इस पहली ही दलील पर गांधीजीने उन्हें आड़े हाथों लिया। गांधीजीने कहा — कोई स्त्री अबला नहीं है। कमजोरसे कमजोर स्त्री भी पुरुषसे ज्यादा बल रखती है और अगर आप भारतके गांवोंमें चलें तो मैं यह बात आपको दिखला देनेके लिए बिलकुल तैयार हूं। वहां कोई भी स्त्री आपसे नहीं कहेगी कि उसकी इच्छा न हो तो भी उसका पति या कोई ऐसा व्यक्ति नहीं था जो उस पर बलात्कार कर सके। यह बात मैं पत्नीके सामने अपने अनुभवसे कह सकता हूं और यह याद रखिये कि मेरा उदाहरण कोई अपवाद-रूप नहीं है। सच तो यह है कि स्त्रीमें शुद्धतेके बजाय मर जानेकी भावना मौजूद हो तो कोई राक्षस भी स्त्रीको अपनी दुष्ट चेष्टाके लिए मजबूर नहीं कर सकता। यह तो परम्परासे स्वीकृतिकी बात है। स्त्री-पुरुष दोनोंमें ही पशुत्व और देवत्वका सम्मिश्रण है और अगर हम उसमें से पशुत्वको दूर कर सकें तो वह दोनोंके लिए भव्य और हितकर ही होगा।

श्रीमती हाउ-मार्टिनने पूछा — लेकिन अगर पुरुष अधिक बलवानसे बलपूर्वक निज अपनी पत्नीको छोड़कर पराई स्त्रीके पास जाय तो बेचारी पत्नी क्या करे?

यह तो आप अपनी बात बदल रही हैं लेकिन यह याद रखिये कि अगर आप अपने तर्कको भ्रममुक्त नहीं रखेंगी तो आप जरूर गलत परिणामों पर पहुँचेंगी। आपके सन्देशका आधार क्या है, यह तो मुझे समझ लेने दीजिये। जब मैंने यह कहा कि सन्तति-निरोधका आपका प्रचार काफी फैल चुका है तब इस विनोदके पीछे कुछ गम्भीरता भी क्योंकि मुझे यह मालूम है कि ऐसे भी कुछ स्त्री-पुरुष हैं जो यह समझते हैं कि सन्तति-निरोधमें ही हमारी मुक्ति है। इसलिए मैं आपसे इसका आधार समझ लेना चाहता हूँ।

श्रीमती हाउ-मार्टिन इसमें मैं दुनियाका उद्धार नहीं मानती परन्तु इतना तो मुझे लगता है कि किसी न किसी प्रकारके संतति-निरोधके बिना मुक्ति नहीं है। आप संयमके द्वारा यह कराना चाहते हैं, और मैं दूसरी रीतिसे। मुझे आपका ढंग भी प्रिय है, पर सबको मैं यह रीति नहीं बतलाती। आप एक सुन्दर क्रियाको बहुत बीभत्स मान बैठे हैं। मैं तो कहती हूँ कि जब कोई नई सृष्टि उत्पन्न करनेके लिए स्त्री और पुरुष मिलते हैं तब वे सर्जनहारके बहुत समीप पहुँच जाते हैं। यह तो एक दैवी वस्तु है।

गांधीजी देखिये फिर आप अपनी दलीलसे हट रही हैं। माना कि सर्जन-क्रिया एक दैवी वस्तु है परन्तु वह क्रिया दैवी रीतिसे ही करनी चाहिये आसुरी रीतिसे नहीं। केवल संतानोत्पत्तिके शुद्ध हेतुसे ही स्त्री और पुरुषका मिलना इष्ट है। किन्तु जब प्रजोत्पत्तिके लिए नहीं बल्कि विषय-तृप्तिके लिए वे मिलते हैं तब तो उनके मिलनको मैं आसुरी ही कहूँगा। मनुष्यके भीतर दैवी सम्पत्ति तो है ही। पर दुर्भाग्यसे वह इस वस्तुको भूल जाता है और पशुताको हृदयसे लगाकर वह पशुसे भी बदतर बन जाता है।

मगर पशुताकी यह बात उठाकर आप बेचारे पशुकी क्यों इस तरह निन्दा करते हैं?

नहीं मैं निन्दा नहीं करता पशु तो अपनी प्रकृतिके अनुसार चलता है। सिंहकी प्रकृति हिंसक है। वह मुझे पकड़ कर निगल जाये तब

मेरा यह विश्वास है कि किसी कृत्रिम रीतिसे या पश्चिममें प्रचलित मौजूदा रीतियोंसे संतति-निग्रह करना आत्मघात है। मैंने यहां जो आत्मघात शब्दका प्रयोग किया है उसका अर्थ यह नहीं है कि प्रजाका समूल नाश हो जायगा। आत्मघात शब्दको मैं इससे ऊंचे अर्थमें लेता हूं। मेरा आशय यह है कि संतति-निग्रहकी ये रीतियां मनुष्यको पशुसे भी बदतर बना देती हैं यह अनीतिका मार्ग है।

परन्तु हम इसे कब तक बरदाश्त करें कि मनुष्य अविवेकके साथ संतान पैदा करता ही चला जाय? मैं एक ऐसे आदमीको जानता हूं जो नित्य एक सेर दूध लेता था और उसमें पानी मिला देता था ताकि उसे अपने तमाम बच्चोंमें बांट सके। बच्चोंकी संख्या हर साल बढ़ती ही जाती थी। क्या इसे आप पाप नहीं मानते?

"इतने बच्चे पैदा करना कि उनका पालन-पोषण न किया जा सके पाप तो है ही। पर मैं यह मानता हूं कि अपने कर्मके फलसे छुटकारा पानेकी कोशिश करना तो उससे भी बड़ा पाप है। इससे तो मनुष्यका मनुष्यत्व ही नष्ट हो जाता है।"

तब लोगोंको यह बात बतलानेका सबसे अच्छा व्यावहारिक मार्ग क्या है?

सबसे अच्छा व्यावहारिक मार्ग यह है कि हम संयमका जीवन बितायें। आचरण उपदेशसे ऊंचा है।

परन्तु पश्चिमके लोग हमसे पूछते हैं कि तुम लोग अपनेको पश्चिमके लोगोंसे अधिक आध्यात्मिक मानते हो फिर भी तुम लोगोंके मुकाबलेमें तुम्हारे यहां बालकोंकी मृत्यु अधिक संख्यामें क्यों होती है? महात्माजी क्या आप मानते हैं कि मनुष्य अधिक संख्यामें संतान पैदा करें?

मैं तो यह माननेवाला हूं कि संतान बिलकुल ही पैदा न की जाय।

तब तो सारी प्रजाका नाश हो जायगा।

नाश नहीं होगा बल्कि प्रजाका और भी सुन्दर रूपांतर हो जायगा। पर यह कभी होनेका नहीं क्योंकि हमें अपने पूर्वजोंसे विषय-वासनाका उत्तराधिकार युगोंसे मिला हुआ है। युगोंकी इस पुरानी आदतको काबूमें लानेके लिए बहुत बड़े प्रयत्नकी जरूरत है तो भी वह प्रयत्न सीधा-सादा है। पूर्ण त्याग पूर्ण ब्रह्मचर्य ही आदर्श स्थिति है। जो यह न कर सके वह खुशीसे विवाह कर ले पर विवाहित जीवनमें भी संयमसे रहे।

जन-साधारणको संयममय जीवनकी बात सिखानेकी आपके पास कोई व्यावहारिक रीति है?

जैसा कि एक बार पहले मैं कह चुका हूं हमें पूर्ण संयमकी साधना करनी चाहिये और जन-साधारणके बीच जाकर संयममय जीवन बिताना चाहिये। भोग-विलास छोड़कर ब्रह्मचर्यका पालन करके अगर कोई मनुष्य रहे तो उसके आचरणका प्रभाव अवश्य ही जनता पर पड़ेगा। ब्रह्मचर्य और अस्वाद-व्रतके बीच अविच्छिन्न संबंध है। जो मनुष्य ब्रह्मचर्यका पालन करना चाहता है वह अपने प्रत्येक कार्यमें संयमसे काम लेगा और सदा नम्र बनकर रहेगा।

स्वामीजीने कहा मैं समझ गया। जन-साधारणको संयमके आनन्दका पता नहीं है और हम यह चीज उसे सिखानी है। पर मैंने पश्चिमके लोगोंकी जिस दलीलके बारेमें आपसे कहा है उस पर आपका क्या मत है?

मैं यह नहीं मानता कि हम लोगोंमें पश्चिमके लोगोंकी अपेक्षा आध्यात्मिकता अधिक है। अगर ऐसा होता तो आज हमारा इतना अध:पतन न हो गया होता। किन्तु इस बातसे कि पश्चिमके लोगोंकी आयु औसतन हम लोगोंकी आयुसे ज्यादा लम्बी होती है यह साबित नहीं होता कि पश्चिममें आध्यात्मिकता है। जिसमें अध्यात्म-वृत्ति होती है उसकी आयु अधिक लम्बी होनी ही चाहिये ऐसी बात नहीं है बल्कि उसका जीवन अधिक पवित्र अधिक शुद्ध होना चाहिये।

हरिजनसेवक १३-९-१५

६

विदेशियोंके नये आक्रमण

हमारे देश पर विदेशियोंके अनेक आक्रमण हुए हैं। परन्तु विदेशी प्रजाओंके आक्रमणकी अपेक्षा विदेशी सभ्यताका आक्रमण अधिक बलवान है और वह अनेक आकर्षणोंसे भरा होनेके कारण उसका सामना करना कठिन है। एक समय ऐसा था जब इस सभ्यतासे हमारे लोग चकरा गये थे और बहुतसे लोग उसके वश हो गये थे। परन्तु हमारे देशके स्वातंत्र्य-युद्धसे उत्पन्न जागृतिके कारण हमारी प्राचीन सभ्यताका अध्ययन और ज्ञान बढ़ा, उस सभ्यताके प्रति हमारी ममता और अभिमान फिरसे जाग्रत हुआ और विदेशी सभ्यताके मोहक किन्तु भयंकर स्वरूपोंको हम समझने लगे। उस सभ्यताके अनेक मोहक रूपोंकी भीषणता आज प्रकट हो गई है, परन्तु दिन प्रतिदिन होनेवाले उसके नये आक्रमणोंका सफल सामना करना हमारे लिए कठिन हो गया है। इन मोहिनियोंमें सबसे अन्तिम मोहिनी संतति-निग्रहकी है। पिछले दस-पन्द्रह वर्षोंसे इस विषयका ढेरों साहित्य हमारे देशमें आ रहा है और अब तो हमारे देशमें उसके लिए संतति-निग्रहके प्रचारक अथवा प्रचारिकायें जाग लगी हैं। गत वर्ष इंग्लैण्डसे हाउ-मार्टिन नामक एक महिला आई थी। उन्होंने अ० भा० महिला परिषद पर अपना प्रभाव डाला था और बादमें कुछ शहरोंमें इस विषय पर भाषण भी दिये थे। इस वर्ष वे महिला तो आई ही थी परन्तु उनके सिवा अमेरिकाकी एक धुरंधर वक्ता और लेखिका श्रीमती मार्गरेट सेंगर भी आई थीं। दोनोंने अ० भा० महिला परिषदसे [illegible] संतति नियमनके पक्षमें प्रस्ताव पास कराये। आगे वर्ष भी इन लोगोंका आक्रमण होनेवाला है। और उनका हेतु हमारी [illegible] स्त्रियोंका उद्धार करना है। इस विषयकी जरा बारीकीसे जाँच करना आवश्यक है।

श्रीमती मार्गरेट सेंगर अभी थोड़े ही समय पहले गांधीजीसे वर्धामें मिली थीं। गांधीजीने उन्हें काफी समय दिया था। भारतवर्ष छोड़नेके

कुछ अच्छे पति भी देखनेमें आये हैं जिन्होंने अपनी पत्नीकी रक्षा की है। मेरी तो सौ बातकी एक बात यह है कि स्त्रियोंके पास प्रतिरोधका जो जन्मसिद्ध अधिकार है उसका उन्हें निःसंकोच रूपमें उपयोग करना चाहिये।

मगर यह बात श्रीमती सैंगरको बेतुकी-सी मालूम हुई। गांधीजीके आगे तो उन्होंने नहीं कहा परन्तु अपने लेखमें वे कहती हैं कि इस सारी बातमें गांधीजीका अज्ञान ही प्रगट होता है क्योंकि स्त्रियोंमें इस तरहका प्रतिरोध करनेकी शक्ति ही नहीं है। आज स्त्रियां ऐसा प्रतिरोध नहीं करतीं यह तो गांधीजी खुद मानते हैं परन्तु उनका कहना यह है कि प्रत्येक युद्ध सुधारकका यह कर्तव्य होना चाहिये कि वह स्त्रियोंको इस तरहका प्रतिरोध करनेकी शिक्षा दे। क्रोध द्वेष और हिंसाकी दावाग्नि महात्मा ईसाके जमानेमें भी सुलग रही थी किन्तु उन्होंने उपदेश दिया प्रेमका अहिंसाका। उस उपदेशका पालन आज भी कम ही होता है। परन्तु इसमे कोई यह नहीं कहता कि महात्मा ईसाको मानव-समाजका ज्ञान नहीं था।

श्रीमती सैंगर बम्बईकी वासियोंमें कुछ स्त्रियोंसे मिलकर आई थी और कहती थी कि उन स्त्रियोंसे बात करने पर उन्हें ऐसा लगा कि यदि सन्तति-निग्रहके साधन उन स्त्रियोंको प्राप्त हो जायें तो वे बड़ी खुश हों। ईश्वर जाने वे वहां किस भावमें गई थीं और उनका दुभाषिया कौन था। मगर गांधीजीने तो उनसे यह कहा कि “हिन्दुस्तानके गांवोंमें आप जायें तो आपको सन्तति-निग्रहके इन साधनोंकी बात भी वे लोग सहन नहीं करेंगी। आज इनी-गिनी पढ़ी-लिखी स्त्रियोंको आप भले ही बहका सकें परन्तु इससे आप यह न मान लें कि हिन्दुस्तानकी सारी स्त्रियोंकी ऐसी मनोवृत्ति है।

लेकिन श्रीमती सैंगरको ऐसा लगा कि इस प्रतिरोधसे तो गृहस्थ-जीवनमें कलह बढ़ेगा स्त्रियां अप्रिय बन जायेंगी पति-पत्नीके विवाहित जीवनकी सुख और सुन्दरता नष्ट हो जायेगी। बात तो यह है कि बिना शरीर-संबंधका विवाहित जीवन ही नष्ट हो जाता है ऐसा वे

मानती हैं। इसलिए शरीर-संबंधके विरुद्ध विद्रोहकी यह सलाह ही उनके गले नहीं उतरती। अमेरिकाके कुछ उदाहरण उन्होंने गांधीजीके आगे रखे और बतलाया कि देखिये इन पति-पत्नियोंका जीवन अलग-अलग रहनेसे कंटकमय हो गया था पर उन्होंने सन्तति-निग्रह करना सीखा इससे व लोग विवाहित जीवनका आनन्द भी उठा सके और उनका जीवन भी सुखी हुआ।

गांधीजी मैं आपको पचासों उदाहरण दूसरे प्रकारके दे सकता हूं। शुद्ध संयमी जीवनसे कभी दुःखकी उत्पत्ति नहीं हुई। किन्तु आत्म-संयम तो एक कठिन वस्तु है। आत्म-संयम रखनेवाला व्यक्ति अपना संपूर्ण जीवन जब तक समर्पण नहीं करता तब तक उसमें वह सफल हो ही नहीं सकता। मेरा तो यह विश्वास है कि आपने जो उदाहरण दिये हैं वे संयमहीन बाहरसे त्याग करके भीतरसे विषयका सेवन करनेवालोंके उदाहरण हैं। उनके सामने यदि मैं सन्तति-निग्रहके उपायोंकी सिफारिश करूं तो उनका जीवन और भी गंदा हो जाय।

कुंवारे स्त्री-पुरुषोंके लिए तो ये साधन नरकके द्वार सिद्ध हुये इस विषयमें गांधीजीको शंका ही नहीं थी। उन्होंने अपने अनुभव भी सुनाये। मगर श्रीमती सेंगरकी चर्चाकी बातचीतसे यह जान पड़ा कि वे कुंवारे पुरुषोंके लिए इन उपायोंकी सिफारिश नहीं कर रही हैं। उन्होंने इतना ही पूछा कि विवाहितोंके लिए भी क्या आप इन साधनोंकी अनुमति नहीं देते? गांधीजीने कहा नहीं विवाहितोंका भी ये साधन सत्यानाश करेंगे। श्रीमती सेंगरने अपने लेखमें इसके विरुद्ध जो दलील पेश की है वह दलील उन्होंने अपनी बातचीतमें नहीं दी थी। वे लिखती हैं यदि सतति-निग्रहके साधनोंसे ही मनुष्य अत्यन्त विषयी अथवा व्यभिचारी बनते हों तब तो गर्भाधानके बादके नौ मासमें भी क्या अतिशय विषय और व्यभिचारके लिए गुंजाइश नहीं रहती? दलीलके खातिर तो यह दलील की जा सकती है, परन्तु मालूम होता है कि श्रीमती सेंगरने इस बातका विचार नहीं किया कि स्त्री-जातिके लिए ही यह दलील कितनी अपमानजनक है। बहुत ही गिरी हुई अथवा एकाध अत्यन्त विषयाध स्त्रीको

छोड़कर क्या कोई गर्भवती स्त्री अपने पतिकी भी विषय-वासनाके वश होती है?

परन्तु बात यह थी कि श्रीमती सेंगर और गांधीजीके मानसमें जमीन-आसमानका अंतर था। बातचीतमें विषयेच्छा और प्रेमकी चर्चा चली। गांधीजीने कहा कि विषयेच्छा और प्रेम दोनों भिन्न वस्तुएं हैं। श्रीमती सेंगरने भी ऐसा ही कहा। गांधीजीने अपने अनुभवका प्रकाश डालकर कहा मनुष्य अपने मनको चाहे जितना धोखा दे, पर विषय विषय है और प्रेम प्रेम है। काम-रहित प्रेम मनुष्यको ऊंचा उठाता है और काम-वासनावाला संबंध मनुष्यको नीचे गिराता है।" गांधीजीने संतानोत्पत्तिके लिए किये हुए धर्म्य समागमको अपवाद कर दिया। उन्होंने दृष्टान्त देकर समझाया कि शरीर-निर्वाहके लिए हम जो खाते हैं वह अस्वाद है, आहार है परन्तु जीभको प्रसन्न करनेके लिए हम जो खाते हैं वह आहार नहीं अस्वाद नहीं किन्तु स्वाद है और विहार है। हलवा या पकवान या शराब मनुष्य भूख या प्यास बुझानेके लिए नहीं खाता-पीता किन्तु केवल अपनी विषय-लोलुपताके वश होकर ही इन चीजोंको खाता-पीता है। इसी तरह शुद्ध सन्तानोत्पत्तिके लिए पति-पत्नी जब मिलते हैं तब उनके इस समागमको प्रेम-बंधन कहते हैं। सन्तानोत्पत्तिकी इच्छाके बिना जब वे मिलते हैं तो वह प्रेम नहीं भोग होता है।

श्रीमती सेंगरने कहा यह उपमा ही मुझे स्वीकार्य नहीं।

गांधीजी आपको यह क्यों स्वीकार्य होगी? आप तो सन्तानेच्छा रहित संबंधको आत्माकी भूख मानती हैं इसलिए मेरी बात आपके गले क्यों उतरेगी?

श्रीमती सेंगर हां मैं उसे आत्माकी भूख मानती हूं। मुख्य बात यह है कि वह भूख किस तरह तृप्त की जाय। तृप्तिका परिणाम सन्तान उत्पन्न हो या न हो यह गौण बात है। अनेक बच्चे बिना इच्छाके ही उत्पन्न होते हैं और शुद्ध सन्तानोत्पत्तिके लिए तो कौन दम्पती मिलते होंगे? यदि शुद्ध संतानोत्पत्तिके लिए ही दम्पती मिलें तब तो पति-पत्नीको जीवनमें तीन-चार बार ही विषयेच्छाको तृप्त करके सन्तोष मानना पड़े।

और यह तो ठीक बात नहीं कि संतानेच्छासे जो संबंध किया जाय वह शुद्ध प्रेम है और संतानेच्छा-रहित संबंध विषय-संबंध है।

गांधीजी "मैं यह अनुभवकी बात कहता हूं कि अमुक संतान होनेके बाद अपने विवाहित जीवनमें मैंने शरीर-संबंध बंद कर दिया था। संतानेच्छा-सहित या संतानेच्छा-रहित सभी संबंध विषय-संबंध हैं, ऐसा आप कहना चाहें तो मैं यह कबूल कर सकता हूं। मेरा तो एक अनुभव आईने जैसा स्पष्ट है कि मैं जब जब पत्नीके साथ शरीर-संबंध करता था तब तब हमारे जीवनमें सुख एवं शांति और विशुद्ध आनंद नहीं होता था। एक आकर्षण जरूर था। किन्तु ज्यों-ज्यों हमारे जीवनमें — मुझमें — संयम बढ़ता गया त्यों-त्यों हम पति-पत्नीका जीवन अधिक उन्नत होता गया। जब तक विषयेच्छा थी तब तक हमारी सेवाशक्ति शून्य थी। विषयेच्छाको रोका कि तुरन्त हममें सेवाशक्ति उत्पन्न हुई। काम नष्ट हुआ और प्रेमका साम्राज्य स्थापित हुआ।

गांधीजीने अपने जीवनके एक अन्य आकर्षणकी भी बात कही। उस आकर्षणसे ईश्वरने उन्हें किस तरह बचाया यह भी उन्होंने बतलाया। पर अनुभवकी ये तमाम बातें श्रीमती सेंगरको अप्रस्तुत मालूम हुईं। शायद उन्हें अविश्वसनीय मालूम हुई हों तो कोई अचरज नहीं क्योंकि अपने कथनमें वे कहती हैं कि कांग्रेसके मुट्ठीभर आदर्शवादी कार्यकर्ता अपनी विषयेच्छाको दबाकर सेवाशक्तिमें उसे भले ही परिणत कर सके हों पर उन इने-गिने व्यक्तियोंको छोड़कर हमें तो सामान्य लोगोंकी बातें करनी थीं।

सच बात तो यह है कि गांधीजीने स्वप्नद्रष्टाके नाते बात नहीं की थी। गांधीजी खुद एक नीति-शिक्षक हैं और श्रीमती सेंगर भी नीति-शिक्षिका हैं। गांधीजी स्वयं एक समाज-सेवक हैं और श्रीमती सेंगर भी समाज-सेविका हैं — यह मानकर ही सारा संवाद चला था। और यह होते हुए भी व्यवहारकी भूमिका पर खड़े होकर ही गांधीजीने उनसे बात की थी।

गांधीजीने आगे कहा नीति-रक्षकके नाते मेरा और आपका कर्तव्य तो यह है कि हम कृत्रिम साधनोंके द्वारा संतति-नियमनकी बातको

छोड़कर अन्य उपायोंका आयोजन करें। जीवनमें कठिन पहेलियाँ तो आयेंगी ही पर वे किसी मनचाहे अनुकूल साधनसे हल नहीं की जा सकतीं। इन सन्तति-निग्रहके कृत्रिम साधनोंको अधर्म्य समझकर आप चलेंगी तभी आपको अन्य साधन सूझेंगे। तीन-चार बच्चे पैदा हो जानेके बाद माँ बापको अपनी विषय-वासना शान्त कर देनी चाहिये — ऐसी शिक्षा हम क्यों न दें? इस तरहका कानून हम क्यों न बनावें? विषय भोग खूब भोग लिया, चार-चार बच्चे हो जानेके बाद भोग-वासनाको अब क्यों न रोका जाय? बच्चे मर जायं और बादमें जरूरत हो तो सन्तान उत्पन्न करनेकी गरजसे पति-पत्नी फिरसे मिल सकते हैं। आप ऐसा करेंगी तो विवाह-बन्धनको आप ऊँचे दरजे पर ले जायंगी।

सन्तति-निग्रहकी सलाह मुझसे कोई स्त्री लेने आये तो मैं उससे यही कहूँगा कि बहन यह सलाह तुम्हें मेरे पास नहीं मिलेगी, तुम और किसीके पास जाओ। पर आप तो सन्तति-निग्रहका प्रचार कर रही हैं। मैं आपसे यह कहूँगा कि इससे आप माँओंको नरकमें ले जाकर पटकेंगी क्योंकि इसमें आप कोई मर्यादा नहीं रख सकेंगी।

चर्चामें जो बातचीत हुई उसमें तो श्रीमती सगरने इतना अधिक शिष्ट भावसे इतनी अधिक जिज्ञासा-वृत्तिसे व्यवहार किया कि कुछ पूछिये नहीं। श्रीमती सगरने गांधीजीसे कहा : पर आप कोई उपाय तो बतलाइये। संयम मैं भी चाहती हूँ, संयम मुझे अप्रिय नहीं। पर इस संयमका ही पालन हो सकता है न या संयम ही? उत्पत्ति-रोधककी तजवीज़में गांधीजीने कहा :

निर्बल मनुष्योंके लिए एक उपाय जरूर दिखाई देता है। यह उपाय हालमें ही एक निकली नयी हुई पुस्तकमें मैंने देखा है। उसमें यह सलाह दी गई है कि ऋतुकालके बादके अमुक दिनोंको छोड़कर विषय-सेवन किया जाय। इस तरह भी मनुष्यको महीनेमें दस-बारह दिन मिल जाते हैं और सन्तानोत्पत्तिमें वह बच सकता है। इस उपायमें बाकीके दिनोंमें तो संयम पालना ही पड़ता इसलिए मैं इस उपायको सहन कर सकता हूँ।

लेकिन यह उपाय श्रीमती सगरको नीरस मालूम हुआ होगा क्योंकि इस उपायका न तो उन्होंने अपने लेखमें कहीं उल्लेख किया है और न अपने भाषणमें। यदि इस उपायको ही मान ले तो सन्तति

निग्रहके साधन बेचनेवाले भील मानव सर्गों और महीलके तौरों बिन जिनके भोग-वासना सताती हो उन बेचारोंकी क्या हालत हो?

फिर, श्रीमती सेंगर तो ऐसे दुखियोंका दुःख दूर करनेवाली ठहरी। ऐसे दुखियोंका मोक्ष-साधन संतति-निग्रहके सिवा और क्या हो सकता है! मैं यह कटाक्षमें नहीं कह रहा हूं। श्रीमती सेंगरने अमेरिकामें सर्व-धर्म-परिषदके समक्ष जो भाषण दिया था उसमें उन्होंने न तो संयमकी बात कही न केवल विवाहित दम्पतियोंकी वहां तो उन्होंने उस अमेरिकाकी बात कही जहां हर साल २ लाख भ्रूणहत्याएं होती हैं! इतनी भ्रूण हत्याओंको रोकनेके लिए संतति-निग्रहके साधनोंके सिवा दूसरा उपाय ही क्या हो सकता है!! पर जरा और आगे बढ़ें तो मालूम होगा कि इन विदेशी प्रचारिकाओंकी चढ़ाई भारतकी स्त्रियोंके हितार्थ नहीं किन्तु दूसरे ही हेतुसे हो रही है। अमेरिकाके उस भाषणमें ही श्रीमती सेंगरने स्पष्ट रीतिसे कहा था कि जापानकी आबादी कितनी ज्यादा बढ़ रही है। वहां तो पहलेसे ही जनसंख्या बहुत अधिक थी और अब तो वह उस मर्यादाको भी पार कर रही है। इसी तरह अगर चलता रहा तो इन एशियाके राष्ट्रोंका भार पृथ्वी कैसे सहन कर सकेगी? राष्ट्रसंघको इसके विरुद्ध कोई जबरदस्त प्रतिबन्ध लगाना ही होगा। अपनी इतनी बड़ी प्रजाके लिए जानेको जगह रहनेसे जापानको अधिक देशोंकी जरूरत होगी और अधिक भर्त्सना ओढ़नी पड़ती। इसके लिए वह पवित्र संधियोंको भंग कर रहा है और विश्वव्यापी युद्धका बीज बो रहा है। जापान आज जिस बुरी रीतिसे पेश आ रहा है उसे देखते हुए तो जापानका उदाहरण अत्युक्तिसे भरा हुआ उदाहरण है पर श्रीमती सेंगरको तो इस भयका भयंकर स्वप्न दिख रहा है कि संतति-निग्रह न करनेवाले एशियाई राष्ट्र यूरोपीय प्रजाके लिए खतरनाक सिद्ध हो सकते हैं। ऐसे जन-हितैषियोंकी चढ़ाईसे हम जितनी जल्दी सजग हो जायें उतना ही अच्छा।

हरिजनसेवक १-२-३६

निश्चित बात कहनेका उनसे आग्रह किया था लेकिन इससे आगे उन्होंने कुछ नहीं कहा। ऐसी हालतमें आपने सार्वजनिक रूपसे जो कथन उनका बताया है, मेरे खयालमें वह आपने ठीक नहीं किया। और अन्तमें आपने प्रचारकोंके व्यापार की जो बात लिखी है, मैं नहीं समझती कि उसमें गांधीजी आपसे सहमत होंगे। यह वाक्य और जिस भावनाका वह सूचक है वह भावना आप जैसे निःस्वार्थ मानव-सेवकको शोभा नहीं देती।

सन्तति-निग्रहके कार्यकर्ता जिस बातको मानव-स्वतन्त्रता एवं प्रगतिके लिए मनुष्य-मात्रका मौलिक अधिकार मानते हैं उसके लिए निःस्वार्थ भावसे और बिना किसी पारिश्रमिकके उन्होंने संग्राम किया है और अभी भी कर रहे हैं। फिर जो हमारा विरोधी हो उसके बारेमें यों ही कोई ऐसी बात कह देना तो सर्वथा अनुचित अशोभनीय और असत्य है जो दरअसल बिलकुल बेबुनियाद हो।

आपकी विश्वस्त
मार्गरेट सेंगर

इसमें जहां तक वर्णित कटाक्ष से संबंध है मैं प्रसन्नता और कृतज्ञतापूर्वक अपनी भूल स्वीकार करता हूं। लेकिन यह मानना होगा कि जिस दवाओं और तरकीबोंके सम्बन्धमें वह लेख लिखा गया है उससे यही भाव टपकता है, हालांकि अब मैं यह मान लेता हूं कि उनका ऐसा भाव नहीं था।

दूसरी गलतीके बारेमें श्रीमती सेंगरको याद रखना चाहिये कि उन्होंने तो बातचीतका सिर्फ एक पहलूको ही लिया है लेकिन मैं ऐसा नहीं कर सकता। ऋतुकालके बादके कुछ दिनोंको छोड़कर ऐसे विलोम पति-पत्नीके समागमकी बात गांधीजी सहन कर लेंगे जिनमें गर्भ रहनेकी संभावना प्राय नहीं होती क्योंकि इसमें आत्म-संयमकी थोड़ी-बहुत भावना तो है ही — यह लिखकर मैं नहीं मानता कि मैंने गांधीजीको किसी ऐसी स्थितिमें डाल दिया है जो उन्हें पसन्द नहीं है। मैं तो सिर्फ यही बताना चाहता था कि अपने विरोधियोंकी बातको भी जहां तक सम्भव हो किस तत्परताके साथ

गांधीजी स्वीकार कर लेते हैं। उन्होंने जिस कारणसे यह कहा कि यह उपाय मुझे उतना नहीं जंचता जितना कि दूसरे उपाय जंचते हैं वह कारण इस विषयमें बड़े महत्त्वका है क्योंकि श्रीमती सेंगरके उपाय (कृत्रिम सन्तति-निग्रह) से जहां महीनेके सभी दिनोंमें विषय-भोगमें प्रवृत्त होनेकी स्वतंत्रता मिल जाती है वहां इस विशेष उपायसे किसी हद तक तो आत्म-संयम होता ही है।

व्यापार वाली बात मैं समझता हूं श्रीमती सेंगरको बहुत बुरी लगी है। लेकिन खुद श्रीमती संगर पर मैंने ऐसा कोई आरोप नहीं लगाया है, न मेरा ऐसा कोई इरादा ही था क्योंकि मुझे मालूम है कि उन्होंने अपने उद्देश्यके लिए बड़ी बहादुरी और निःस्वार्थ भावसे लड़ाई लड़ी है। मगर यह बात बिलकुल असत्य भी नहीं है कि सन्तति-निग्रहके लिए आजकल जो प्रचार हो रहा है वह तथा सन्तति-निग्रहके प्रायः सभी उत्साही समर्थकोंके यहां बिक्रीके लिए इस संबंधका जो आकर्षक साहित्य और साधन आदि होते हैं वे सब कुल मिलाकर बहुत बुरे हैं। इन सबसे उस उद्देश्यको तो हानि ही पहुंचती है जिसके लिए श्रीमती सेंगर निःस्वार्थ भावसे इतना प्रयत्न कर रही हैं।

हरिजन ०२-२-३६

सूची